श्री पुंगालिया सरदार जैन ग्रन्थमाला का पुष्प नं० ५

प्रखरवक्ता आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी महाराज साहब
के घाटकोपर (बम्बई) और नागपुर में दिए
हुए व्याख्यानों का

शुभ संग्रह

व्याख्यान वाटिका

संग्राहक

उत्तमचन्द वीरचन्द गोसालिया
लाल बंगला, घाटकोपर
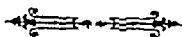
अनुवादक

पं० नटवरलाल के० शाह, न्यायतीर्थ
स्नातक, श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर
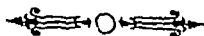
वीर संवत २४६४
विक्रम संवत १९९४

प्रथमावृत्ति
प्रति १०००

प्रकाशक—
श्री पुगलिया सरदार जैनग्रन्थमाला,
इतवारी बाजार, नागपुर सिटी

श्री शम्भूसिंह भाटी, द्वारा
आदर्श प्रेस, केसरगंज, अजमेर
में मुद्रित।

समर्पण

आचार्य श्री होते हुए जो विनय-विभूति है ।
पूज्य श्री होते हुए जो प्रभुता से पर है ॥
शिरोमणी होते हुए जो संत के सेवक हैं ।
गुरुवर्य होते हुए जो शिष्य के भी शिष्य हैं ॥
ज्ञान मूर्ति होते हुए जो नम्रता की मूर्ति हैं ।
तपो मूर्ति होते हुए जो क्षमा के अवतार हैं ॥

ऐसे

परम करुणासागर, दयालुदेव, जैनाचार्य, तपोधनी, तपस्वीदेव, तपोमूर्ति

पूज्य श्री १०८ श्री देवजी ऋषिजी महाराज श्रीजी की

पुनीत सेवा में त्रिकाल वंदन !

श्रीजी के प्रभावक प्रवचन से पुनीत, पुन्य प्रभावक,

श्रावक शिरोमणी, साधुभक्त,

दानवीर श्री सरदारमलजी पुँगलिया (नागपुर) की प्रेरणा से

श्रीजी की छत्र छाया में

ग्रथित आगम-वाटिका के पुष्पों की माला स्वरूप

यह सेवक की पामर सेवा रूप लघु पुस्तिका

सविनय समर्पण

महावीर भवन, नागपुर] —लेखक

दानवीर

श्रीमान् सेठ नेमीचंदजी सरदारमलजी पुंगलिया

की

अ० सौ० धर्मप्रेमी श्रीमती मगनदेवी की तरफ से

अपनी स्वर्गीया पुत्री

श्री जमनाबाई की पुण्य स्मृति में

सादर सप्रेम भेंट।

श्री० दानवीर पुंगलियाजी की सुपुत्री

स्वर्गीया जमनाबाई, नागपुर

श्री० पुंगलियाजी के नेक सलाहकार

प्राइवेट सेक्रेटरी श्री० मूलजीभाई शाह

श्री० पुंगलियाजी की गृहिणी की अमर यादगार
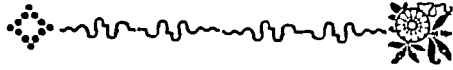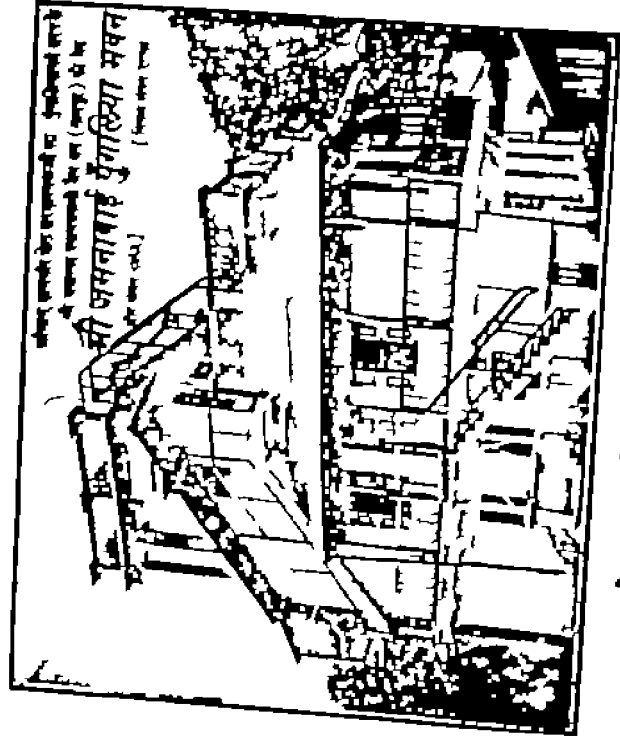
श्री० जमनाबाई पुंगलिया भवन, नागपुर

यत-किञ्चित्

एक समय था, जब जैन लेखकों ने अपने प्रचंड पाण्डित्य, अगाध अध्ययन और तीव्र लगन के फलस्वरूप उच्च श्रेणि के साहित्य का निर्माण कर भारतीय-साहित्य के भण्डार को अनमोल बनाया था। व्याकरण, साहित्य, काव्य, कोश, अलंकार, दर्शन, नीति, धर्म, अध्यात्म, वैद्यक, ज्योतिप, गणित, विषय के अनुपम ग्रंथ आज भी विद्वत्समाज की आदर की चीज़ बने हुए हैं। एक अजैन विद्वान ने कहा था, कि यदि जैन साहित्य को जुदा कर दिया जाय तो भारतीय संस्कृत साहित्य फीका दिखाई देगा। प्राकृत भापा को तो जीवन ही जैन साहित्यकारों ने दिया और उन्होंने ही उसका पालन-पोपण कर के उसे आदरणीय बना कर जगत् के समक्ष रखा। जैन लेखकों ने यदि प्राकृत भापा को उपेक्षा की दृष्टि से देखा होता तो हिन्दी भापा का इतिहास ही शायद अन्धकार में विलीन होता।

साहित्य का रूप अब पहले से बहुत अधिक विशाल हो गया है। साहित्य-संसार में विज्ञान के आविष्कारों के साथ-साथ साहित्य के अंगोपांगों का भी विकास हुआ है और प्राचीन अंगों की पद्धति में भी आमूल परिवर्तन हो गया है। कुछ गिने-चुने अपवादों को छोड कर जैन साहित्यकारों ने या तो इस परिवर्तन पर पूरा लक्ष्य ही नहीं दिया या उपेक्षा का भाव दिखलाया है। यही कारण है कि जैन साहित्यकारों का युग के अनुरूप साहित्य का निर्माण करने की ओर ध्यान नहीं गया है। हमारे यहाँ क्या नहीं है? सभी कुछ है, पर वह विशाल संस्कृत प्राकृत साहित्य में यत्र तत्र बिखरा पडा है। उसे खोज निकालने की और आधुनिक प्रणाली से सुसंस्कृत रूप में रखने की आवश्यकता है।

प्रस्तुत व्याख्यान संग्रह के व्याख्याता आत्मार्थी मुनिराज श्री मोहन ऋषिजी स्वामी और इसके संपादक महोदय अवश्य ही धन्यवाद के पात्र हैं। जिन्होंने एक ऐसी चीज सर्वसाधारण के सामने रखी है, जिसमें रूढ विचारों के स्थान पर मौलिक विचारों को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया

है। और जैन साहित्य में कुछ नए विचारों का समावेश किया गया है।

इस संग्रह में कुछ भाग तो ऐसा है जो विशेषतः जैन-समाज के लिए उपयोगी है और अधिक भाग ऐसा जो सर्व साधारण के लिए एक-सा विचारणीय और आचरणीय है। इस प्रकार पुस्तक यदि दो विभागों में अलग अलग छपती तो अच्छा होता।

आत्मार्थी मुनिजी की एक विशिष्ट शैली है। वे अध्यात्मरसिक हैं, बहुत थोड़ा बोलते हैं चिन्तन में ही प्रायः सारा समय बिताते हैं और बड़ी ही सूक्ष्मदर्शी नज़रों से प्रकृति का पर्यवेक्षण करते हैं। इनके इस स्वभाव का असर प्रस्तुत पुस्तक में स्पष्ट दिखाई देता है। किसी छोटी से छोटी घटना से या रोज़मर्रा काम आने वाली किसी चीज़ को लेकर वे अपने भाव व्यक्त करते हैं। और इस खूबी के साथ कि पढ़ कर दंग रह जाना पड़ता है। उनके यह सीधे सादे सहज उदाहरण मन में जादू का प्रभाव डालते हैं। इसीलिए प्रस्तुत पुस्तक सर्वसाधारण की चीज़ है। फिर भी इसमें विचारों की गहराई है और समाज में घुसी हुई अनेकानेक गलत धारणाओं का सुधार करने का सामर्थ्य भी है।

पुस्तक पढ़ने से एक परिणाम जो सर्व प्रथम निकाला जा सकता है वह यह है कि मुनिजी की आत्मा समाज की आर्थिक विषमता के कारण अत्यंत विपन्न हो रही है। स्थान-स्थान पर वे उसका उल्लेख करते हैं और इस विषमता को जन्म देने वाले आधुनिक यन्त्रों को वे समाज में फैले हुए तमाम पापों का प्रचारक मानते हैं। चींटों, मुर्गियों बकरों बछड़ों की नाक से उनका मन व्याकुल है उनकी मिनमिनाहट को देख कर वे तड़प उठे हैं। उसे दूर करने को उन्होंने मुख्य दो उपाय बताये हैं (१) यन्त्रों का अन्त और (२) समाज में श्रीमानों को—सिर्फ श्रीमान् होने के कारण प्रतिष्ठा न मिलना।

हमारे यहाँ आज पैसे का महत्व है। जहाँ तहाँ पैसे की प्रधानता दीखती है। विवाह-शादियों में सभा-सोसाइटियों में व्याख्यानों में

में, पचायतों में, सर्वत्र श्रीमतों का बोलबाला है। 'सर्वे गुणाः काञ्चन माश्रयन्ति' यह कहावत जैसी हमारे समाज को लागू होती है वैसी शायद किसी और को नहीं। सेठ करोडीमल अमुक विद्यालय के अध्यक्ष हैं क्योंकि वे धनवान् हैं, सेठ लखपतराय महासभा के सभापति चुने गये हैं, क्योंकि उन पर दामदेव का अनुग्रह है, इसीलिए सेठ धनीरामजी सर पंच है और इसीलिए रूपचन्दजी बुढापे में चौथी शादी कर रहे हैं। निस्संदेह यह सब व्यवस्था समाज के श्रेय को शीघ्र ही रसातल पहुंचाने वाली है और लेखक के मत से घोर पातक है। अपरिग्रहवाद के पुजारी किस दिल और दिमाग से उसे अपनी छाती से चिपकाए हुए हैं?

मुनि श्री ने इस सम्बन्ध में अपने विचार जिस स्पष्टता और निर्भीकता के साथ प्रकट किए हैं, वे अवश्य ही उनके अनुरूप हैं और साथ ही धन के सामने नतमस्तक हो जाने वाले अनगार-वर्ग को एक नया मार्ग बतलाते हैं। साम्यवाद की विचार-सरणि को ले कर उन्होंने जो कुछ कहा है वह टालसटॉय आदि विचारकों के विचारों से कम प्रभावक नहीं है।

इस संग्रह में इतने अधिक मौलिक विचार सुंदरता से निविष्ट किये गये हैं कि भूमिका में उन सबका परिचय देने और आलोचना करना संभव नहीं है। यह कार्य पाठकों के ही सुपुर्द है। वे इसे आदि से अन्त तक पढें, इसका मनन करें और अपने जीवन को वास्तविक मानव-जीवन बनाएँ। पुस्तक के ऊपरी रूप में न अटक कर उसके भीतरी सौन्दर्य का आनन्द उठाने वाले सत्य और शिव की ओर अग्रसर होंगे, ऐसी मेरी आशा है।

ब्यावर गुरुकुल के स्नातक प० नटवरलाल के० शाह न्यायतीर्थ यद्यपि काठियावाड़ी हैं— उनकी मातृ भाषा हिन्दी नहीं है, तथापि हिन्दी लिखने का उनका उत्साह सराहनीय है।

ब्यावर
ज्ञान पंचमी, १९९४ — **शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ**

विषय सूची

रुपया सवा लाख जितना दान करने वाले
दानवीर सेठ सरदारमलजी साहब पुगलिया (नागपुर)

आपने श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर को 'देवभवन' निर्माण हेतु १८०००) रुपये की उदार भेंट जाहिर की है।

F A P Press Ajmer

दानवीर श्रीमान्

सेठ श्री सरदारमलजी पुगलिया

का

संक्षिप्त परिचय

विश्व असीम और अनादि है। उसमें अनगिनते मनुष्य प्राणी समय २ पर जन्म धारण करते रहते हैं, मगर बहुत कम को छोड कर अधिकांश मनुष्य प्राप्त हुए सर्वोत्कृष्ट मानव जीवन को उस जीवन की रक्षा में ही व्यतीत कर देते है। वे जीवन रुपी पूंजी को जरा भी नहीं बढाते, बल्कि उस पूंजी का उपयोग कर के अगले जीवन को और अधिक दरिद्र बना लेते हैं। कई प्राणी अपनी दिव्य शक्तियों का उल्टा उपयोग कर के सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन को सर्व निकृष्ट जीवन बना डालते हैं। इनके जीवन का मुख्य ध्येय सासारिक आमोद प्रमोदों को अधिक से अधिक प्राप्त करना होता है। और वे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ती में ही संलग्न रहते हैं। ऐसे मनुष्यों का जीवन या तो निष्फल हो जाता है या विपरीत फलदायी सिद्ध होता है। समाज देश या संसार की उपयोगीता की दृष्टि से उनका अस्तित्व नहीं के समान है।

इससे विपरीत कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो परलोक से एक अच्छी पूंजी लेकर आते हैं, और इस लोक में अपने सदनुष्टानों के द्वारा धर्म और समाज की बहुमूल्य सेवा कर के परोपकार में अपनी समस्त शक्तियों का व्यय कर के, सब प्रकार से अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से विमुख होकर समाज और धर्म की आवश्यकताओं को पूर्ती को ही सदा सन्मुख

रखते हैं। ऐसे महानुभावों का जीवन धारण करना सार्थक होता है और वे प्राप्त पूंजी अधिक बढ़ाते हैं।

इन पंक्तियों में जिनके जीवन की रूप रेखा अंकित करने का प्रयत्न किया जा रहा है वे दूसरी श्रेणी के महानुभावों में असाधारण धर्मपरायण पुरुष हैं। जैन समाज में और विशेषतः स्थानकवासी समाज में सेठ हर- चारमलजी मुकलिया से कौन अपरिचित है? सेठ साहब का अन्तःकरण आकाश की तरह निर्मल, हिमकी भांति स्वच्छ और मक्खन-जैसा की भांति उदार हैं। आपके जितना प्रेम के अत्यन्त प्रमाण स्थानकवासी सम्प्रदाय में कम ही सज्जन दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे विद्यारसिक और दानवीर सज्जन का जीवन चरित्र श्रीमानों के लिये एक अनुपम आदर्श है और इसलिये उसे यहाँ अंकित करने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे चरित्र नायक के पूर्वजों का मूल निवास स्थान बीकानेर है। बीकानेर में आपके पूर्वजों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपका परिवार वहाँ के उंगलियों पर गिने जाने वाले प्रतिष्ठित परिवारों में से एक था। सुनते हैं बीकानेर शहर में जब अनेक धन कुबेरों के होते हुए भी किसी के यहाँ भी सोना न था तब सबसे प्रथम आपके पूर्वजों ने छप्पा कसकर सुख सिरी की सुविधा का मार्ग सबके सामने प्रकट किया था। बीकानेर में आज भी बुंगलियों का विशाल प्रासाद अपना मस्तक ऊँचा किये खड़ा है और आपके परिवार की कीर्ति का परिचय करा रहा है। परन्तु व्यापारिक कारणों से आपके पूर्वज मध्य प्रान्त के मुख्य नगर नागपुर में आ बसे और वहीं हमारे चरित्रनायकजी का जन्म हुआ। आपका जन्म दिवस भी वही है जो श्री जैन गुरुकुल ब्यावर के प्रथम वार्षिक महोत्सव का जिसके आप माननीय प्रमुख निर्वाचित किये गये थे। आपके पधारने की पूर्ण अभिलाषा होने पर भी, दुर्भाग्य से आपकी सुपुत्री का स्वर्गवास होजाने से नहीं पधार सके। विक्रम सम्वत् १९१० की मार्गशीर्ष शुक्ला १ को आपने अपने पुण्य जन्म से अपने कुटुम्ब को आलोकित किया था।

आरम्भ से ही आप कुशाग्र बुद्धि थे। तत्कालीन वातावरण के अनुसार आपकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई और तदन्तर आपने अपना परम्परागत व्यवसाय में पड जाने पर भी अन्य क्षेत्रों से सर्वथा उदासीन न रहे और सच्चे श्रावक की भांति अपना जीवन यापन कर रहे हैं। ऐसे सच्चे जैन श्रावक का यह कर्तव्य होता है, कि वह परस्पर विरुद्ध रूप से धर्म अर्थ और काम पुरुपार्थ का सेवन करे। जो इस प्रकार का अपना जीवन बना लेता है, वह क्रमश चतुर्थ पुरुपार्थ (मोक्ष) को भी प्राप्त कर लेता है। श्री पुँगलियाजी में यह वास्तविकता भली भांति देखी जाती है। वे धनोपार्जन करते अवश्य है, पर शुद्ध सग्रह शील नही। दान देने में उनका हाथ कभी कुंठित नहीं होता। दीन हीन की सेवा, समाज की विधवा बहिनों की शुद्ध सहायता, शिक्षा-संस्था और साहित्य प्रकाशन के लिये दान देना आपका व्यसन सा होगया है। आप द्वारा दान दी गई रकम का ठीक ठीक पता नहीं लग सकता। आपका दान कीर्ति की कामना से नहीं, बल्कि शुद्ध कर्तव्य पालन के उद्देश्य से होता है। अतएव आप बहुतसी रकमें गुप्त रूप से ही प्रदान करते हैं। उन रकमों का पता पुँगलियाजी के समीपवर्ती उनके प्रायवेट सेक्रेटरी तक को नहीं है। ऐसा हालत में उनके दान का ठीक अदाज ही नहीं लगाया जा सकता।

स्थानकवासी सम्प्रदाय का पूर्ण आधार मुनिराज हैं। वही सम्प्रदाय के रक्षक, विकासक और धर्मोपदेशक हैं। मुनिराजों की शिक्षा पर समस्त सम्प्रदाय की शिक्षा निर्भर है। अतएव मुनिराजों को उच्चातिउच्च शिक्षा का साज देना मानों वृक्षों के मूल को सींचना है। मूल को सींचने से सारा दरख्त आप ही आप सिंच जाता है, इसी प्रकार मुनिराजों की शिक्षा से सारा सम्प्रदाय सुशिक्षित होता है। इस तथ्य को श्री पुंगलिया जी भली भांति समझते हैं और इसी कारण आप मुनिराजों की शिक्षा पर खासी रकम खरचते हैं।

साधर्मी भाइयों के प्रति आपका अनुपम वत्सलभाव है। उन्हें हर

प्रकार से सहायता पहुंचाना आप अपना कर्तव्य समझते हैं। अनेकों भाइयों को आपने अपनी उदारता का परिचय दिया है। जिनके मकान न थे उन्हें मकान दान किया। जो धनाभाव के कारण अपनी संतान का विवाह न कर सकते थे, उन्हें यथोचित सहायता पहुंचाई। नागपुर जैन विद्यालय में भी आपने अच्छी रकम प्रदान की है।

आपने नामली में, सुरेहा में, रतलाम (नीम चौक तथा साहू वाबड़ी) के दो स्थानक आदि का जीर्णोद्धार कराया तथा नये स्थानक के लिये नये मकान दिलाए। नागपुर इतवारी का विशाल धर्म स्थानक और व्याख्यानशाला बनवाने में भी आपका बड़ा हिस्सा है। प्रायः भारत की कोई भी जैन संस्था ऐसी न होगी, जिसमें श्री पूंगलिया जी का दान न पहुंचा हो। आपका प्रकट दान जितना ज्ञात हो सकता है उससे मालूम होता है कि आपने एक लाख रुपयों से भी अधिक दान दिया है।

साहित्य प्रकाशन के लिये आपने रुपये १) दिलाये हैं जिसमें से "श्री सरदार ग्रन्थमाला" चल रही है। इसी समय आपने अपने गुरुदेव तपोधनी पूज्य श्री देवजी ऋषिजी के नाम से 'देव भवन' निर्माण करने के लिए श्री जैन गुरुकुल ब्यावर को १८) रुपये की उदार रकम जाहिर की है।

आपके गुप्त दान की तो कोई गिनती ही नहीं है।

आपकी दानशीलता का प्रभाव आपके सारे कुटुम्ब पर पड़ा है। यही कारण है कि आपकी धर्मपत्नी भी दान देने में उदार है। ब्यावर गुरुकुल को दी हुई १८) की रकम आप ही ने दी है। इसके अतिरिक्त बहुत सा गुप्त दान दिया है। आपकी सुपुत्री स्व० मूलीबाई ने भी रु० ५) धर्मार्थ में दान किये हैं। अभी ही आपने रु० १५) की कीमत का मकान अपनी स्व० पुत्री अमृताबाई के नाम पर नागपुर श्री संघ को अर्पण किया है।

सच तो यह है कि स्थानकवासी सम्प्रदाय में आपकी कोटि के उदार

कर्त्तव्यनिष्ठ दानवीर सज्जन बहुत नहीं है। आपका दान विवेकयुक्त और समयानुकूल होता है। शिक्षा प्रेम आपकी नस-नस में कूट कूट कर भरा हुआ है। हमें ऐसे धर्मपरायण पुरुष रत्न पर पूर्ण गौरव है। और शासन देव से प्रार्थना है, कि यह अभिमान चिरकाल तक इसी प्रकार कायम रहे।

आपकी धर्म भावना, उदारता, सरलता, निरभिमानता, स्वधर्म सेवा एव दानवीरता खानदेश, बिरार, सी० पी० आदि प्रान्तों में प्रसिद्ध है। नागपुर में मुनिवरों के चातुर्मास होने में आपकी दृढ भावना और मुनि भक्ति प्रधान है। नागपुर क्षेत्र आपकी धर्म भावना के कारण ही सविशेष प्रसिद्ध हुआ है। आप में ऐसे बाल्यवय के सुसंस्कार परम प्रतापी, तपोधनी तपस्वी देव पूज्य श्री १००८ श्री देवजी ऋषीजी म० सा० के धर्मोपदेश व परिचय से सुदृढ हुए हैं। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सब जैन समाज आपको सन्मान दृष्टि से देखती है। आपकी लोकप्रियता नागपुर में ही नहीं, परन्तु पवनवेग से दूर दूर फैल रही है। जैन संसार में इतनी लोकप्रियता प्राप्त करने वाले बहुत कम होंगे।

प्रखर वक्ता आत्मार्थी मुनि श्री मोहनऋषिजी
म. सा. के घाटकोपर (बम्बई) में दिये हुए

जाहिर-व्याख्यान
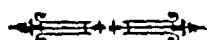
१—हम कहाँ खड़े हैं ?

जिनवाणी का महत्व—प्रभु महावीर ने साड़े बारह वर्ष तक घोर तपश्चर्या की और तपश्चर्या में जो जो अनुभव प्राप्त किये, जो अनन्तज्ञान प्रगट हुआ, वह ज्ञान और वे अनुभव प्रभु ने सब जीवों के कल्याण के लिए संसार के सामने उपस्थित किये।

वह दिव्यज्ञान वह दिव्यवाणी कितनी मूल्यवान् होगी ? उस वाणी का अधिकारी कौन हो सकता है ?

प्रभु महावीर ने अनेक गुफाओं में, पहाड़ों में, जंगलों में विहार कर ये अनुभव प्राप्त किये। उन गुफाओं में उत्पन्न हुआ ज्ञान तो कोई गुफावासी ही पचा सकता है। सिंहनी का दूध तो कोई सिंह जात शिशु ही पी सकता है।

पशु संसार की अज्ञानता—पशु पक्षी जब छोटे होते हैं तब उनके माता पिता उनकी बहुत परवाह करते हैं, परन्तु पशुओं के दाँत और पक्षिओं के पंख आते ही वे परवाह करना छोड़ देते हैं। वे माता-पिता को भूल जाते हैं। और अन्त में वह

पुत्र माता को मातारूप से न समझता हुआ अपनी स्त्री समझने लगता है। यह क्या ? कहां तो वह माता का संबंध ? और कहां स्त्री का ? गजब थी तभी तक वह माता थी। इससे विशेष आश्चर्य और क्या हो सकता है ?

अधोगति का मूल कारण—आज हमारी भी यही स्थिति होने लगी है। धर्मरूपी माता को आज हम भूल गये हैं। और यहां तक कि उसका नाम सुनना भी हमारे कानों को नहीं सुहाता। हम उस धर्मरूपी माता को—धर्मतत्त्व को—दुःख और विपत्ति के समय में ही याद करते हैं। भय और संकट के समय मरणासन्न के अवसर पर उसका स्मरण करते हैं। यही है हमारी अधोगति का मूल कारण। हम धर्मतत्त्व को भूल गये हैं। धर्म रूपी माता का स्मरण छोड़ दिया है।

जीवन पर दृष्टिपात कीजिये—आप कौन हैं ? कहां स्थित हैं ? मनुष्यता के गुण हैं या नहीं ? हम में पाशविकता है या मानवता ? कभी विचार भी किया ? एक भाई को एक सप्ताह पहिले एक या दो चांटे दिये हों और यदि वह भाई आपको स्थानक के बाहर मिल गया तो आप फौरन् ही उन से लड़ाई करेंगे क्यों सही है न ? कितना धैर्य है ? अपने जीवन को कैसा रक्खा है ? इसका जरा गहराई से विचार कीजिये।

आप भोजन कर रहे हैं। एक ही चीज में यदि नमक-मसाला कम है तो क्या होगा ? इतनी बड़ी अवस्था हुई। इतनी कीर्ति और इतना बड़ा मान किया। और खूब माल मिष्ठान्न धन दौलत एकत्रित की, लेकिन इस पक्ष पर जरा दृष्टिपात तो कीजिये कि कितना अधर्माचरण किया ? हृदय को कितना मलीन बनाया ?

कितना कपट, कितनी दगावाजी, जालसाजी और किन किन प्रपंचों की रचना की ?

विकास का क्रम—एक छोटे बच्चे को पाठशाला में भेजते हैं। पहिले तो वह स्कूल जाते हुए रोता है, घबराता है। हम उसे कुछ देकर राजी करते हैं तब वह इच्छा या अनिच्छा से स्कूल जाने लगता है। परन्तु उसका मन खेल कूद ही में लगा रहता है। तीन महिने बाद वह बाल कुछ सीख पायेगा। चारवर्ष बाद वह अनुभवी बन जायेगा। फिर तो आपके इन्कार करने पर भी वह स्कूल जाया करेगा। बाद में तो वह मेट्रीक भी पास कर लेगा। कहिये इस बालक का कितना विकास।

यह धर्मस्थान भी एक पाठशाला है। और हम शिक्षक या अध्यापक हैं, जो कुछ समझिये। आप हैं स्कुल के विद्यार्थी। हम को पढाते हुए और आपको पढते हुए कितने वर्ष हुए। आपने उस बालक जितना भी विकास किया ? आपने अपने जीवन को थोडा सा भी उन्नत बनाया ? किसी एक सद्‌गुण की भी वृद्धि की ? '-' से '१' अंक को भी सीख पाये ? कहिये क्या उत्तर है ? कुछ नहीं।

विजाति पशुओं में भी विश्वास—आप के नौकर से कोई गल्ती हो जाय तो आप उसे उपालम्भ न देंगे ऐसा विश्वास आपने पैदा करवाया है ?

एकवार उपवन में मेरा चातुर्मास था। वहाँ पर कुत्ते, बिल्लियाँ और मुर्गिओं थीं। मेरे सामने कुत्ते खेल रहे थे। वहाँ एक मुर्गी ने प्रसव किया था। वह अपने दस बारह बच्चों को लेकर मेरे सामने से निर्भयता पूर्वक चली गई। कुत्तों से जरा भी भय-

भीत न हुई क्योंकि उसे विश्वास था कि यह मेरे स्वामी का भाई है मुझे इसलिए नुकसान न पहुँचायेगा।

किसीने कुत्ते को उपदेश नहीं दिया था। उसे स्वाभाविक श्रद्धा थी। इन प्राणियों में कितनी निर्भयता! कितना विश्वास! यह दृश्य देखकर मैं कुछ लज्जित हुआ। मुझे विचार आया कि हम जरा जितनी भी निर्भयता और विश्वास पैदा नहीं कर सके।

दूध जैसे उज्ज्वल बनिये—इतने वर्षों में आपने मनों दूध पिया। यदि दूध स्वच्छ न हो तो नहीं पच सकता। कचरा निकाल फेंकते हैं, परन्तु हृदय को दूध जैसा स्वच्छ और पवित्र बनाया या नहीं? अन्दर का कचरा—आंतरिक मलीनता यदि दूर न कर पाये तो क्या दूध को कलंकित न किया?

उस दूध के लिए आपने अनेक बच्चों को अपनी माता से अलग किया। उन्हें दूध भी न दिया। ऐसा दूध पीकर यदि आप खूब उज्ज्वल और पवित्र बने होते तो दूध पीना सार्थक होता।

बगुला भक्ति—ठगवृत्ति—नदी के किनारे या समुद्र तट पर बगुले साधुवृत्ति धारण कर लेते हैं। ध्यानस्थ योगीराज का चित्र खड़ा कर देते हैं। उनकी यह साधुवृत्ति, यह एकाग्रता शिकार ही के लिए होती है। इसी प्रकार आप दुकान खोलते हुए नवकार मंत्र का स्मरण करते हैं। आपका यह स्मरण भी वास्तव में ग्राहकरूप मानव शिकार पकड़ने के लिए ही होता है। आप यही विचार करते हैं कि अपनी दुकान में ग्राहक आवें और मैं अच्छे प्रमाण में धनोपार्जन करूं। आपके मस्तक क्यों में यही भावना, यही बगुला भक्ति और ठगवृत्ति नहीं होती क्या?

शक्कर की मिठास को शोभित कीजिये— अनेक मण दूध पीकर भी हृदय दूध जैसा स्वच्छ और पवित्र न बनाया, लेकिन अनेक मण गुड़ और शक्कर खायी तो वैसी मिठास और मधुरता क्या आपकी वाणी में आयी ? यदि नहीं तो क्या आपने गुड और शक्कर को लज्जित न किया ? उसका अपव्यय या दुरुपयोग न किया ?

इन हवेलियों में रहना सार्थक कब ?—बडी बड़ी हवेलियों में और बगलों में रहते हैं लेकिन क्या मन कभी बड़ा किया ? यदि ऐसा न किया तो क्या ये हवेलिया और विशाल बंगले आपसे अपवित्र न हुए ?

वह महेतरानो थीं या श्राविका ? मैं एक गाव में गोचरी के लिए गया साथ में एक श्रीमन्त श्रावक भी थे। हमारे सामने से एक महेतराणी चली जा रही थी। रास्ता सकड़ा था। गोचरी की दलाली कर पुण्योपार्जन के लिए आये हुए श्रावकजी बोले" चल हठ ! दूर हठ !" महेतराणी ने पीछे देखकर कहा—"माळूम न था मा बाप, कि महाराज साहब पधार रहे हैं, माफ करो माबाप" किसका हृदय दूधसा स्वच्छ और किसकी वाणी में शक्कर का मीठापन।

मैंने कहा—"भाई ! मैं आपको श्रावक मानू या उसको श्राविका ? मैं आपको श्रावक मानू या महेतर से भी अधिक नीच ?"

आपकी मानी हुई शूद्र कौममें जितनी मात्रामें नम्रता, सरलता, प्रेम और दया आदि होते हैं। उतनी मात्रा में आप लोगों में है या नहीं ? इस बात का जरा एकान्त में विचार कीजिए।

आप एकदम नरम-नरम फलके चाहते हैं, यदि जरा भी कड़का हो आप से नहीं चल सकता। परन्तु नरम फलक खाकर आप कितने नरम और नम्र हुए ? नरम हुए या कड़के ही बने रहे ?

मांसाहारी कौन ?—शराब पीने वाले को हम व्यसनी कहते हैं, नशेबाज कहते हैं। उसका नशा तो २ ३ घण्टे ही रहता है तो फिर अहंकार और अभिमान का आप पर चढ़ा हुआ नशा उस नशे से बढ़ कर नहीं है क्या ? आप पशु का तो मांस नहीं खाते, परन्तु क्या मनुष्य के मांस रूप ईर्षा द्वेष, कलहवृत्ति, घातकवृत्ति आदि का त्याग किया है ?

चक्की पीसने वाली और सामायक करनेवाली—आपकी स्थिति तो वैसी ही बनी रही। बालक स्कूल में जाकर १४ १५ वर्ष के बाद B A बना, परन्तु आपने जिन्दगीभर धर्मशाला में जा कर क्या सीखा ? बहुत सुना परन्तु वहाँ के वहीं रहे या कुछ कदम आगे भी बढ़ाये ? ऐसी हालत में हमारा सुनाना किस काम का ?

एक बाई एक घंटे तक सामायक करती है दूसरी बाई एक घंटे तक चक्की चलाती है। चक्की चलाने वाली बाई ने घंटेभर में ५-७ सेर गेहूँ पीस डाले लेकिन सामायक करने वाली ने क्या पाया ?

सामायक करने वाली बाई अपने घर गई। आटा न था। पड़ोस में जाकर एक कटोरी आटा उधार मांगा। पड़ोसिन ने न दिया। तो शुरू हुई लड़ाई और न मालूम कितने अनेक वचन सामायक करने वाली बहन बोल गई तो कहिये उसने सामायक

करके क्या कमाया ? वह यह न समझती कि आज मैंने समभाव रूपी चक्की चलाई है तो मुझमें कितनी शान्ति होनी चाहिए ? एक घंटा चक्की चलाने वाली बहन का आटा पन्द्रह दिन तक चलेगा, इसी न्याय से एक घंटा सामायक करने वाले भाई या बहन की शान्ति पन्द्रह दिन तक बनी रहे तभी सामायक सार्थक समझी जा सकती है।

पालणपुर से बम्बई—गतवर्ष (१९९२) इन दिनों में मैं पालणपुर था। आज मैं यहां (बम्बई) हूँ। इतना अन्तर कैसे हुआ ? चारसौ मील पार किये तभी न ? तेली के बैल की तरह यदि पालणपुर में ही इतना चक्कर काटा होता तो कहां होते? वहीं न ? आपकी धार्मिक क्रियाएं पन्द्रह वर्ष पूर्व कैसी थीं और आज कैसी हैं ? आपके हृदय पन्द्रह वर्ष पहिले कितने मलीन थे और अब कितने शुद्ध हुए हैं ? जरा विचार तो कीजिये। तेली के बैल सरीखी ही आपकी स्थिति है या कुछ अच्छी ? ये बातें विचारने के लिए अवकाश भी है ?

प्रतिवर्ष केवल एक गुण ग्रहण करते तो ?—इतने वर्षों से मालारूपी घट्टी फिराई, फिर भी कुछ प्राप्त किया ? एक सद्गुण भी ग्रहण कर पाये ? यदि प्रतिवर्ष एक ही प्रकृति का अभ्यास कर एक ही सद्गुण जीवन में उतारा होता तो ? क्या इतने वर्षों में आप "सद्गुण गण आगार" न बने होते ?

आत्म निरीक्षण किया?-व्यवहारिक कार्यों में तो आप नौकर को सौंपे हुए कार्य का हिसाब लेंगे, उसमें कितनी प्रगति हुई यह भी देखेंगे, लेकिन आपने स्वयं कितनी प्रगति की

इसका विचार किया ? यदि जो प्रगति पहिले भी नहीं अब भी दृष्टिगोचर होती है, जरामात्र परिवर्तन बिना के ही दुर्गुण अब भी पाये जाते हैं तो इतनी धार्मिक क्रियाओं का और इतनी सामायिकों का क्या फल ?

शरबत और आईस्क्रीम खाना कब सार्थक होगा ?

चौमासे की ऋतु में आईस्क्रीम खाया, बरफ का ठंडा पानी पिया । सोडा लेमन आदि तरह तरह के शीतोत्पादक पदार्थों का पान किया, लेकिन अपने मगज को ठंडा और शान्त न किया । क्रोध का उपशमन न किया । क्रोध के प्रसंग पर क्षमा न धारण की तो क्या आईस्क्रीम को व्यर्थ बिगाड़ना न हुआ ?

सोना पहिनने का अधिकारी कौन ? सोना क्या है पीतल *क्या है ? सोने में विकार नहीं है, पीतल में विकार है ।* सोना गेरन्टी नहीं करता है, पीतल गेरन्टी करता है । पीतल थोड़े समय में खराब हो जायगा । सोने का कैसा भी उपयोग करो सदैव वही स्वरूप बना रहेगा । इसीलिए आप सोना पसंद करते हैं । आप सुवर्णालंकार धारण करते हैं । परन्तु क्या आप सुवर्ण जैसे निर्मल हैं ? सोने से प्रेम किया परन्तु क्या सोने जैसी आप की वृत्ति हुई ?

आपने चौमासे के चार महिने के लिए रात्रि भोजन का त्याग किया परन्तु साथ ही तबीयत खराब होने पर बाहर गांव जाने पर-आदि के-अपवाद रख लिये । अब कहिये आपकी वृत्ति पीतल जैसी या सोने जैसी मानी जावे ?

आप अपने जीवन का माप लीजिये । एक घड़ील से नव वर्ष से लेकर नब्बे वर्ष की उम्र तक घड़ी चलाई तो घड़ी ने कितना

फासला पार किया ? क्या आप की भी ऐसी (चक्की जैसी) स्थिति नहीं मानी जा सकती ?

किसकी चलणी अच्छी और कौन विशेष अपराधी?

एक गोवालिया चलणी लेकर दूने बैठा। वह मूर्ख या बुद्धिमान ? उस चलणी में थोड़े ही छिद्र हैं, उससे भी अनन्त गुणे छिद्र मनुष्य की हृदयरूपी चलणी में हैं। इस अनत छिद्र वाली हृदय रूपी चलणी में से जिन वाणी रूपी दूध ढुल रहा है तो कहिये कौन विशेप मूर्ख है ? आप हमें पाव भर दूध वहराते हैं उसी को यदि हम आप के घर के सामने आपकी आँखों के आगे ढ़ोल दें तो आपको बुरा लगे या नहीं ? हम आपका दिया हुआ पाव भर दूध नहीं ढोल सकते, उसका सदुपयोग हमें करना चाहिये। आप के दूध की एक बूद भी हम से नहीं फेंकी जा सकती। आपको आप के दिये हुए दूध के लिए इतना भाव है। आप उसका सदुपयोग देखना चाहते हैं उसी प्रकार हम आप को जिनवाणी का दूध नित्य परोसा करते हैं, तो उसका सदुपयोग हो ऐसी आशा हम न करें? आपका दिया हुआ दूध हम ढोल दें तो हम अपराधी, हमें आप साधु भी न गिनें तो जो व्यक्ति जिनवाणी रूपी दूध को ढ़ोलदे उसे कैसा समझना चाहिये ? जिनवाणी के दुध को ढ़ोल डालनेके अपराधमें से क्या आप अपने को मुक्त और निरपराधी मान सकते हैं ?

आपके गुड़ की दुकान है। वहाँ एक आदमी गुड़ देखने के लिए आवे और आप उसे गुड़ बतावें। वह दूसरे दिन भी गुड़ देखने के लिए आवे और आप उसे दिखा दें। परन्तु यदि इसी प्रकार २-४ दिन तक देखने के लिए आता रहे और कुछ न खरीदे

तो आप क्या कहेंगे ? आप कहेंगे कि भाई हमें गरज नहीं है या हमें क्या पड़ी है। तब आप हमें नित्यप्रति सुनाने का कहते हैं, तदपि कभी करते नहीं। जीवन में कभी उतारते भी नहीं। तो हम आपको क्या कहें? और आप के साथ कैसा संबंध रक्खें?

व्याख्यान सुनाना या बंद करना? किसान एक वर्ष तक जमन में बोता है इस बताता है। अच्छी फसल होती है। फिर एक दो वर्ष वह खेती नहीं करता। क्योंकि जमीन को विश्राम देने की आवश्यकता है। विश्राम देने पर ही फसल अच्छी हो सकती है? इतने वर्षों से व्याख्यान सुनाते चले आरहे हैं। अब आराम की जरूरत है या नहीं? जिससे हृदय रूपी जमीन विशेष सत्वरहित होने से बचे।

ज्ञानी और सेठ की सत्ता—आपका नौकर यदि आज्ञा उल्लंघन करे तो क्या आप उसे रक्खेंगे ? तो इस प्रकार भगवानी का आपने कितना अपमान किया ? उनकी कितनी आज्ञाएँ आपने पालीं ?

आपके प्रत्येक कार्य में उनकी आज्ञा का पालन दृष्टिगोचर होता है और घोरातिघोर विराध प्रकट होता है ?

यदि पापों की स्याही और हृदय अग्नि की स्याही है—आपको लगन है लेकिन उसमें तुच्छता है। आप काँच मे देखेंगे तो जैसे आप हैं वैसा ही प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। यदि आभूषण युक्त प्रतिबिम्ब आप देखना चाहें तो उसका मूल्य क्या होगा? असली और नकली वस्तु में कितना अन्तर? साक्षात् मूल वस्तु की ही कीमत है उसी का ही मूल्य है।

"धर्म बिना न सद्गति है, न सुख है और न शान्ति है" ये शब्द आप बोलते हैं परन्तु ये शब्द मात्र आन्तरिक प्रतिबिम्ब तुल्य ही है। बुद्धि की स्याही पाणी की है। लिखते ही सूख जाती है। आप सुनते जाते हैं और भूलते जाते हैं। बुद्धि के अक्षर लोप हो जाते हैं। आप यहाँ आते हैं बुद्धि की प्रेरणा से, न कि हृदय की प्रेरणा से। हृदय की स्याही अग्नि की है। और उसके अक्षर जिस प्रकार दिन में पढ़े जा सकते हैं उसी प्रकार रात्रि में भी पढ़े जा सकते हैं।

श्रोता के तीन प्रकार—रोग तीन प्रकार के होते हैं। सुसाध्य, कष्ट साध्य और असाध्य। उसी प्रकार श्रोता भी तीन प्रकार के होते हैं। जो लाखों की हानि करके भी धर्माराधन करते हैं वे सुसाध्य रोगी। और जो अनुकूलता होने पर धर्माराधन करते हैं वे कष्ट साध्य रोगी और जो अनकूलता होने पर भी नहीं कर पाते वे असाध्य रोगी हैं। आज की अपनी इस सभा में किस प्रकार के रोगी-श्रोता—एकत्र हुए हैं ? इसका स्वय निर्णय करें।

फोनोग्राफ की रेकार्ड और मानव हृदय—टेलीफोन या लाउड स्पीकर के आगे बोले या उसे कुछ सुनावें तो वे भी शब्दों को पकड़ सकते हैं। लेकिन वे उसे समझ कर धारण नहीं कर सकते। क्या उसी प्रकार आपके कर्ण पट नहीं माने जा सकते ? फोनोग्राफ की रेकर्ड में यदि उतारा गया हो तो रेकर्ड चढ़ाते ही आप सुन पायेंगे, परन्तु मनुष्यों की इस जागृत रेकर्डों में वर्षों से उतार रहे हैं—वर्षों से यह रेकर्ड भरे जा रहे हैं, परन्तु उसकी कॉपी (नक्ल) शायद ही किसी के पास मिलेगी और शायद ही वे किसी स्मृति पटल पर चित्रित होंगी।

२—धार्मिक पर्वों की सफलता

धार्मिक पर्व सफल कब होंगे ?

आज अपना महापर्व है। इस पर्व का नाम मासखमन है। पर्व दो प्रकार के होते हैं। एक तो लौकिक पर्व, दूसरा अलौकिक। सभी पर्वों का निर्माण बाह्य और अन्तशुद्धि के लिये हुआ है।

लौकिक और अलौकिक पर्व—लौकिक पर्व में होली दिवाली आदि और अलौकिक पर्व में मासखमन, पर्युषण और सम्वत्सरी आदि का समावेश होता है। इन सभी पर्वों का ध्येय केवल जन समाज में जागृति पैदा करना है।

आज का मासखमन का पर्व यह सूचित करता है कि एक महिने के बाद सम्वत्सरी महापर्व— पर्वाधिराज-पधारने वाले हैं। यह पर्व हमें जागृत होने की आगाही देता है। पर्वाधिराज के आगमन की सूचना देते हुए उनके स्वागत के लिए तैयार होने का आदेश का करता है। एक मास पूर्व ही से नोटिस देता है सम्राट् का सदेश वायसराय सुनाता है, वैसे आज विश्ववन्द्य प्रभु महावीर का आदेश मुनिराज सुनाते हैं।

एक महिने का समय, फिर भी इस सन्देश को सुनने के लिए कौन आये हैं ? पर्व को कौन मानता है ? और कौन जानता है कि यह हमारा अलौकिक पर्व है।

दिवाली और होली लौकिक पर्व हैं। दिवाली आने से पहिले आप अपना घर, चौक आदि को रंग रोगन लगा कर स्वच्छ

और साफ सुथरा करने में खूब दिल लगाते हैं। अपनी पिक्त की दवात को घिस-घिस कर सोने की तरह चमका देते हैं अमेन-सिलवर की थाल को घिस घिस कर चाँदी के जैसी बना देंगे। थड़ियों पर सुनहरी कागज लगायेंगे, घर के बर्तन माँज कर खूब चमकते हों इसका पूरा ख्याल रक्खेंगे। यह सब किस लिए? इतनी तकलीफ, इतना कष्ट क्यों? भोजन में भी एक सवाद पहिले स माल खायेंगे। यह सब प्रपंच, ढोंग किस लिए? दिवाली आने वाली है, इसीलिए न?

दिवाली आने से पहिले घर दुकान वस्त्र और दवात कलम का मैल दूर किया। होली आने पर सब गन्दगी का नाश होली जला कर स्वच्छ आशा धारण किया।

आज लौकिक नहीं, किन्तु अलौकिक महापर्व है। एक मास पूर्व ही से नोटिस दी गई है। दिवाली और होली में जिस प्रकार मैल दूर कर स्वच्छता करने के लिये तत्पर होते हैं, उसी प्रकार इस अलौकिक महापर्व के आगमन के पूर्व इस मास में काम, क्रोध, मद, मोह, माया लोभ, द्वेष और ईर्षा रूपी जो मैल आपके अन्दर में भरा हुआ है उसको दूर करेंगे। उस मैल को साफ करने के लिए-उस मलीन आत्मा को धोने के लिए, यह पर्व आगाही करता है। सम्वत्सरी आने से पहिले आन्तरिक मैल दूर कीजिये। लौकिक पर्व के लिए आप कितनी तैयारियाँ करते हैं यह पहिले बता दिया गया है। तो फिर इस अलौकिक पर्व के लिये कितनी महान् तैयारियाँ की जानी चाहिये? लेकिन कौन करेगा? क्योंकि लौकिक पर्व दिवाली और होली का प्रभाव आप को प्रत्यक्ष नजर। दिख पड़ता है। सूर्योदय के पहिले एक मात-

दौड़ मचाते हैं, उसी प्रकार आप भी भाग-दौड़ करते हैं। लेकिन इस अलौकिक पर्व का प्रकाश आप जुगनू के समान अनुभव करते हैं। सूर्य के प्रकाश के सामने जुगनू के प्रकाश का अस्तित्व नहीं समझा जाता। उसी प्रकार आप की दृष्टि से भी अलौकिक पर्व का अस्तित्व भी अस्तगत समझा जाता है; अन्यथा दिवाली जैसी रमक-झमक और रौनक तथा धर्म भावना के फल आज धर्म-स्थानकों में उमड़ते हुए हम अनुभव कर सके होते।

हमारी स्थिति—आज कइयों को यह भी न मालूम होगा कि आज क्या है? बबई में करीब पचास प्रतिशत लोग ऐसे होंगे, जिनको इस पर्व का ख्याल भी न होगा। पचीस प्रतिशत लोगों को इस बात का ज्ञान घर में उनकी माता या स्त्री से होता है, शेष पचीस प्रतिशत में से बीस प्रतिशत लोग अपना समय प्रमाद में व्यतीत करते हैं। बाकी के पाच प्रतिशत जितनी निर्माल्य सख्या के लोगों की उपस्थिति, आज हम यहा पर देखते हैं। क्या हमारी यह स्थिति दयाजनक नहीं है?

धार्मिक पर्वों का मूल्य आज घट गया है। दिवाली आने वाली हो तो अपने बूटों पर पालिश करवायेंगे। उसको बहुत सम्भाल रक्खेंगे। एक धब्बा भी न लगने देंगे। इस प्रकार जितनी चिन्ता लौकिक पर्व के लिये रखते हैं उतना ही खयाल यदि अलौकिक पर्व के लिये करें तो हमारी क्या स्थिति हो! इस बात का जरा विचार तो कीजिये! बूट साफ करने जितना लक्ष्य भी यदि आपमें इन आध्यात्मिक पर्वों के लिये होता, तो आज यह हॉल खचा-खच भर जाता।

बूट साफ करने के लिये काबरा पालिश और ब्रुश खरीद

कर उन्हें चमकीला बनाये, लेकिन इस धर्म के निमित्त आत्मा को उज्ज्वल करने के लिये केवल ज्ञानी के ज्ञान रूप कपड़ा पालिश और निर्जरा रूपी मुखा किसीने लिया ? क्या पूज्य पालिश जितनी लगन आत्मा को पालिश करने के लिए किसी के हृदय में है ? लगन अपने पतंगिये की तरह अग्नि की भी परवाह नहीं करते और उसके लिये फना हो जाते हैं।

मानव मानवता का भान भूल गया है, ऐसा नहीं है और न तो मानवता खो गई है, परन्तु दुःख ! मानव में से मानवता का सर्वथा विनाश ही हो गया है। सुसुप्त मनुष्य को जगाया जा सकता है, परन्तु मुर्दों को कैसे जीवित किया जाय ? आज में मानवता सोयी नहीं है परन्तु मृत प्राय हो गई है। यदि मुर्दे पर असर हो सकता है तो आज के मृत प्राय मानव समुदाय पर भी हो सकता है। इस स्थिति में मृत और जीवित अवस्था में जरा भी अन्तर नहीं प्रतीत होता।

आज का पर्व अलौकिक है। आज कई भाई हरी का त्याग करेंगे, स्नान भी न करेंगे। कई आयंबिल उपवास, सामायिक, प्रतिक्रमण, नवकारसी आदि अनेक प्रकार की क्रियाएँ करेंगे।

इस प्रकार की अनेक उत्तम और पवित्र क्रियाएँ आप करते चले आ रहे हैं और कर भी रहे हैं। उसके लिये आपके हृदय में मान भी है। इस ऋतु में हरी का त्याग वैदिक दृष्टि से भी उत्तम है। स्नानादि में विवेक रखना अच्छा ही है लेकिन आपने कभी इस बात का भी विचार किया है कि उपरोक्त सामायिक पौषधादि उत्तम और पवित्र क्रियाएँ करने के आप अधिकारी हैं या नहीं ?

आन्तरिक चोरों को ढूंढ लीजिये—एक शहर मे चोरो का वहुत उपद्रव था, वहुत त्रास था। उस शहर के लोगों ने राजा को शिकायत की। शिकायत सुन कर राजा ने नगर के द्वार बन्द करा दिये। परन्तु दूसरे रोज भी वही शिकायत जारी रही। विचार करने पर राजा को ख्याल आया कि द्वार बन्द करने से हुआ क्या? चोर तो अन्दर ही थे, वाहिर थोड़े ही थे जो न आते।

हमारे शरीर रूपी नगर में भी ऐसे महान् चोरों का वास है, और ये सामायक आदि क्रियाये बाहर के द्वार बन्द करने के समान है। जब तक इस शरीर रूपी नगर के भीतर रहे हुए काम क्रोध आदि आन्तरिक चोरों को ढूंढ कर अलग न करेंगे तब तक सभी प्रयत्न व्यर्थ हैं। वाह्य क्रियायें भले ही करते रहें, जब तक आन्तरिक वृत्तियों में परिवर्तन न हो तब तक सब निरर्थक है।

लीलोती और लड़ाई—हरी का त्याग किया, परन्तु क्या कलह का त्याग किया?

कभी ऐसा भी विचार किया कि आज अलौकिक पर्व है। मासखमण का दिन है। आज हरी वनस्पति का त्याग किया परन्तु क्लेश-कलह का भी त्याग करूं? आपका ध्यान हरी की ओर तो आकर्षित हुआ परन्तु क्लेश आदि दुर्गुणों की ओर नहीं। कितनी वेदरकारी! विचार-शक्ति की कितनी न्यूनता!

बम्बई शहर में एक सुखी कुटुम्ब रहता था। पुत्र बड़ा हुआ। उसका विवाह हुआ। शादी होने के बाद सास वहू के

बनती नहीं थी। प्रतिदिन झगड़ा होता था। पिता पुत्र ने विचार करने के बाद अलग-अलग रहने का निश्चय किया।

पुत्र माटुंगा में रहने लगा। पिता और पुत्र की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। दोनों के यहां टेलीफोन थे। जब कभी एक दूसरे को क्रोध आता, पुरानी बातों का स्मरण हो आता, तब टेलीफोन में "पलाऊ" "पलाऊ" कर लड़ाई शुरु करते थे। दोनों अलग हुए। बम्बई छोड़ कर पुत्र माटुंगा रहने लगा, परन्तु झगड़ा न निपटा। इस लड़ाई का कारण कौन? टंटाखोर टेलीफोन ही न? यह आज श्रीमंतों की सम्पत्ति का प्रदर्शन और सुख का साधन गिना जाता है। इसी में अपनी श्रीमंताई समझी जाती है। लीलोती और हरी का त्याग करने पर भी लड़ाई तो चालू ही है। वह पर्व के दिनों में लीलोती न खाने पर भी लड़ाई की बात याद आते ही टेलीफोन की शरण लेकर अपनी वासना की पूर्ति करेगी।

विज्ञान के साधन कितने दुःखमय है? इसका आपने गहराई से विचार ही नहीं किया है। इस विषय पर फिर किसी दिन विचार करेंगे।

स्नान और शृंगार—पर्व के दिन स्नान करने का त्याग कर दिया। जल को शरीर से दूर रक्खा, परन्तु अंगों पर शृंगार करने की भावना, सोने के आभूषण और जरी तथा रेशम के कपड़ों को दूर न किया। आज रेशम या जरी के वस्त्र नहीं पहने या सकते, सोने का स्पर्श नहीं किया जासकता, इसका कभी स्मरण भी हुआ है? स्नानादि छोड़ सकते हैं, परन्तु चटकीले भड़कीले शृंगारमय वस्त्रों का त्याग नहीं कर सकते।

सुवर्ण का मोह सर्व पापों का बाप है—मेतारज मुनिवर का दृष्टान्त आप ने सुना होगा। परन्तु जब सुना हुआ, सुना हुआ ही रह जावे तो सुनना निरर्थक है। जीवन में उतारने का प्रयत्न जब तक न किया जाय तब तक यह व्यर्थ है। मैं आप को फिर से वह दृष्टान्त सुनाता हूँ।

एक बार मेतारज मुनिवर एक सोनी के घर पर गोचरी के लिए पधारे। उस समय वह सोनी राजा श्रेणिकके लिए हार बना रहा था। मुनिराज को अपने घर आते देखकर सोनी हर्षित होता है। सोनी अपने आप को कृतकृत्य समझता है। सब कार्य छोड़ कर सोनी मुनिवर को रसोई-घर की ओर ले जाता है और भक्तिभाव से भोजन बहोराता है।

इस बीच में हार के लिए बनाये हुए सोने के दाणों को धान्य के दाने समझ कर मुर्गा चुग लेता है। मुनिराज गोचरी लेकर लौटते हैं। सोनी भी फिर अपने काम में लग जाता है। उसे मालूम पड़ता है कि सोने के दाने गुम गये। राजा को हार शाम को ही देने का था। अब क्या हो ?

सोनी को शंका हुई, कि जब मैं रसोईघर में गया तब मुनिराज ही ने सोने के दाणे ले लिये होंगे। वह मुनिराज के पीछे जाता है और कहता है कि "महाराज महाराज, खड़े रहिये।" मुनिराज खड़े रहते हैं। सोनी क्रुद्ध होता है। वे सहन कर लेते हैं और कहते हैं कि, "भाई! देख ले, मेरे पास कुछ नहीं है।" सोनी का क्रोध बढ़ता ही जाता है। वहाँ से मुनिराज को अपने यहां ले जाकर कोटड़ी में बद कर देता है। नया गिला चमड़ा मुनि-

राज के मस्तक पर बाँध कर धूप में खड़ा करता है। चमड़ा खिंचा जाता है। और अन्त में अपने प्राण छोड़ देते हैं। इतने में सोने के दानों को चुग गया हुआ मुर्गा बींट करता है और उसकी बींट में वे दाने सोनी की नजर में आते हैं। सोनी बहुत भयभीत होता है। सोनी के पश्चाताप का ठिकाना नहीं रहता।

सोनी के विचारों में अचानक ही परिवर्तन होता है। वह मुनिराज के वस्त्र धारण कर लेता है। और दीक्षा ले लेता है। आप उसे पापी कहेंगे, परन्तु एक पलड़े में सोनी की धर्म भावना और दूसरी ओर आज के धार्मिक कहलाने वालों की धर्म-भावना को रखिये तो सोनी का पलड़ा ही झुकेगा।

सोनी के विचारों के परिवर्तन पर विचार कीजिए। आप घंटे के पहिले ही वह पापी था। वही पापी क्या आप घंटे के बाद दीक्षा लेने के लिए तैयार हो सकता है? पापी कौन सोना, या सोनी? वास्तव में, सुवर्ण का मोह ही पाप है।

मुनिराज का घात करने वाला सोना आपके घर में आप के शरीर पर शोभा देता है। किसी के बच्चे को साँप काटे तो क्या उस साँप को वह पालेगा? साँप को दूध पिला कर कोई अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारेगा? जो नौकर आप का अपमान करे, आप उसे रखेंगे? सोने से आप को प्रेम है या नहीं? आज घर में और शरीर पर मुनि का घात करने वाला ऐसा पापी सोना नहीं रखने वाला कोई महावीर का भक्त होगा क्या?

स्पार्टा देश के राजा की सादगी—स्पार्टा देश के राजा लाइकरगस ने अपने राज्य में ऐसा कानून जारी किया था, कि अपने देश में कोई सोना नहीं पहन सकता। सोने का उपयोग

केवल चोर या शत्रुओं के पैरों में बेड़ी डालने के ही काम में लाया जाता था। हीरे और मोती के वजनदार आभूषण चोर के कानों और नाकों में लगवा कर दुख दिया जाता था।

उस राजा ने, अपने राज्य की प्रजा में सुलह शान्ति और प्रेम बना रहे इसलिए, सोने का इतना अनादर किया था। वह राजा सुवर्ण के रत्नजडित सिंहासन के स्थान पर लकड़े के सिंहासन पर घास बिछाकर बैठता था।

पुत्र से भी प्यारा पैसा—किसी भाई के पाच पुत्र हों। पाचों विवाहित हों। रोग फैले और पाचों पुत्र और पुत्रवधु प्लेग का भोग बन कर मर जावें तो थोड़ी देर बहुत ही पश्चाताप करेगा। दूसरे दिन दूध या चाय पीयेगा या नहीं ? शक्कर बिना या शक्कर डाल कर ? ऐसा पुत्र और पुत्रवधु का शोक है। दो चार महीने में वह सब भूल जावेगा।

एक और दृष्टान्त पर हम विचार करें। एक व्यक्ति है जिसके पाच पुत्र और पुत्रवधु हैं। उसे व्यापार में लाख रुपयों का नुक़सान रहा। दुख किसको अधिक होगा ? जिसके लाख का नुकशान हुआ उसे या जिसके पुत्र या पुत्रबधु को मृत्यु हो गई है उसे ? लाख रुपये का नुकसान हुआ है उसी को दुख होगा, क्योंकि उसके पैसे रूपी पुत्रों का विनाश हुआ है। पुत्रों को तो चार पाच महिने में ही भूल जावेगा परन्तु पैसे रूपी पुत्रों को जीवन पर्यन्त नहीं भूलेगा। पुत्रों की मृत्यु का घाव तो मिट जायगा, परन्तु पैसों के विनाश का लगा हुआ घाव कभी नहीं मिटेगा।

आपको यदि हमेशा के लिए सोने का त्याग करने के लिए

कहा जाय तो शायद वैसा आप नहीं कर सकेंगी, परन्तु आज पर्व के दिन तो अवश्य त्याग कर सकेंगी। आपमें स्वतः यह भावना जागृत होनी चाहिए कि "आज मास क्षमणा का पर्व है तो सोना और किनारीदार या विदेशी वस्त्र न पहिनने चाहिए।"

सोना पापी नहीं परन्तु सोने का मोह ही पापी है। भाग त्याग का त्याग करने से पहिले शृंगार और आभूषणों का भी त्याग करना चाहिए। आज शुद्ध खादी पहिनना चाहिए। आपको खादी की पोशाक में देखकर कोई प्रश्न करे कि आज ऐसा कैसे ? तो आप कहना कि आज धार्मिक पर्व है। आज चर्बी वाले या रेशम वाले वस्त्र नहीं पहिने जा सकते।

धर्म स्थान को अपवित्र न कीजिए—पर्व के दिन उपाश्रय में आप भड़कीले वस्त्र पहिन कर उपाश्रय में आते हैं। एक बाई पाँच सौ रुपये की साड़ी पहिन कर आती है। तो दूसरी बाई तीन चार बड़ी बड़ी किनारियाँ लगी हुई साड़ी पहिन कर आती है। तो यह स्वाभाविक है कि दूसरी बाई की नजर उसी साड़ी की ओर ही होगी। उसका ध्यान उधर ही रहेगा धार्मिक व्याख्यान की ओर नहीं। कहिये इसमें धर्म या अधर्म ?

एक श्रीमंत श्रीखंड पूरी खाता है। पड़ोस वालों का बालक खट्टी छाछ और रोटी खाता है। उसकी दृष्टि श्रीमंत की थाली पर पड़ते ही उसकी आँखों में आँसु की धारा बह चलेगी। हा ! उसके भाग्य में खट्टी छाछ और सूखी रोटी है। उसी प्रकार उपाश्रय में आने वाले श्रीमंत-पुत्रों की चीजें देख कर गरीब बालक रुदन करते हैं। धर्म स्थानक में शान्ति की प्राप्ति के लिए आते हैं, परन्तु उनकी शान्ति का भंग होता है। उनका मूल सूख जाता है।

अपने भाग्यों को कोसने लगते हैं। यदि सभी सादे वस्त्र धारण कर आवें तो क्या किसी को आसु बहाने पड़ें या किसी की शांति का भंग हो ? कभी नहीं।

चर्बी वाले वस्त्र पहिन कर आने वाले स्थानक को अपवित्र करते हैं। खुद अपवित्र बनते हैं दूसरों का भी बनाते हैं। उपाश्रय में बिराजित मुनिराजो को चक्षुओं को भी अपवित्र बनाते हैं। अपनी इस सभा में शुद्ध खादी धारी और चर्बी वस्त्र धारी दो विभाग कर दिये जावें तो अपवित्र होने के प्रश्न का हल सहज ही में हो सकता है। आज यदि सच्चा मास खमण समझते हैं तो अन्तर आत्मा को शुद्ध कीजिये। आत्मा के शृंगार में सभी शक्तियों का उपयोग कीजिये।

जिस स्थान में आने पर मनुष्य में तप, त्याग, वैराग्य और सयम की भावना जागृत होनी चाहिये, उस स्थान में आप अपने वस्त्र द्वारा तथा आभूषणों द्वारा विलासी और शृङ्गारी भावनाए और उसके परमाणु बिखेर रहे हैं।

गुड़ और शक्कर दोनों में मीठापन है। आप इन दोनों वस्तुओं को साथ रक्खेंगे या अलग अलग ? शक्कर और नमक दोनों सफेद वस्तु हैं, उन्हे सम्मिलित रक्खेंगे या पृथक् ? आप नमक को अलग ही रक्खेंगे, नहीं तो शक्कर बिगड़ जायेगी। दूसरी बात नमक से शक्कर की कीमत अधिक है। शक्कर की कीमत आप जान सकते हैं, परन्तु खादी के वस्त्र की पवित्रता की कीमत आप नहीं जान सके। यदि खादी की कीमत आप जान पाये होते तो समझ सकते, कि चर्बी के वस्त्रों से धर्मस्थानक अपवित्र होते हैं। साथ में बैठने वाले भी अपवित्र बनते हैं। और समझ

होने पर गुड़ और शक्कर तथा शक्कर और नमक की भांति खादर धारी और विलायती वस्त्रधारी, इस प्रकार के दो विभाग इस सभा में भी दृष्टिगोचर होते।

लग्न प्रसंग पर यदि आप काला वस्त्र धारण करें तो चल सकता है ? श्मशान यात्रा में लालवस्त्र पहिन कर जा सकते हैं ? हरगिज नहीं ! लौकिक प्रसगों पर तो आप अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का उपयोग करते हैं, परन्तु अलौकिकप्रसगों पर आपकी तलवार की धार के समान तीक्ष्ण बुद्धि कुण्ठित बन जाती है। क्यों ठीक है न ? धर्म स्थानक में आते समय अमुक प्रकार के ही वस्त्र चाहिये, इस बात पर भ कभी विचार किया ? आपको धर्म के प्रति मान ही कहां है ! लौकिक प्रसंग पर यदि आप रिवाज के अनुसार वस्त्र न पहिनें तो उसमें आप अपनी इज्जत की रक्षा नहीं होने का मानते हैं, परन्तु इन अल किक अवसरों पर आपको अपनी इज्जत का भान ही नहीं होता ! यही सिद्ध करता है कि आपकी धार्मिक भावना कितने अंशों में सत्य है।

आपको अमुक प्रकार के वस्त्र धारण किये हुए देखकर कोई भी यह समझ जाता है कि आप विवाह प्रसग में सम्मिलित होने जा रहे हैं। उसी प्रकार यदि उपाश्रय में आते हुए भी आप किसी खास प्रकार के पवित्र वस्त्र धारण करें तो दूसरे भी यह सहज ही में जान सकते हैं, कि आप उपाश्रय में पधार रहे हैं।

विलासी वस्त्रों क प्रेमी, लीवरपूल और मानचेस्टर की मीलों के विज्ञापन करने वाले आनरेरी नौकर या दलाल हैं। धर्मस्थान मे उन फेशनेबुल वस्त्रों को शरीर पर धारण कर पधारने वाले अपन स नहीं, परन्तु वर्तन से दूसरों को उन वस्त्रों को धारण

करने का उपदेश करते हैं और वहा के माल को प्रोत्साहन देते हैं।

आप अपनी दूकान की ओर जा रहे है। रास्ते ही मे कोई मुसलमान का लड़का आपसे कहे कि "भाई मुझे कुछ दीजिये, मैं भूखा हूँ, खुदा तुम्हारा भला करेगा।" उस समय आपको एक पैसा देने की भी इच्छा नहीं होती। आप विचारते हैं कि इसको कुछ भी दिया वह अडे मास आदि अखाद्य पदार्थ खायेगा और उसका पाप मुझे लगेगा।

वहां आप अपनी बुद्धिरूपी तीक्ष्ण तलवार का उपयोग करते हैं परन्तु जब आप खुद हजारो रुपयो के चरबी और रेशम के विलायती वस्त्र खरीदते हैं, लाखों का व्यापार और दलाली करते हैं, तब लेशमात्र भी विचार नहीं करते हैं कि इनके उत्पादक कौन हैं ? कैसे इनको तैयार किया जाता है ? सब जगह आपकी बुद्धि पहुँचती है, परन्तु यहा नहीं।

एकासन और एक भाव—(Fixed Rate) आज आप एकासन तो कर लेंगे परन्तु आज पर्व के दिन दुकान पर एक ही भाव रखना ऐसा विचार आपको कभी नहीं आता।

Honesty is the best policy प्रमाणिकता यह उत्तमोत्तम तरीका है। सत्य और प्रमाणिकता से अधिक कमाई हो सकती है ऐसा युरोपवासी समझ सके हैं।

युरोप में एक भाई किताब खरीदने गये। पुस्तक की कीमत पूछने पर एक रुपया बताई गई। दुबारा पूछने पर सवा रुपया और फिर तीसरी वार पूछने पर डेढ़ रुपया बताई गई। उस आदमी ने जाकर फर्म के मैनेजर से तहकीकात की, तो मैनेजर ने

इस पुस्तक की कीमत पौने दो रुपये बताई। उस भाई ने पुस्तक की कीमत में इतने अन्तर का कारण पूछा तब मैनेजर ने कहा कि आपने तीन बार कीमत पूछी उसके चार चार आने बढ़ गये। यदि हमारे यहां ऐसा हो तो एक रुपये का माल तेरह आने में देना आवे। आप ही विचार कीजिये इसमें झूंठ बोलने वाला जीता या सच बोलने वाले को लाभ हुआ?

पौषध में भी पैसे की लालसा—आप कई पौषध कर सकेंगे परन्तु वे ऐसा कभी न सोचेंगे कि आज दुकान में जो लाभ होगा इस घर में न रखकर परोपकार में लगा दूंगा। सेठ ने पौषध किया है, नौकर दुकान चला रहे हैं। दुकान खुली है अतः सेठ का मन उधर ही दौड़ता है। पौषध भ्रष्ट होता है। यदि दुकान बंद हो या लाभ को परोपकार में लगाने का निश्चय किया हो तो शायद ही मन दुकान की ओर दौड़े। परन्तु पौषध करने वाला समझे कि आज मैं दुकान के पाप से बरी हूँ, तो यह मान्यता कुछ अंशों में ठीक हो सकती है; परन्तु सम्यग् प्रकार से विचार किया जाय तो जिस प्रकार मील का डाइरेक्टर एक स्थान पर स्थित होते हुए भी हजारों मशीनें मील में जोरों से चलती हैं। उनमें उन मशीनों को चलाने वाला कौन? डाइरेक्टर ही न? इसी प्रकार यदि पौषध करने वाला भले ही एक स्थान पर स्थिर है, परन्तु यदि उसकी मनोवृत्ति अस्थिर है तो वह पूर्णतया में पाप से कहाँ बच सकता।

पर्व के दिनों में पौषध का विचार होता है, परन्तु पैसों का ममत्व घटाने का विचार नहीं आता। यही समझाने का मेरा

आशय है, पौषध की धर्म भावना को बदनाम करने का नहीं। पर्व के दिन उपवास करने वाले बहुत हैं, परन्तु मृषावाद का त्याग करने वाले बहुत अल्प। नवकारसी करेंगे परन्तु नम्रता धारण नहीं कर सकते। पौरसी करेंगे परोपकार नहीं। प्रतिक्रमण करेंगे पर प्रमाणिकता ग्रहण नहीं करेंगे। सामायक करेंगे परन्तु सत्ता का त्याग करना शक्य नहीं।

पर्वाराधन—पर्वों का सत्य आराधन तभी माना जा सकता है, जब कि पर्व के दिनों में जिस प्रकार नवकारसी, पौरसी एकासन, उपवास, पौषध, प्रतिक्रमण आदि क्रियाऐं करने की स्वाभाविक इच्छा होती है उसी प्रकार उन दिनों में नम्रता, परोपकार, प्रमाणिकता, सत्यता, शान्ति आदि आन्तरिक गुणों की आराधना भी स्वतः हो। और इसी प्रकार यदि पर्वाराधन हो तभी पर्व सफल माने जा सकते हैं। नहीं तो वर्तमान समाज की कार्यगति ठीक वैसी ही समझी जा सकती है, जैसी कि चौमासे में नालों पर डाटे लगाना और दरवाजे खुल्ले रखने की प्रवृत्ति।

श्रोता और वक्ता की सफलता—आप जगल जाते हैं उस में पाच ही मिनिट लगते है, परन्तु जिस दिन पेट साफ़ नहीं होता उस दिन फौरन चूर्ण ले लेंगे। अपने पेट की सफ़ाई के लिए अथवा पाच मिनिट का समय निरर्थक न जाय इसलिए। इसकी भी आप को इतनी चिन्ता रहती है तो आज आप उपाश्रय में आये हैं। आप का आना, सुनना और हमारा बोलना निरर्थक न हो ऐसा कीजिये। आप का हमारा बोलना हम तभी सार्थक समझेंगे जब कि श्रावकगण इन महापर्व के दिनों में उपाश्रय में

सुवर्ण आभूषण या परती के अपवित्र वस्त्रों के स्थान पर हुए वैसे खादी के उज्ज्वल वस्त्रों से और वैसे ही पवित्र गुण रूपी आभूषणों से सुसज्जित होकर इस सभा में हमारे सन्मुख बैठे हुए दृष्टिगोचर हों।

३—जीवन के साथ जकड़ा हुआ जड़वाद

प्रथम दिन—प्रथम व्याख्यान में मैंने समझाया था कि दूध, दही, घी, मेवा, मिठाई, खाते हो तथा महलों में निवास करते हो तो अपना जीवन भी दूध के समान स्वच्छ, प्रकृति दही के समान शीतल; वाणी शक्कर के समान मधुर और मन भव्य महलों के समान विशाल रक्खो और उदार दिल बनो।

द्वितीय दिन—दूसरे दिन पर्व के प्रसग पर व्याख्यान में आपको पर्व की आराधना के लिये समझाया था कि धार्मिक पर्वो में लीलोत्री का त्याग; स्नान की मर्यादा, नवकारसी, पोरसी, एकाशन, उपवास, सामायिक, पौषध और प्रतिक्रमणादि क्रिया करते हो और धार्मिक क्रिया की जागृति के साथ उन क्रियाओं का नबरानुसार अनुक्रम से त्याग, नम्रता, प्रमाणिकता, असत्य का त्याग, समभाव तथा परोपकारादि गुणों की आराधना करो तभी सत्य पर्व का सम्मान रक्षित है ऐसा गिना जा सकता है।

तृतीय दिन—आज व्याख्यान का तीसरा प्रसग है। आज अष्टमी और रवीवार है अत स्वर्ण और सुगन्ध का योग भी है। धार्मिक पर्व है और बैंक होलीडे भी है।

महिने में चार होलीडे आते हैं। उन दिनो में ट्रेने भी कम चलती हैं और ऐंजिन को भी आराम मिलता है। मिलें भी बन्द

रहती हैं, जिससे जोइलरों को भी विश्राम मिलता है तो मानव को तो विश्राम मिलना ही चाहिये।

HOLY-DAY या होली डे—रविवार को हैंक होली डे कहते हो। Holy शब्द अंगरेजी का है उसका अर्थ पवित्रता सूचक है। इस दिन को पिछले दिनों शनि, शुक्र, गुरु बुध, मंगल और सोमवार की दिनचर्या को देखो।

खाते, पीते, सोते, बैठते, व्यापार में, व्यवहार में नौकर और सेठ के साथ कैसा व्यवहार रक्खा? पिछले दिनों में आत्मा का पतन हो ऐसी कोई प्रवृत्ति तो नहीं हो पाइ न! ऐसा विचार करने में और जीवन शुद्धि के पंथ में अग्रसर होवे तभी Holy day (पर्वदिन) गिना जा सकता है।

मेरे अनुभव के अनुसार तो 'हॉली डे' के बजाय होलीडे हामा अच्छा। होली क दिन पटाके छोड़ने में आते हैं, धूल उड़ाने में आती है, विकार वर्द्धक वचन की प्रवृत्ति पोषणा करने में आती है उसी प्रकार छुट्टी के दिन नाटक, सिनेमा, नाच, गान आदि विषय विलास वर्धक प्रोग्राम रखने में आते हैं, तथा दोस्तों को अपने यहाँ निमंत्रण दे कर दूधपाक, शिखंड, बासुन्दी तथा पूरी आदि जिमाते हैं और विषय वासनाओं का पोषण करते हैं। ऐसी कार्यवाही 'हॉली डे' के लायक नहीं होलीडे होली क दिन) के लायक है।

जीवन का प्रवाह—चातुर्मास के समय में से लगभग चौथाई भाग समाप्त होने आया। काल अविरत वेग से प्रवाह कर रहा है। नदी में जितना पानी इस समय है एक मिनट बाद

उतना नहीं रहेगा। प्रत्येक मिनट में नया जल आता जाता है और पुराना पानी सागर मे मिल कर खारा होता जाता है। ऐसे ही प्रत्येक मिनट में शरीर में से परमाणु का प्रवाह जाता रहता है और काल उसे भस्मीभूत करता जाता है। जिससे बाल्यावस्था में से यौवनावस्था तथा वृद्धावस्था आती है, और चौथी अवस्था मरण के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है।

शरीर भी ३ मजिल का एक मकान है। बाल्यावस्था और युवावस्था, ये दो मंजिल तो ढह गई हैं तथा तीसरी मंजिल भी गिरने ही वो है। उसे गिरते क्या देर लगेगी ? अत ऐसे जीर्ण-शीर्ण शरीर से जो भी बन सके अच्छा काम करे, यही जीवन की सार्थकता है।

मानव शरीर पुस्तकागार है। उसमें तीन भाग है। तथा पुस्तक में से नित्य जीवन पृष्ठ बाचे जाते हैं। एक एक पृष्ठ २४ घटों में पढा जाकर समाप्त होता है। फिर दूसरा पृष्ठ निकलता है। ऐसे पुराने पृष्ठ के समाप्त होते ही नया पृष्ठ निकलता है और इसी प्रकार बाल्यावस्था का बालखण्ड तथा युवावस्था का युवक खंड पढ़ा जाकर पूर्ण हो गया। अब वृद्धावस्था के अवशेष पृष्ठ भी समाप्त होने को है। अवशेष पृष्ठ पढ़े जाने पर पुस्तक पूर्ण होगी और अन्य जीवायोनि की अन्य पुस्तक हाथ में लेनी पड़ेगी।

इस नियम से जीवन पृष्ठ नित्य पढ़े जाते हैं और पूर्ण होते हैं। अब थोड़े ही पृष्ठ अवशेष हैं तो भी मानव घी के घड़े वाले शेख चिल्ली की तरह हँस कर खुद विशेष दयापात्र बन रहा है या नहीं ? यह विचारिये।

शेख चिल्ली तथा तुम—घी के घड़े बाल न को एक ही स्थान पर खड़े हो कर, घी के घड़े के भार का ना आयेगे और उसकी मैं मुर्गी लाऊँगा, उसके परिवार को बेच कर बकरी लाऊँगा उसके परिवार को बेच कर गाय लाऊँगा, तथा गाय के परिवार को बेच कर शादी करूँगा। मेरे पुत्र होगा, वह मुझे भोजन करने के लिए दुकान पर बुलाने आवेगा, तब मैं काम में लगा होने से बालक को लात मारूँगा। इस तरह मनो सृष्टी के संसार मे विचरते हुये शेखचिल्ली ने अपने पुत्र को मारने के लिए पैर उठाया कि उसका घी का घड़ा छुटक गया। घी के मालिक ने उसको उपालम्भ दिया तब उसने कहा, कि सेठ तुम्हारा तो घड़ा फूटा और मेरा सारा घर टूटा। उसकी मूर्खता पर सब को हँसी आयगी परन्तु आज की सभा में मे कोई विवेकी विचारेगा तो उसको मालूम पड़ेगा, कि धन का उपार्जन करने के लिए हम गुजरात काठियावाड़ से मां बाप तथा सगे सम्बन्धियों को छोड़ कर बम्बई आये। काले बाल सफेद हो गये। साठ वर्ष की उमर हो गई तो भी तीन वर्ष में लाख रुपये के लाभ की आशा से कोई विलायत न आने तो आफ्रिका के व्यापार भी जाने को तैयार होते हैं। और समुद्री तूफान तथा विदेशी आबहवा आदि सभी कठिनाइयों की कुछ भी नहीं गिनते हुये जाते हैं। आकर के लाख रु० की कमाई की खुशी में हर्षोन्मत्त हो हृदय की गति रुक जाने से मरणा पाता है। ऐसे अनेक प्रकार के साहस धन के लिये करने को मनुष्य तैयार हो जाता है।

धर्माधिकारी कौन?—पैसे के साथ मनुष्य का अत्यन्त प्रेम है। शास्त्रकारों ने १८ पापस्थान फरमाये हैं। उनमें पैसे का

मोह रखना यह ५वा पाप है। और जब तक मानव से पैसे का मोह नहीं घटता तब तक धर्मस्थान मे पैर रखने के योग्य नहीं है ऐसा शास्त्रकारों ने कहा ही है।

पाप का बाप—सारे पापों का उत्पादक पैसे का मोह ही है। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, ईर्पा, निंदा आदि १७ पापों को मानव केवल पैसे के लिए ही करता है।

सारे पापो का मूल पैसा है, ऐसा मनुष्य नहीं समझ पाया है। रूस और जापान, जर्मन और अंग्रेज, इटली और अबीसीनिया का वर्तमान में सहारक सघर्ष हो रहा है, किसलिए ? इसी पैसे के लिए।

मानव को प्रत्येक मिनिट में एक २ लाख की आमदनी हो तो भी वह आत्माराधना या परलोक के सुख के लिए लेशमात्र भी सहायक नहीं परन्तु परम दु खदायक है।

अंतःकरण को खोजो—आप सब अपने अंत करण को खोजिये। अगर आप अपने अत करण को चीर कर देखेंगे तो उसमें से आपको कौआ, कुत्ता और साप की लाश से भी अधिक दुर्गन्ध मालूम पड़ेगी।

तुम्हारे पास जीभी, दियासलाई, सुपारी का टुकड़ा या हाथ धोने की मिट्टी कोई पड़ौसी मागे तो तुम एक दो दफा तो हिच-किचाते हुये दे दोगे पर यदि वह और मागे तो तुम साफ जबाब दे दोगे कि रोज २ यह क्या। एक लखपती भी पड़ौसी का धर्म समझकर उसे जीभी या दियासलाईके लिए मना करता है। जिसे

इतनी तुच्छ वस्तु में भी इतना मोह है वह मानव मृत्यु के समय बाग, बगीचा, गाड़ी घोड़ा, मोटर और हीरा मोती, स्त्री, विनीत पुत्र तथा पुत्रवधुओं का मोह कैसे छोड़ सकेगा। इन सबको छोड़ते समय उसे कितना दुःख होगा? जैसे किसी की छाती पर चोर बैठ कर तथा हाथ में छुरी लेकर तिजोरी की चाबी तथा गाड़ा हुआ धन मांगे तो वह दांत पीस कर, हाथ जोड़कर बड़ा दुख से उस चोर को देता है। वैसे ही ममत्व बुद्धि वाले मानवों को मृत्यु के समय अपार दुःख होता है। वे मक्खी की तरह हाथ घिसते हुये परलोक सिधारते हैं।

पाप को पाप मानो—न घुसो। हिंसा झूठ, चोरी तथा व्यभिचार में तुम जैसे पाप मानते हो वैसाही पाप पैसे के ममत्व में भी मानो। कोई ६० वर्ष का वृद्ध पुरुष जिसके ५ लड़के पुत्रवधुयें, पौत्र तथा पौत्रियां हैं ऐसा मनुष्य शादी करने के लिये जाता है तो तुम उसे सत्कार दोगे? उसकी प्रवृत्ति को योग्य मानोगे या उस पर थूकोगे? नहीं माने तो पिकेटिंग करोगे? उसे समाचार पत्रों में छपवाओगे? ऐसे भी नहीं माने तो क्या तुम गाँवों गाँव पत्र लिख कर उसे गधे पर चढ़ाओगे? या उस कन्या को अन्य स्थान पर ले जाने की प्रेरणा करोगे?

कोई युवक २५ वर्ष की उम्र का या उससे ऊपर का है उसकी शादी सुखी और खानदानी कुटुम्ब की कन्या से हुई है तो भी वह पैसे के घमण्डमें एक ऊपर दूसरी करनेके लिये तैयारी करेगा तो क्या तुम युवक को सत्कार दोगे? नहीं दे सकोगे।

विषय वासना चौथा पाप है तो धन की वासना पाँचवां पाप है।

शादी करने वाले वृद्ध का भले ही वह लखपती हो—एक कन्या के जीवन धन का हरण करने के कारण तुम वहिष्कार करते हो परन्तु बाजार में यंत्र तथा अपनी कपट कलामय वुद्धि की मदद से हजारों गरीबों का जीवन धन हरण करने वालों का भी वहिष्कार कर सकोगे ? उसके साथ असहकार कर सकोगे ? उनको समझा सकोगे कि दादाजी तुम्हारी उमर ६० वर्ष की हो गई है, बहुत कमाया है, तो अब इस वेकारी के जमाने में अन्य युवकों के लिये कमाने का क्षेत्र खाली करदो, तथा तुम अन्य परोपकार के कार्य में जुट कर जाति समाज तथा देश की सेवा करो और धन के ममत्व के महापाप से बचो। धनवान युवक धनकी लालसासे विशेष कमाने का यत्न करता हो तो तुम उसे भी समझा सकते हो कि तुम भी तुम्हारा जीवन देश सेवामें वलिदान करदो।

मेरे शब्द आपको अव्यवहार्य लगेंगे, परन्तु शास्त्रीय तत्त्व के रहस्य को समझने के लिये यत्न करोगे तो ज्ञानी के शब्द सम्पूर्ण व्यवहार समझा देंगे। तत्त्वों को समझनेके लिये, उतनी योग्यता प्राप्त करने के लिये अनेक युग तथा अनेक वर्षों के तात्त्विक वाचन तथा मनन की आवश्यकता है।

जौहरी का जवाहरात—थोडे वर्ष पहले मैं जयपुर गया था। वहाँ के एक जौहरी ने मुझे रत्न-जटित स्वर्ण की एक लकडी बताई और उसकी कीमत पचास हजार कही। उसकी यह कीमत मुझे सत्य मालूम हुई।

दूसरे दिन वह मेरे पास हीरा, मोती, माणक, नीलम आदि

जवाहरात लाया और एक एक की कीमत ७० स ७५ हजार रुपयों की कहने लगा। जवाहरातों की अनभिज्ञता तथा नकली और असली को न समझ सकने के कारण में यह कीमत रुपयों की संख्या के बराबर आनों की भी नहीं समझा। उसे समझने के लिये वर्षों का अनुभव चाहिये। हीरा, मोती, माणिक जो कि पत्थर के टुकड़े हैं उनकी परीक्षा सीखने के लिये ५ से ६ वर्ष चाहिये तो प्रभु महावीर के ज्ञानरूपी जवाहरात की परीक्षा करने के लिये तुम्हें कितने वर्षों का भोग देना चाहिये? उतना भोग दो तभी सत्य वस्तु समझ सकते हो।

लगन की लगन—एक भाई की शादी होने को हो और जो चौघड़िया उसके लग्न का हो उसी चौघड़िया में उसके माता पिता हृदय की गति रुक जाने से मरण पावें तो वह वर माता पिता की लाश छोड़ कर शादी करने आयगा या शादी करना छोड़ेगा? लग्न के लिए उसे लगन लगी हुई है, जिसमे वह माता पिता के मरण की चिन्ता न करते हुये शादी के कार्य में जुटेगा। लग्न की क्रिया पूर्ण होने के बाद माता पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिये लोगों को बुलायगा। खुद शादी में लग जायगा।

यदि विवाह जैसी लगन शिव-रमणी के साथ लग्न कराने वाले ज्ञान के लिए हो तो ही सत्य का स्वरूप समझा जा सकता है।

यन्त्रवाद या जड़वाद—मगर आज के जड़वाद के जमाने में मानव यन्त्रवाद का उपयोग करके यंत्र जैसी जड़ता के

अनुभव करते हैं। जब तुम्हारे प्रांगण में पानी पीने के लिए कुआँ था तब तुम उस गहरे, गंभीर तथा शान्त कुये के पानी को पीते थे जिससे तुम्हारी बुद्धि भी वैसी शान्त, गहरी तथा गंभीर बनती थी, तब इस समय तुम्हारे प्रांगण में नल है कि जिसका मुख संकड़ा है, नल के संकड़े मुख में घंटों तक रहा हुआ, बासता हुआ पानी तुम पीते हो जिससे तुम्हारी बुद्धि भी गन्दी और सकड़ी हो गई है। नल का पानी विशेष खर्च होगा तो हजार गैलन का १२ आना या रुपया देना पड़ेगा इसलिए धनवान भी अपने नल को तिजोरीवत ताला दे देते हैं जिससे उसका लाभ पानी बिना तड़फते हुए मानव, पशु या पक्षी को भी मिल नहीं सकता। उनको किसी समय पानी बिना अपने प्राण भी छोड देने पड़ते हैं।

यंत्रवाद से तुम्हें पूरा पानी मिल जाता है वैसे ही हवा भी तुम्हें बिजली का पखा देती है और पखे का उपयोग अपने लिए ही करते हो। बिजली के पॉवर का विशेष खर्च न हो जाय इसलिए तुम तुम्हारे पड़ौसी के गरमी में घबराये हुए पुत्र के लिए भी उसका उपयोग नहीं कर सकते या नहीं करने देते। परन्तु यदि तुम्हारे पास तीन पैसे का देशी पखा हो तो उसका उपयोग सब लोग कर सकते या वैसा पखा किसी को दान देने का भी तुम्हारा मन होता। परन्तु डट कर भोजन करने के बाद और घूमते हुए पंखे की हवा खाने से तुम्हारा मन भी यंत्रवादी की तरह स्वार्थी तथा घूमता हुआ होगा।

जब हम तुम्हें दान का उपदेश देते हैं तब तुम्हें उघाई याद आती है, जब हम तुम्हें शील का उपदेश देते हैं तब तुम्हें अपनी या अपने

पुत्र की शादी याद आती है, जब हम तुम्हें तप का उपदेश देते हैं तो तुम्हें भोजनचार याद आता है और जब हम शुद्ध भाव रखने का उपदेश देते हैं तो तुम्हारा मन किसी पर वारंट ले आने के लिए, डिग्री कराने के लिए या जप्ती करने के लिए चला जाता है। इस प्रकार बिजली के पंखे की तरह तुम्हारा मन भी चारों दिशाओं में घूमता फिरता है।

परमाणु कौन सी वस्तु है ? मानव पर उसका असर कैसा पड़ता है ? इसका अभ्यास अगर आप करेंगे तभी अच्छी तरह समझ सकेंगे।

घाटकोपर से बम्बई तक बिजली की गाड़ी में बैठ कर तुम नित्य आते जाते हो। कभी विशेष वर्षा हो तो बिजली का पावर काम नहीं आ सकता और ट्रेन को घंटों तक रस्ते में पड़ा रहना पड़ता है। तब तुम्हारे मन में ऐसा होता है कि यह हत्यारी वर्षा कब बन्द होगी और कब मैं घर पहुँचूंगा। बरसात जो कि अखिल विश्व के लिए जीवनाधार है तथा तुम्हारी भी जीवनाधार है उसे भी स्व के स्वार्थ के लिए बुरा भला कह देते हो। यदि वर्षा न आने की इच्छा न हो और लाखों मानवों एवं करोड़ों पशु-पक्षियों के लिए दुःखदायी दुष्काल के प्रसंग को आमंत्रण देने की दुष्ट भावना मन में न हो तो भी मन में व्याकुलता तो होती ही है।

स्वार्थप्रचार के पुजारी होने से मानव में भी जड़ता घर कर गई है अतएव वह हिताहित का सम्यक् विचार भी नहीं कर सकता। स्वार्थ की आँखमिचौनी में से परमार्थ के लिए कभी आँख

भी नहीं उघाड सकता। और मानव को ही नहीं वरन् पशु को भी नहीं शोभे वैसी पाशवृत्ति और प्रवृत्ति का पोषण करता है।

मानवता या पशुता—यह जमाना बेकारी का जमाना गिना जाता है। व्यापारियों के धन्धे भी ठंडे पड गये हैं झूठी बड़ाई के लिए धनीमानी लोग ज्यादा खर्च करते हैं। आमदनी कम होने के कारण वे खर्च घटाने की भावना रखते हैं। उसके लिए वे हर वर्ष के नाटक, सिनेमा, गाड़ी, घोडा आदि विलास के सामानों को नहीं घटाते हुये नौकरों की तनख्वाह घटाने का विचार करते हैं। नौकरों की तनख्वाह घटाने वाला पुत्र की शादी में ५ हजार के बदले ४ हजार नहीं खरचते हुए १० नौकरों की तनख्वाह मे से ५ रुपया घटा कर १० नौकरों का तथा उनके कुटुम्ब का दुराशीष लेकर मासिक ५० रु का फायदा करते हैं परन्तु उसके बदले मासिक रुपया ५० का विलास का खर्च नहीं घटा सकते। इससे विशेष स्वार्थ और पाशविकता क्या हो सकती है ?

नौकर और पशु—श्रीमन्त खुद के पशुओं की जितनी सम्हाल और ध्यान रखते हैं उसका शतांश भाग जितना भी लक्ष्य नौकरों के लिये शायद ही रखते होंगे। एक घोड़े के पीछे एक नौकर-जो ३०) रुपये पाता हो रख सकते हैं, घोडे को मासिक ३०) का दाना भी खिलाते हैं और मासिक ३०) रुपये किराये की घुडसाल रखते हैं इस प्रकार एक घोड़े के पीछे ९०) रुपये का खर्च एक श्रीमन्त रख सकता है तब वे ही सेठ अपने यहाँ दो या तीन ग्रेज्युयेट उसी तनख्वाह में रखना चाहते हैं

दो या तीन प्रेम्युयेटों को तनख्वाह के अतिरिक्त एक घोड़े का
खर्च ... आता है। घोड़े के पीछे ९० रुपये खर्च
... जो मनुष्यत्व हो तो वे नौकर की तनख्वाह
... कर सकें ? कदापि नहीं।

घोड़े से ज्यादा काम लेने में आया हो तो उसे
... में आता है और नौकर को घोड़े का लेश या मालिश
... का हुक्म होता है। २४ घंटे के लिए घोड़े को आराम दिया
जाता ... ने पीने, की मुकम्मल की, मच्छर न काटे उस
आदि की बारीक से बारीक चिन्ता करने
... ही श्रीमंत नौकर को पेट भरने जितनी तन-
... और नौकर का काम एक ही से लेने की इच्छा
और उनके पास से विशेष कार्य लिया जाय यही उनकी
रहती है। मुकाम पर कार्य करने के उपरान्त घर का काम
काज और खुशामद के लिए नौकर को हाजिर रहना पड़ता है।
जितनी चिन्ता घोड़े के खान-पान और मकानादि के लिए की
जाती है उतनी ही एक नौकर के खानपानादि के लिए करने वाला
कोई श्रीमन्त न देखा है न सुना है।

स्वार्थान्धता —स्वार्थ भावना की वज़ धारा में मनुष्य
इतना खिंच गया है कि वह अपने स्वार्थ के अलावा अन्य कोई
विचार भी नहीं कर सकता। अपने घर में बिच्छू निकलने पर
जीव दया प्रतिपालक उस पकड़ कर पड़ोसी के मकान के पास
छोड़ आएगा। फिर भले ही वह बिच्छू पड़ोसी के मकान में
जाकर उसके निर्दोष बालक या उस ही को काटे। इस बात का यह

जीव दया प्रतिपालक को विचार ही नहीं । झूठा पानी या गन्दगी पड़ोसी के आगन मे छुपे २ डाल आयेंगे पर उन्हें दूसरों को अहित करने में लेश मात्र भी संकोच नहीं होता और वे ऐसे पाप को पाप भी नहीं मानते ।

सत्य पठनः—आप व्याख्यान सुनने और मुनिराजों के दर्शन करने के लिए आते हैं पर सत्य श्रवण और सत्य दर्शन कब समझा जा सकता है ? इस सभा में तार वाला आकर दो व्यापारियो को तार देता है। दोनों ने तार पढा। एक को लाख की हानि तथा दूसरे को लाभ का तार आया था। यह तार पढ कर दोनों के खून की, हृदय की और नाड़ी की गति में परिवर्तन होने लगता है। एक के शरीर में खून उछल रहा है और दूसरे का खून सूखा जारहा हैं ! नफा नुकसान के तार का श्रवण या पठन सही सत्य पठन या श्रवण है वैसे ही सत्य श्रोता को व्याख्यान का असर होने लगता है ।

सत्य दर्शनः—जगल में सांप देख कर आप भयभीत हो कूद पड़ते हैं और आपको वर्षों तक उसकी भयकरता याद रहती है। उसी प्रकार त्यागियों के दृशन की एक ही दिन की छाप हृदय में वर्षों तक रहनी चाहिए। केमरे का कौंच एक सेक-एड ही में मनुष्याकृति का चित्र ले लेता है उसी प्रकार मुनिराज के दर्शन, उनकी पवित्रता और उनके गुणों का स्मरण आपको चिर काल तक रहना चाहिए।

एक ही श्रोता बहुत हैः—आपको एक घोड़े या गाय की आवश्यकता है और कोई मनुष्य आपको निस्तेज ५०० घोड़े

या बाकी हुई ९०० गायें भेंट दे तो क्या आप उन्हें लेंगे ? हरगिज नहीं। आपतो केवल एकही तेजदार घोड़ा या दूध देने वाली गाय पसन्द करेंगे। जैसे सैकड़ों निस्तेज घोड़ों से और सूखी हुई सैकड़ों गायों से एक ही तेजवान घोड़े या दूध देने वाली गाय को मूल्यवान समझते हैं। इसी प्रकार सैकड़ों श्रोताओं से और हजार बार मुनि दर्शन करने वालों से एक ही समय का श्रवण और दर्शन का मनन हो तो वह कहीं अधिक मूल्यवान है।

जैसे एक ही तेजस्वी घोड़ा सवारी के काम में आ सकता है उसी प्रकार एक ही बार का भावपूर्वक श्रवण और दर्शन जीवन के लिए विशेष उपयोगी हो सकता है। और जो एक समय का दर्शन और श्रवण जीवन पर्यंत स्मृति में रहता है और जीवन के प्रत्येक कदम पर उपयोगी होता है वही सत्य दर्शन और श्रवण है। निस्तेज घोड़ों की तरह एक कान से सुन कर दूसरे कान से निकाल देने वाले या पशु की तरह सुनकर चिंतन या मनन न करने वाले सैकड़ों और हजारों श्रोताओं से एक ही श्रोता हजारों व्यक्तियों के लिए काफी है। कौड़ियों के मेरु पर्वत से एक ही हीरा मूल्यवान है। अतः आप सच्चे श्रोता बनेंगे ऐसी आशा करना अनुचित न होगा।

४—मानवता का मूल्य

हीरा मूल्यवान है या उसे देखने वाले—बृटिश सम्राट् के मुकुट में कोहिनूर हीरा जडा गया है। जिसको Mountain of light (प्रकाश का पर्वत) कहा जाता है। उस को देखने के लिये लाखों मनुष्य तरसते हैं। वह कोहिनूर यदि यहाँ पर लाया जाय और उसको देखने की फीस एक रुपया भी रखी जाय तो भी लाखों मनुष्य उस हीरे को देखने जावें। हीरा एक है, उसके देखने वाले लाखों हैं, कोहिनूर को देखने वाले अपने आपको भाग्यशाली मानते हैं कि हमने कोहिनूर हीरा देखा उसको देखने के लिये लाखों मनुष्य उत्सुक रहते हैं। वह हीरा कितना मूल्यवान है ?

कोहिनूर और सूर्य का प्रकाश—एक नहीं बल्कि करोडों कोहिनूर हो, यदि उसको देखने के लिये सूर्य का प्रकाश नहीं है, तो वह कोहिनूर कंकर की तरह निस्तेज प्रतीत होगा। कोहिनूर के प्रकाश की अपेक्षा सूर्य का प्रकाश अनन्त गुणा है, फिर भी सूर्य के प्रकाश का मूल्य अङ्कित करने का किसी को विचार तक भी नहीं हुआ। उसका कारण यही है कि मनुष्यों को सच्चे प्रकाश का खयाल नहीं है।

सूर्य और आँख—करोड़ों सूर्य का प्रकाश मौजूद हो लेकिन यदि देखने वाले के पास पूज समान चक्षु न हो तो वह प्रकाश निरर्थक है। इसलिये कोहिनूर और सूर्य के प्रकाश से भी

आँखों का प्रकाश अत्यधिक मूल्यवान है और उसके अभाव में कोहिनूर और सूर्य की तेजस्विता कोयले से भी विशेष नहीं।

प्रकाश का भी प्रकाश—सब से विशेष प्रकाश पुंज आत्मा ही है जिसके अस्तित्व के बदौलत ही कोहिनूर सूर्य और आँखों का मूल्य है और उसके अभाव में भी सभी अन्धकार पूर्ण समान है फिर भी उस महान तत्व को मानव भूल गया है इतना ही नहीं लेकिन उसके अस्तित्व का मानने के लिए सम्यक समझ भी उनमें नहीं पाई जाती, और उनमें आत्मतत्व को प्रकाश को प्रकाश रूप मानने की प्रामाणिकता नहीं दीख पड़ती।

आत्म तत्व का अधिकारी कौन ?—विश्व के प्राणिमात्र में आत्म तत्व है लेकिन उस तत्व को तत्व रूप से समझने के लिये केवल मनुष्य ही समर्थ है। सर्व जीवात्माओं में प्रगति के लिये प्रयत्न करने वाला केवल एक मनुष्य ही है। अन्य जीव अपना जीवन यन्त्रवत् की तरह व्यतीत करते हैं वे प्राणी आत्म तत्व को समझने के लिये सर्वथा असमर्थ और अयोग्य हैं।

देवों की असफलता—मानव जीवन के महत्व के आगे स्वर्गीय जीवन व्यतीत करने वाले देवताओं का जीवन कीड़े मकोड़े आदि से विशेष मूल्यवान नहीं। जैसे मकोड़े अपनी उन्नति नहीं कर सकते और वे अपना जीवन ज्यों त्यों ही कर देते हैं। इसी प्रकार देवलोक के देव भी अपना जीवन पूर्ण करते हैं। वे देव मानवजीवन की प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील हों लेकिन जिस प्रकार जन्म से ही भिखारी राजा बनने की इच्छा करे, तो

उसकी वह भावना निष्फल होती है; इसी प्रकार देवता भी असफल होते हैं।

चाँवलों के दाने और टन का अन्तर कितना ? चाँवल का दाना रत्ती वाल, माशा, तोला, सेर, मन और टन आदि सब तोल के माप हैं। फिर भी टन और चाँवल के दाने में जितना अन्तर है उससे भी विशेष अन्तर स्वर्ग के जीव और मनुष्यों के बीच में है। स्वर्ग के जीव मनुष्य के सामने चाँवल के दाने की तरह तुच्छ तब मनुष्य टन के नाप की तरह महत्वशाली है।

बादाम और कोहिनूर बादाम, पाई, आना, रुपया, गीनी और लाखों गिनियों का एक कोहिनूर हीरा होता है उसी प्रकार स्वर्ग के जीवों का मूल्य बादाम जितना और मानव जीवन का मूल्य अमूल्य कोहिनूर हीरेके समान है। मनुष्य और स्वर्ग के जीवों में महान अन्तर है।

चिड़िया समुद्र उलीच सकती है—मानव जीवन की महत्ताओं का यशोगान करने के लिये ज्ञानी पुरुष भी समर्थ नहीं, जिस तरह से चिड़िया अपनी चोंच से समुद्र को खाली करने की इच्छा करती है तो उसे सफलता नहीं मिल सकती, उसी प्रकार अनन्त मूल्यवान मानव जीवन की महत्ता का वर्णन करने के लिये महाज्ञानी भी सर्वथा असमर्थ हैं।

गोफन में कंकर के बदले हीरे—जब ज्ञानी पुरुष मानव जीवन के महत्व को समझते हैं तो मानव अपने जीवन को तुच्छ से भी तुच्छ समझता है, उसका यथाशक्य दुरुपयोग करता

है। जिस प्रकार किसान के खेत में कच्चे हीरे पड़े हैं तो वह पत्थर के टुकड़े समझकर पक्षी उड़ाने के लिए गोफन में कंकर की तरह उपयोग करता है उसी प्रकार मानव अपने जीवन रूपी हीरे का एवं आयस विषय विलास, शृंगार, नाटक, सिनेमा, गान तान, ईर्षा द्वेष निन्दा और कलह मय जीवन में उपयोग करता है और परमानन्द मानता है।

जेब में से एक पैसा न गिर जाय इसका ध्यान रखते हैं, परन्तु जीवन के इतने वर्ष पशुवत् विवेक शून्य अवस्था में व्यतीत किये उसके लिये क्षणमात्र भी चिन्ता नहीं होती और न सावधानी ही रखी जाती है। विश्व की तमाम सम्पत्ति की अपेक्षा मनुष्यत्व की सम्पत्ति विशेष मूल्यवान है फिर भी इस सम्पत्ति को विपत्ति रूप समझ कर उसका बन सके उतना दुरुपयोग किया जाता है।

अपने धंधे के लिए प्रति वर्ष नई नई बहियाँ खरीदी जाती हैं। उसके लिए मुनीम भी रखे जाते हैं। आप की दूकान में एक छोटीकोठरी भरमार उतनी कच्चे और पक्के नामेकी बहियाँ होंगी। उनमें पाई पाईका हिसाब रखा गया होगा। लेकिन आपके जीवन भर के व्यवहार के लिए इतने वर्षों में कितनी बहियाँ रखीं? [illegible] वर्ष के उम्र के बीच कितनी जीवन पोथियाँ डाली गईं। प्रत्येक वर्ष के लिये उतनी बहियाँ और बीजे न रखे तो भी क्या प्रति वर्ष के लिए एक भी पन्ना और एक भी लाइन लिख रखी है? प्रति वर्ष एक एक लाइन भी जीवन के लिए लिख रखी होती तो भी वे आपके लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करतीं। व्यवहार के तमाम प्रसंगों को नोट किये जाते हैं और उनके लिए सावधानी

रखी जाती है लेकिन केवल इसी मूल्यवान मानव जीवन के लिये आज तक उपेक्षा रखी गई है और रखी जा रही है।

आत्म निरीक्षण—प्रति दिन सोने के पहले मनुष्य बिस्तर पर बैठे हुये आत्म निरीक्षण-अपने दिनचर्या की आलोचना करे और अशुभ प्रवृत्ति के लिये पश्चात्ताप और शुभ के लिये हर्ष का अनुभव करे तो उस जागृत दशा से भी मनुष्य विशेष सावधान और सत्य पथ का अनुगामी बन सकता है।

करोडों वर्ष की अंधेरी गुफा हो और उस अंधकार को उलीचनेके लिये हजारों मनुष्य लेकर बैठे तो अधकार को नहीं उलीच सकते हैं लेकिन केवल एक दियासलाई का प्रकाश ही उसी क्षण अधकार का नाश कर प्रकाश सर्वत्र फैला सकता है। उसी तरह मानव समाज का चार अगुल के अंत करण रूप गुफा करोड़ों वर्षों से अधकार मय हो रही है जिससे मनुष्य को सत्य का भान नहीं हो पाता है। यदि उसमे आत्म निरीक्षण की-ज्ञान की दियासलाई जलादी जाय तो मारा अधकार दूर कर मनुष्य अपने स्वरूप को पहचान सकता है और सत्य पथ खुद मानकर दूसरों को भी उस पथ पर चला सकता है। लाखों का घोड़ा होने पर भी यदि सवार अधा है तो वह खुद खड्डे में गिरेगा और साथ ही घोड़े को भी ले बैठेगा। उसी प्रकार मानव समाज भी अविवेक और अज्ञानता के कारण विपरीत पथ पर पयान करता है और अपनेआश्रितों को भी विपरीत पथ पर गमन कराता है।

पथ प्रदर्शक बालक और महावीर—पाच वर्ष का बालक हजारों अन्धे मनुष्यों को खड्डे और कुंए में पड़ते हुए

और कुपथ पर जाते हुए रोक सकता है और सब को योग्य स्थान पर कांटे, कंकड़ और शुद्ध स्थान पर ले जा सकता है जिससे हजारों अन्धे मनुष्य निर्विघ्न और निर्भय पंथ पर पयन कर सकते हैं। छोटे बालक की सहायता मिलने से हजारों अंध मनुष्य निर्भय बन कर सत्य पथ के पथिक बन सकते हैं तो हमारे पथ प्रदर्शक तो अनन्त ज्ञानी प्रभु हैं और साथ में हम नेत्रधारी भी हैं फिर भी हम कुपथगामी बनें तो हम कैसे समझे जाने चाहियें ?

चार पैसे का चूना और धार्मिक पर्व—पर्व के दिनों में मनुष्यों में धार्मिक भावना उमड़ पड़ती है परन्तु उसके बाद उन भावनाओं का नाम निशान भी दिखाई नहीं देता। यथाशक्तु पूर्ण हो जावेगी फिर भी उसके अवशेष रूप क्योंकि धन धान्य और घास और गंधियां खड़ी होंगी। नदी और तालाब पानी से भर जावेंगे। वृक्ष और पशु पक्षी भी पूर्ण तारुणीमय और उगते मालूम होवेंगे। पर्व भी धार्मिक ऋतु है परन्तु उसके अवशेष रूप मानव दिल में पूर्णता और शून्यता प्रतीत होती है, दिवाली के दिनों में मकान और दूकान को चार पैसे के चूने से रंगा जाता है फिर भी मकान और दुकान स्वच्छ और सफेद दीखते हैं। तब इस धार्मिक पर्वों में अनेक व्याख्यान सुने गये और दिल को स्वच्छ करने के लिये अनेक धार्मिक क्रियाएं कीं फिर भी विचारवान पुरुष समझ सकेंगे कि उनके मन में शायद ही परिवर्तन हुआ हो ?

पर्वत के पत्थर भी गोल बन जाते हैं—पर्वत के बड़े पत्थर भी जमीन और नदी में रगड़ जाने से चमकीले और

गोल बन जाते हैं। और उनको साधारण सहायता देने से वे आप ही लुढक लुढ़क कर आगे बढ़ते हैं तो मानव के मन को संस्कारी बनाने के लिए नित्य अनेक प्रकार के संस्कार के प्रसग प्राप्त होते हैं। तदुउपरान्त धार्मिक पर्वों के दिनों में धार्मिक पठन पाठन और श्रवण और क्रियाए की जाती हैं फिर भी मानव के मन की कालिमा स्वच्छ होने के बजाय अधिक बढती हुई प्रतीत होती है।

पत्थर में से मानव की आकृति—शिलावट, पत्थर को टांच कर उसमें से इच्छानुसार देव और राजा की आकृति बना सकता है। जब पत्थर के टुकडे मे से भी इच्छानुसार आकृति बनाई जा सकती है तो मनुष्य अपने सुधार के लिये क्या नहीं कर सकता है? मनुष्य चाहे जो बन सकता है केवल चाहिये उस ओर ध्यान और नियमित यत्न तथा भावना। यदि ये बातें हों तो सब प्रकार से सफलता मिल सकती है।

मानव की अपार क्रूरता—सिंह, सर्प, चीता, रीछ जैसे करोड़ों प्राणियों की क्रूरता से भी एक मानव प्राणी की क्रूरता और हिंसा बढ़ जाती है। एक ही वैज्ञानिक एकान्त में बैठ कर जहरी गैस या बम का आविष्कार करता है जिसके फल स्वरूप वह गेस सैकडों मीलों के विस्तार में फैल कर लाखों मनुष्यों को मृत्यु का ग्रास बनाती है। बुद्धि की विशेषता से वह विशेष-तम जहरी साधन उत्पन्न करता है और उसी मे अपने जीवन की सफलता समझता है।

खून की नदियां और लाशों का पहाड़—सन् १९१४ में जर्मन और अंग्रेजों के बीच में महायुद्ध हुआ था। उस समय विलायत में खून की नदियां और मनुष्यों की लाशों के पहाड़ बन गये थे। उस प्रसग को भारतीय जनता परम भाग्योदय समझती थी। सब चीजों के भाव बढ़ गये और सोना चादी की नदियां भारत में बहने लगी हों ऐसा भारतीय मानने लगे थे।

विश्व व्यापी युद्ध की भावना—वर्तमान समय कि जो विश्व शान्ति का समय है उसको आज का व्यौपारी वर्ग मंदी और बेकारी का जमाना मानता है। विश्व व्यापी युद्ध की भावना की माला, आज का व्यौपारी वर्ग फिरा रहा है जिससे कि विदेश से माल का आना बद हो जाय और भावों में वृद्धि हो।

पैसा कहां से आता है—वस्तुओं के भाव बढने से गरीबों का पैसा श्रीमतों के घरों में आता है, विलायती या रेशमी

रुपया विदेश नहीं जाता है। इसलिए गरीबों का पैसा ही श्रीमंत के घर में जाता है। इस प्रकार पैसा एकत्रित कर वे श्रीमंत बनते हैं।

वापसी का अवहन—विश्वव्यापी युद्ध के समाचार सुनते ही सब व्योपारी वर्ग का खून बढ़ने लगता है। घर घर में लापसी का अवहन चढ़ाया जाता है लेकिन दूसरे ही रोज विश्व व्यापी युद्ध की खबरें अफवाह मात्र थीं ऐसे समाचार सुनते ही मनुष्य के शरीर का लोहू सूख जाता है और उन्हें मारी आघात लगता है।

दुष्काल की सुन्दर भावना—धान्य के व्योपारी हमें कई बार कहते हैं कि "साहब! आज कल का जमाना अच्छा नहीं है। धर्म के पुण्य प्रताप से जमाना सुधर जावे तो अच्छा" ऐसे शब्द कई बार सुने जाते हैं। अपने नजीवी स्वार्थ के कारण धान्य का व्योपारी दुष्काल की शुद्ध भावनाएं करता है। और विश्व का सुखमय सुकाल उसको यमराज सा प्रतीत होता है।

पशु और मनुष्यों के कतलखाने—डीवरलूं और मानचेस्टर के कतलखान भीलों के विस्तार में हैं। उसकी निशी इन्हें हैं, जो कि कतलखाने की वस्तुएं जाती आती हैं। उन कतलखानों के मालिक अपनी क्रूरता पशुओं पर चलाते हैं जब कि आज का व्योपारी वर्ग विश्वव्यापी युद्ध के समाचारों से मार बढ़ेंगे इन भावनाओं में मानव जाति का हित सर्वथा भूल जाते हैं और परम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

जहरी गैस से भी जहरी क्या है ?—आज आर्य भूमि अनार्य भूमि होती जा रही है। जीव दया और अहिंसा के हिमायती, बारूद गोला, बम्ब, जहरी गेस आदि का व्योपार नहीं करेंगे परन्तु वे ही व्योपारी उन से भी अधिक भयंकर साधनों का व्यापार विना किसी सकोच के करते हैं, और अपने व्यवसाय को निष्पाप मानते हैं।

यंत्रवाद की महान लूट—दुष्काल से पीडित होकर मरने की अपेक्षा तलवार की मार पशु विशेष पसंद करते हैं इस-लिए तलवार से भी दुष्काल विशेष भयकर है, उसी प्रकार चोर और लुटेरों की चोरी और लूट से यंत्रवाद की व्यापक चोरी और लूट विशेप भयकर है।

व्यापक शोषण नीति—यन्त्रवाद ने करोडों गरीबों की रोजगारी आजीविका छीन ली है। सुख की रूखी रोटी भी लूट ली है। करोडों को भूख से पीड़ित कर मार दिया है। एक ही मील ने लाखों विधवा बहिनों की आवक को, जो कि चरखे से अपना गुजर करती थीं, छीन ली है। इस प्रकार मिल मालिकों की व्यापक शोषक नीति है।

तोप के गोलों से भी भयंकर—मील, जीव और ये साधन तोप के गोले या बोम्ब के गोलों से अल्प भयंकर हैं प्रेस के स्टोर वाले भी मिल मालिकों की मांग को पूर्ण कर देश के भुखमरे में वृद्धि करने वाले साधनों की पूर्ति करते हैं। और ऐसा विचार कोई विचारक संभवत ही करेगा।

पाप का प्रकाश—चोरी करने वाले, चोर के साधनों

पूर्ति करने वाले, मदद देने वाले, उसकी वस्तु लेने वाले, बेचने वाले, दलाली करने वाले, हिसाब रखने वाले आदि सभी चोर की पंक्ति में गिने जाते हैं। इसी प्रकार व्यापक शोषक नीति वाले यन्त्र वाद को प्रोत्साहन देने वाले भी व्यापक लूट-खसोट के अपराध के भागीदार हैं। नारकी जीव नरक में से निकलने के लिए कोलाहल मचाते हैं जब कि यन्त्र वाद का कोलाहल नारकी जीवन में प्रवेश करने के लिए किया जाता हो ऐसा अनुभव होता है। यह स्वार्थमय व्यापारी भावना अपने हिताहित का लेशमात्र विचार नहीं कर सकती है। मानव की मन: सृष्टि भिखारी के लिए भैंस मारने के समान होती जा रही है।

जीवन का दुरुपयोग—बंदर को कोहिनूर हीरे का हार पहिनाया जावे तो उस हार को वह मिश्री का हार मान कर चूसने और खाने लगेगा। लेकिन वह उसे नीरस मालूम होगा तब क्रुद्ध हो कर वह फेंक देगा। कुम्हार हीरे को गधे के गले में बांधेगा। साग बेचने वाला उसे तराजू की डंडी पर बांधेगा। जब कि जौहरी उस हीरे को राजा के मुकुट पर जड़ कर अपनी और राजा की शोभा बढ़ायेगा। इसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन का सदुपयोग या दुरुपयोग करता है। मनुष्य में बुद्धि की विशेषता है। परन्तु वह उसका उपयोग स्व-पर के विकास के लिए न करता हुआ विनाश ही के लिए करता है और मानव में स्वार्थ भावना इतनी अधिक बढ़ती जाती है कि जो पशुओं के जीवन को भी लज्जित कर देती है और वह इसी में अपना आदर और अपने जीवन की सफलता समझता है।

जीवित मुद्रा लेख पढ़िये—जीवन के सदुपयोग के लिए विश्व में गाय, भैंस, घोड़े ऊँट, हाथी रूपी बड़े बड़े जीवित मुद्रा लेख नित्य मनुष्य के समीप दिखाई पड़ते हैं लेकिन उन मुद्रा लेखों को देखने और पढ़ने के लिए अध वृत्ति, सुनने के लिए बधिर वृत्ति और विचार के लिये अनुभव होती है। वे जीवित मुद्रा लेख अनेक बार दृष्टि समीप आते जाते रहते हैं और विचार करने का सकेत करते हैं कि हम भी तुम्हारे संसार के प्राणी ही हैं। सेवा और सत्कार के अभाव से इस तरह कष्ट में जीवन व्यतीत करते हैं। कृपा करके आप अपने जीवन का सदुपयोग कीजिये। जिससे आपको हमारे जैसे कष्टों का अनुभव न करना पड़े। हमको देख कर, हमारे जीवन के पाठो को पढ़ कर आप अपने जीवन का सुधार कीजिये तब हमारे जीवन की अधमता को भी आप जान कर अपने आपको धन्य समझेंगे कि मनुष्यों के नेत्रों को खोलने के लिए हम साधन मूल बन सकें।

एक ही जीवन मुद्रा लेख पढ़िये—हमारा एक ही मुद्रा लेख पढिये। गाय के बछड़े की तरह जन्म होने के बाद जनेन्द्रिय के कोमल और गुप्त अगों को हमें पत्थर पर कटाना पड़ता है उस समय की वेदना ईश्वर ही जान सकता है। बड़े होने पर अपने शरीर पर भार से लदी हुई गाड़िया खींचनी पड़ती हैं ऊपर से लकडी की मार खानी पड़ती है। मरने के बाद हमारे चर्म का ढोल बनता है उस पर भी डडे को प्रतिदिन मार खानी पड़ती है। इस प्रकार अनेकों कष्ट सहन करने पड़ते हैं यदि इन कष्टों से मुक्तिप्राप्त करनी हो तो जीवन की सफलता का विचार

कीजिये । पशु भी उपकार करने वाले के प्रति प्रेमभाव रखता है, यदि आप उससे पृथक हो तो अपकारी के प्रति प्रेमभाव रखिये इसी में सच्ची मनुष्यता है ।

शरीर रक्षा और आत्म-रक्षा।—जितनी सावधानी शरीर के लिए रखी जाती है उससे भी अधिक सावधानी आत्मा के लिए रखनी चाहिये । किसी मकान को भाड़े रखना हो तो उस समय मकान, मोहल्ला, आसपास का वातावरण, मकान के बारे हवा प्रकाश आदि सभी बातों पर ध्यान देते हैं और उसके बाद खान-पान में, सोने-उठने में सब तरह से सावधानी रखते हैं । शरीर की सेवा मात्र कभी भी बदलती है तो आत्म रक्षा-आत्म साधना के लिए कितनी रक्षा और जागृति रखनी चाहिए ।

छोटे से छोटी भूल—जीवन की छोटी या बड़ी इच्छापूर्वक या बिना इच्छा से की गई भूल असम्य है । भूल से जीवन में एक ही बार विष के लड्डू खा लिए जायें तो मृत्यु सम्भव है । सीढ़ी का एक ही डंडा चूक जाने पर हड्डियां टूट जाती हैं । इसी प्रकार धार्मिक गुणों की छोटी या बड़ी त्रुटि भी असम्य है । अग्नि अंधकार का नाश करती है और अपथ्य भोजन को भी पथ्य बनाती है लेकिन उसका सदुपयोग न किया जाय तो वह भोजन और उसको जलाने वाले को भी भस्म कर सकती है

सुख दुःख का भण्डार—मानव जीवन भंडार के समान है । इच्छा हो तो सुख का भंडार भर लीजिये जिससे कि वह सुख स्थायी जीवन में अनंत काल तक शान्ति दे सके यदि इच्छा हो तो दुःख का भंडार भर लीजिये जिससे वह नारकीय

और पशु योनि के जीवन में भी अनंत वर्षों तक साथ दे सके। जैसी गति वैसी मति इस न्याय से मनुष्य खुद के लिए सुख या दुख का भडार एकत्रित करता है।

पशु से भिन्न कौन ?—लट्टू घानी का बैल, गाड़ी का बैल और चन्द्र सूर्य सब भ्रमण करते हैं। लट्टू अपनी नोंक पर घाणी का बैल धारा के चारों ओर चक्कर काटता है और सूर्य चन्द्र का भ्रमण व्यापक वेग से अखिल विश्व को अपनी गति और प्रकाश से लाभ पहुँचाते हैं। जो खुद के पैर ही की चिन्ता करते रहते हैं वे खेलने के लट्टू के समान हैं। जो अपने कुटुम्ब की सेवा करता है वह घानी के चक्कर काटने वाले बैल के समान है और जाति के सेवक गाडी के बैल की तरह हैं। पशु भी ऐसा जीवन व्यतीत करते हैं परन्तु इस जीवन क्रम को उल्लघन करके चन्द्रसूर्य की भाति अभेद भाव से विश्व मात्र की सेवा करता है वही मानव पशुकोटि से भिन्न होकर सच्चा मनुष्यत्व प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक अपने जीवन का विचार कर जिस प्रकार शरीर से आप मनुष्य हैं उसी प्रकार हृदय से या पवित्र कार्यों से मनुष्य बनेंगे तभी जीवन सफल है।

लीजिये । पशु भी उपकार करने वाले के प्रति प्रेमभाव रखता है, यदि आप इससे पृथक हों तो अपकारी के प्रति प्रेमभाव रखिये इसी में सच्ची मनुष्यता है।

शरीर रक्षा और आत्म-रक्षा—जितनी सावधानी शरीर के लिये रखी जाती है उससे भी अधिक सावधानी आत्म के लिए रखनी चाहिये। किसी मकान को भाड़े रखना हो तो उस समय मकान, मोहल्ला, आसपास का वातावरण, मकान के चारों तरफ हवा प्रकाश आदि सभी बातों पर ध्यान देते हैं और उसके बाद खान-पान में, सोने-उठने में सब तरह से सावधानी रखते हैं। शरीर की सेवा मात्र कभी भी करनी है तो आत्म रक्षा-आत्म साधना के लिए कितनी रक्षा और जागृति रखनी चाहिए।

छोटे से छोटी भूल—जीवन की छोटी या बड़ी इच्छा पूर्वक या बिना इरादे न की गई भूल असम्य है। भूल से जीवन में एक ही बार विष के बड़ा खा लिए जावें तो मृत्यु सम्भव है। सीढ़ी का एक ही डंडा चूक जाने पर हड्डियां टूट जाती हैं। इसी प्रकार आत्मिक गुणों की छोटी या बड़ी त्रुटि भी असह्य है। अग्नि अंधकार का नाश करती है और अपथ्य भोजन को भी पथ्य बनाती है लेकिन उसका सदुपयोग न किया जाय तो वह भोजन और उसको जलाने वाले को भी भस्म कर सकती है।

सुख दुख का भण्डार—मानव जीवन भंडार के समान है। इच्छा हो तो सुख का भंडार भर लीजिये जिससे कि वह सुख स्वामी जीवन में अनंत काल तक शान्ति दे सके यदि इच्छा हो तो दुख के भंडार भर लीजिये जिससे वह मारकीय

समुदाय वाले आचार्य का अचानक स्वर्गवास हो तो उसके पाट पर ऐसे शिष्य को नियुक्त करना चाहिए कि जिसका कुल अनेक पीढियों से दान और गुण के लिए सुप्रसिद्ध हो। शास्त्रकार दान धर्म के लिए इतना महत्व देते हैं। जब कि वर्तमान मानव समाज दानधर्म के नाश के लिये रातदिन प्रयत्न करता है। और जिस प्रकार बिल्ली रातदिन चूहे का शिकार ढूँढ़ती है और उसे "cat dreams mice" रात्रि में भी चूहे के ही स्वप्न आते हैं जिससे वह सुख पूर्वक निंद्रा भी नहीं ले सकती। उसी प्रकार मानवसमाज भी धन के पीछे इस प्रकार हाथ धोके पड़ा है कि उसे प्राप्त करने के लिए सत्य, नीति और न्याय को भी ताक में रखकर किसी भी प्रकार धन प्राप्त करने की ही भावना रखता है।

अनीति का परिणाम—रावण ने बलात्कार से सीता का हरण किया फिर भी सीता उसकी हुई नहीं। लेकिन रावण का और उसके राज्य का नाश हुआ। कोई मनुष्य पराई कन्या को बलात्कार से अपहरण कर उठा ले जाय तो वह कन्या उसे विष देकर मार डालती है। उसी प्रकार अनीति से प्राप्त की गई लक्ष्मी मनुष्य को शान्ति प्रदान नहीं कर सकती। उस लक्ष्मी का सदुपयोग नहीं हो सकता है लेकिन वह लक्ष्मी केवल विषय विलास आदि पाप कार्यों में ही नष्ट हो जाती है। कोई भाग्यशाली मनुष्य ही लक्ष्मी का सदुपयोग कर सकता है। अन्यथा विषय विलास में या बीमार पड़कर दुःख उठा कर डाक्टरों के बिल चुकाने में ही उस धन का व्यय होता है।

करोड़पति भी कंगाल—प्राचीन काल में जो लाख

६—कलयुग का तारणहार धर्म

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि के सूक्ष्म जीव भी मनुष्य जीवन के लिए परमोपयोगी हैं तब मनुष्य का जीवन विश्व के लिए कितना उपयोगी होना चाहिए यह सहज ही में जाना जा सकता है।

शारीरिक रचना—अन्य पशु पक्षियों के शरीर के उस पिंजर आड़े टेढ़े होते हैं। जिससे उनका मुँह और दृष्टि नीचे की ही रहते हैं। जब कि मनुष्य का हाड़ पिंजर सीधा और खड़ा होता है इस लिए उनकी दृष्टि ऊँची ही रहती है। अतः शरीर की रचना से यह बात स्पष्ट होती है कि ऊपर और आदर्श को करना मनुष्य का सर्व प्रथम कर्तव्य है। इसके अलावा मनुष्य में विचार चिन्तन, मनन आदि बुद्धि जन्य शक्तियाँ भी विशेष होने से अन्य जीवयोनि की अपेक्षा मनुष्य अपना जीवन विशेष धर्म और परोपकार मय व्यतीत करे यह स्वाभाविक ही है।

मनुष्य की महत्ता—मनुष्य की महत्ता उसके शरीर की सुन्दरता या सुदृढ़ता के कारण नहीं है। लेकिन अन्य जीवों की अपेक्षा उसका आत्मविकास अधिक मात्रा में हुआ है। यही उसकी विशेषता है।

किसकी भूख का ही स्वप्न देखती है—आत्म विकास के माप चिह्न के लिए शास्त्रकारों ने मनुष्य में ज्ञान और गुण की प्रधानता का उल्लेख किया है। ५०० शिष्यों के

समुदाय वाले आचार्य का अचानक स्वर्गवास हो तो उसके पाट पर ऐसे शिष्य को नियुक्त करना चाहिए कि जिसका कुल अनेक पीढ़ियों से दान और गुण के लिए सुप्रसिद्ध हो। शास्त्रकार दान धर्म के लिए इतना महत्त्व देते हैं। जब कि वर्तमान मानव समाज दानधर्म के नाश के लिये रातदिन प्रयत्न करता है। और जिस प्रकार बिल्ली रातदिन चूहे का शिकार ढूँढ़ती है और उसे "cat dreams mice" रात्रि में भी चूहे के ही स्वप्न आते हैं जिससे वह सुख पूर्वक निद्रा भी नहीं ले सकती। उसी प्रकार मानवसमाज भी धन के पीछे इस प्रकार हाथ धोके पड़ा है कि उसे प्राप्त करने के लिए सत्य, नीति और न्याय को भी ताक में रखकर किसी भी प्रकार धन प्राप्त करने की ही भावना रखता है।

अनीति का परिणाम—रावण ने बलात्कार से सीता का हरण किया फिर भी सीता उसकी हुई नहीं। लेकिन रावण का और उसके राज्य का नाश हुआ। कोई मनुष्य पराई कन्या को बलात्कार से अपहरण कर उठा ले जाय तो वह कन्या उसे विष देकर मार डालती है। उसी प्रकार अनीति से प्राप्त की गई लक्ष्मी मनुष्य को शान्ति प्रदान नहीं कर सकती। उस लक्ष्मी का सदुपयोग नहीं हो सकता है लेकिन वह लक्ष्मी केवल विषय विलास आदि पाप कार्यों में ही नष्ट हो जाती है। कोई भाग्यशाली मनुष्य ही लक्ष्मी का सदुपयोग कर सकता है। अन्यथा विषय विलास में या बीमार पड़कर दुःख उठा कर डाक्टरों के बिल चुकाने में ही उस धन का व्यय होता है।

करोड़पति भी कंगाल—प्राचीन काल में जो लाख

रुपये का दान देता था वही लक्षाधिपति समझा जाता था और जो करोड़का दान देता था उसके मकान पर कोटिध्वज झंडा फहराता था। जिसके पास करोड़ों की सम्पत्ति होने पर भी जिसने करोड़ों का दान नहीं किया होता था उसे कंगाल ही समझा जाता था।

शाह के बाद में बादशाह—प्रथम शाह फिर बादशाह! प्राचीन काल के सेठ साहूकारों के दान के आगे राजा महाराजाओं के दान भी लज्जित होते थे। उनकी ऐसी उदार वृत्ती के कारण ही आज उनके वंशज आप शाह नाम से प्रसिद्ध हैं।

वृक्ष और मयूर के दृष्टान्त से शिक्षा—वृक्ष पत्ते ऋतु में पत्ते उतार फेंकता है और प्रकृति उसे नव पल्लव समर्पण करती है। मयूर अपनी पिच्छकाओं को छोड़ देता है फिर उसके नये पच्छ आ जाते हैं। कूप में से प्रतिदिन पानी निकलता रहता है तोभी वह बढ़ता ही जाता है। गाय और भैंस को रोज दुहा जाता है तभी ताजा दूध मिलता है। अधिक दूध की आशा से अगर ८ दिन तक न दुहा जाय तो बाद में वे दूध देना बन्द कर देती हैं। किसान खेत में धान्य के बीज फेंकता है तो उसे सौ गुने अधिक बीज मिलते हैं। एक मनुष्य आम की गुठली फेंककर खा जाता है तो उसे थोड़ी ही देर के लिए शान्ति होती है जब कि एक मनुष्य गुठली को बो देता है तो कुछ वर्षों के बाद हर साल उसे लाखों आम मिलते हैं और लाखों गुठलियां भी जिनको बो करके वह लाखों आम वृक्षों का स्वामी बन सकता है। इसी प्रकार जो अपनी संपत्ति को दान में व्यय करता है तो उसे प्रकृति के नियमानुसार विशेष लाभ होता है लेकिन मनुष्य को इतना

विश्वास न होने से वह न तो धन का ही सदुपयोग कर सकता और न विशेष सुख की प्राप्ति ही कर सकता है।

मोती का दाना और जवार का दाना—जिस समय अकाल में जवार के दानों का और मोती के दानो का मूल्य बराबर था, पुत्री पिता के घर मोती से भरा हुआ सोने का कटोरा देने जाती थी और उसके बदले में उतने ही जवार के दानों की याचना करती थी फिर भी पिता पुत्री को उतनी जवार देने में असमर्थ था। ऐसे विपम रुयोगों में खेमादेराणी, भामाशाह और जगडूशाह आदि महा पुरुषों ने अभेदभाव से सभी को धान्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति की। जिससे उनके यशोगान के गीत आज भी गाय जा रहे हैं। जब कि वर्तमान में धान्य का व्यौपारी दुष्काल की भावना कर विशेष धनवान बनने की इच्छा करता है। और बरसती हुई वर्षा को, घनघोर बादलों को और सुकाल को काल (मृत्यु) समान मान कर गालियाँ देता है।

धन की भयंकरता—मरते दम तक भी मनुष्य धन का मोह नहीं छोड़ सकता और जीवन की तमाम प्रवृत्तियों का उद्देश्य केवल धन प्राप्ति ही होता है। धन की भयकरता का वर्णन पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत सुन्दर ,ढँग से किया है। एक विद्वान लिखता है कि —"Wealth without virtue is a dangerous guest" जिस धन का सदुपयोग नहीं किया जा सकता वह धन नहीं लेकिन घर में आमन्त्रित भयंकर महमान है।

सिंह, सर्प, चीता, रीछ आदि आदि को कोई अपने घर

रुपये का दान देता था वही लक्षाधिपति समझा जाता था और जो करोड़ का दान देता था उसके मकान पर कोटिध्वज लगा रहता था। जिसके पास करोड़ों की संपत्ति होने पर भी जिसने करोड़ों का दान नहीं किया होता था उसे कंगाल ही समझा जाता था।

शाह के बाद में बादशाह—प्रथम शाह फिर बादशाह। प्राचीन काल के सेठ साहूकारों के दान के आगे राजा महाराजाओं के दान भी लज्जित होते थे। उनकी ऐसी उदार वृत्ती के कारण ही आज उनके वंशज आप शाह नाम से प्रसिद्ध हैं।

वृक्ष और मयूर के दृष्टान्त से शिक्षा—वृक्ष शरद ऋतु में पत्ते उतार फेंकता है और प्रकृति उसे नव पल्लव समर्पण करती है। मयूर अपनी पिच्छिकाओं को छोड़ देता है फिर उसके नये पच्छ आ जाते हैं। कुए में से प्रतिदिन पानी निकलता है तोभी वह बढ़ता ही जाता है। गाय और भैंस को रोज दुहा जाता है तभी ताजा दूध मिलता है। अधिक दूध की आशा से अगर ८ दिन तक न दुहा जाय तो बाद में वे दूध देना बन्द कर देती हैं। किसान खेत में धान्य के बीज फेंकता है तो उसे सौ गुने अधिक बीज मिलते हैं। एक मनुष्य आम की गुठली को सेककर खा जाता है तो उसे थोड़ी ही देर के लिए शान्ति होती है जब कि एक मनुष्य गुठली को बो देता है जो कुछ वर्षों के बाद साल उसे लाखों आम मिलते हैं और लाखों गुठलियां भी जिनको बो करके वह लाखों आम्र वृक्षों का स्वामी बन सकता है। इसी प्रकार जो अपनी संपत्ति को दान में व्यय करता है तो उसे प्रकृति नियमानुसार विशेष लाभ होता है लेकिन मनुष्य को एक

यदि आपका हृदय हलका होगा तो वे शब्द आपको दान के प्रभाव की ओर ले जायेंगे अन्यथा वे शब्द और वह पाश्चिमात्य विद्वान आपसे हार जायगा और आपकी विजय होगी।

मक्खन नहीं चूने का पिण्ड है:—चूने की भूकी शक्कर की तरह दिखाई देती है और चूने का पिण्ड मक्खन जैसा। लेकिन वह उसको शक्कर या मक्खन का पिण्ड समझ कर खाने वाले की आँतों को काट डालता है उसी प्रकार धन का मोह दिखने में शक्कर और मक्खन के पिण्ड जैसा प्रतीत होता है लेकिन उसकी प्राप्ति के लिये अनेक विडम्बनायें और कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

दौलत याने दो लातें:—धन को दौलत कहते हैं। जब आती है तब गरदन पर लात मारती है जिससे कि उसकी गरदन ऊँची की ऊँची ही रहती है। वह किसी की सुनता नहीं औरकिसी गरीब की ओर दृष्टि नहींफेकता। लेकिन जब दौलत जाती है तब कमर में लात मारती है जिससे उसकी कमर झुकी हुई रह जाती है और भरी जवानी में वह वृद्ध दिखाई पड़ता है। धन, हीरे, मोती और माणिक की मात्रा के समान है। यदि उसका सदुपयोग किया जाता है तो वह लाभ प्रद होता है लेकिन यदि उसे मात्रा का भोजन समझ कर उपयोग किया जाय तो शरीर में फूट निकलती है। इसी प्रकार विषय विलास और मौज शौक़ में व्यय किया जाने वाला धन विनाश के पथ पर ले जाता है और उसको इस भव में या अन्य जीवा योनि में उसका कटु फल भोगना पड़ता है

आमन्त्रण है तो उसका जीवन जितना खतरे और आपत्ति में है उससे कहीं अधिक खतरे में धन वाले का जीवन है। चोर, डाकू और खूनी की दृष्टि उसी पर ही पड़ेगी। वह सदुपयोग करने के बजाय धन का उपयोग भोगविलास में करता है जिससे वह दिन प्रति दिन पतन होता जाता है और उसमें से मानवता का विनाश होता है और हृदय में पाशविक भावना प्रवेश करती है यह विद्वान फिर विशेष रूप से लिखता है कि A rich miser is a summer cloud without rain कँजूस धनवान पानी बिना के उनाले के खाली बादल के समान है।

उनाले के बादलों को बर्षाने के लिए भले ही बहुत प्रार्थनायें और यज्ञ किये जायें फिर भी उन में से पानी की एक बूंद भी नहीं गिर सकती। वे केवल बादल-रूप से दिख पड़ते हैं। उनका होना न होना बराबर ही है। उसी प्रकार धनवानों में यदि कँजूसी का गुण हो तो व धनवान नहीं, निर्धन नहीं अपितु महान निर्धन है।

यह विद्वान धनवान की सत्य व्याख्या करते हुये लिखता है कि— He is only richman who understands the use of wealth जो धन का अच्छे से अच्छा उपयोग कर जानता है वही धनवान है।

किसको विजय ?—जिस प्रकार आपको जोरे की कहीं जल्दी जाना हो तो बैलगाड़ी के स्थान पर मोटर का उपयोग करते हैं उसी प्रकार मुझे भी आज पाश्चिमात्य विद्वानों के शब्दों को साधन भूत मान कर उनके द्वारा आपको समझाने का प्रयत्न करना पड़ा है। पाश्चिमात्य विद्वानों के चमत्कार शब्दों की अपेक्षा

या तालाब में तैरना नहीं आता है तो वह भी तारक को खोजता है। तारक के शरीर का बल, उसका अनुभव और उसने कितने यात्रियों को खतरे से बचाये हैं? इन सब बातों की जाच के बाद ही उसकी शरण लेता है। लेकिन वर्तमान में मुट्ठी भर राख से शरीर को, और गेरू से कपड़ों को रग देने से वह साधु-गुरु या तारक बन जाता है। जैन शासन में भी साधू का वेष पहना कर, जिस किसी को भी गुरुपद पर स्थापित कर उसे तारक समझने लगते हैं। ऐसे तारक, कि जिनकी योग्यता, दक्षता, और अनुभव तालाब के तारक से भी दयापात्र है वे ससार समुद्र को किस प्रकार तिर सकता है और दूसरों को तिरा सकता है? ऐसे तारक समाज में बरसाती मेंढकों की तरह बढ़ते हुये दृष्टि गोचर होते हैं। इससे जिस प्रकार अधिक डाक्टर बैद्य और वकीलों के बढने से समाज में रोग और क्लेश बढने लगे, उसी प्रकार तारकों के बढ़ने से धर्म की भी विकृति होने लगी। फल स्वरूप धर्म का मुख्यतत्व दान भी, दान रूप से भूला जा कर मान रूप समझा जाने लगा है।

दान या मान—सौ में से ९९ आदमी ऐसे होते हैं कि जो मान के लिए ही दान करते हैं। अगर लाख का मान मिलता हो तो १०० का दान करने का मन होता है और उसके लिए अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

मोक्ष में जाती गाड़ी—मानव को पैसे का इतना ज्यादा मोह है कि गाड़ी में बैठकर मोक्ष में जाने का हो और गाड़ी वाला भाड़े के २ रु० मांगता हो तो वे २ रु० के बदले

दान की आवश्यकता नहीं—वर्तमान की दान प्रणाली ढ़ोंग-मात्र है। जिस प्रकार कोई गाय को मार कर और उसके चर्म के जूते बना कर ब्राह्मणों को दान में दे वैसी वर्तमान दान प्रणाली है। व्यापार में हजारों गरीबों को लूट कर कुछ रुपयों का दान दे दिया जाय तो वह दान नहीं बल्कि ढ़ोंग है। ऐसा दान देने के बजाय व्यापार में नीति और न्याय का पालन करना गरीबों के प्रति सहानुभूति और श्रीमन्तों के प्रति प्रमाणिकता का व्यवहार ही बड़े से बड़ा और आदर्श दान है।

यह दान है या द्रोह?—वर्तमान में बनने वाली धार्मिक संस्था, देवालय और धर्मस्थान आदि में खर्च किये गये करोड़ों रुपये और वर्तमान में खर्च किये जाने वाले लाखों रुपयों का दान दान नहीं लेकिन गरीबों का शोषण ही है। गरीबों को लूट कर कुछ (एक सौ या हजार रुपये) धार्मिक कार्यों में खर्च करके अपने पापों को धोने का विचार करने वाले अपने प्रति ही द्रोह और कपट करते हैं और अपनी आत्मा को धोखा देते हैं। यह द्रोह और कपट गरीबों के प्रति किये जाने वाले द्रोह और धोखे से विशेष भयंकर है। ऐसा ख्याल जन समुदाय में तो नहीं पाया जाता है, लेकिन जन समुदाय के सुधारकों में क्वचित ही पाया जाता है।

वर्तमान में धर्म गुरु ही तारक समझे जाते हैं और तारक इस जमाने में तिनके (घास) से भी अधिक सस्ते मिल सकते हैं। घास के भारे को खरीदने वाला भी उसका वजन देखता है और योग्यतानुसार ही पैसा देता है। किसी मनुष्य को गुरु

अपनी पीड़ा शान्त करने के लिए देता है और लेने वाले का उपकार मानता है। एक अमरीकन स्त्री ने एक बौद्ध साधु को एक लाख का दान दिया। उस स्त्री ने बहुत बार लाखों का चेक भेजा था और वह चैक के साथ लिखती थी कि–महात्मा आप मेरे पिता के समान हैं। मेरे पिता मेरी जो सेवा न कर सके उससे ज्यादा आप कर रहे हैं। मेरा धन खर्चने में आपको कष्ट पड़ता होगा, इस लिए मैं आपसे बार बार क्षमा माँगती हूँ। आप जैसे उपकारी पुरुष का मुझे समागम न हुआ होता तो मेरे धन का सदुपयोग कैसे होता ? ऐसी भावना दान देते समय सकी थी।

आदिनाथ के उपासक बनो—पाश्चात्य जनता दान का गुण तथा दान देना समझती है। भारतवर्ष में भी आगाखाँ के भक्त अपनी कमाई का ५ वां भाग आगाखान को भेंट करते हैं। मुसलमान नित्य ५ बार नमाज पढ़ते हैं। औरंगजेब युद्ध के समय भी हाथी पर नमाज पढ़ता था। रेल में आपने मुसलमानों को नमाज पढ़ते कितनी ही बार देखा होगा। गोलमेज सभा में मुसलमानों के प्रतिनिधि विलायत गये थे, वे भी नमाज के समय सभा में से उठकर नमाज पढने जाते थे, तब आप जो आगाखाँ के बदले आदिनाथ और मुहम्मद के बदले महावीर के भक्त के रूप में सत्यधर्म मानते हो तथा आगाखाँ और मुहम्मद के भक्तों की धर्म भावना के लिए आपको दया उत्पन्न होती है। उनकी दया विचारने के साथ आपकी खुद की दया विचारो कि तुम्हारे में दान का गुण तथा धर्म की भावना कैसी है ? आप

१।) ठहरायगें। पैसा उन्हें धन, मन तथा मोक्ष से भी विरोधी बनाता है। जहाँ समाज की ऐसी दशा हो उस समाज से हम जैसा अति साधारण धर्म तत्व की भी कैसे आशा रख सकते हैं।

ज्वालामुखी और भस्माग्नि का रोग—दान आत्मविकास के लिए कचरा निकालने वाले के समान है जैसे झाड़ू से आँगन साफ होता है उसी प्रकार दान से आत्मिक शुद्धि क्षेत्र शुद्धि होती है। उसके बाद उसमें अन्य धार्मिकताओं के बीज बोये जाते हैं। जिसमें दान देने की भावना नहीं उसका हृदय ज्वालामुखी के समान है। जैसे ज्वालामुखी पर्वत में चाहे जैसे सुन्दरतत्व पटकने में आवे तो भी उसका नाश ही होता है। नाश के सिवाय उसकी कोई भी गति नहीं है, वैसे ही दान के बिना मानव का हृदय तमाम धर्मतत्वों को ज्वालामुखी की तरह भस्म कर डालता है। उसे भस्माग्नि जैसा रोग है। जैसे भस्माग्नि का रोगी जो खाय वे सब उसे पचता नहीं, पर भस्म होजाते हैं वैसे ही दान रहित प्रकृति वाले मानव का सब धार्मिक श्रवण, मनन चौंतन और दर्शन भस्म हो जाते हैं।

दाम लेने वाले के पैरों पड़ो—डाक्टर को नहीं, पर रोगी को अपना रोग मिटाने की गरज होती है। रोगी डाक्टर को ढूँढ़ता और पैरों पड़ता जाता है। उसी प्रकार जो धन दानी होता है वह दान लेने वाले को ढूँढ़ता फिरता है और उसके पैरों पड़ता है। वह प्रार्थना करता है कि मेरा धन स्वीकार करो और मुझ पर उपकार करो। वह दान अपनी गरज से, अपने स्वार्थ के

थे, एक निर्धन, वृद्ध बुढ़िया उन्हें मिली। बुढ़िया ने उन्हे वन्दन करके उदास होने का कारण पूछा। शिष्यों की बात सुनकर उस बुढ़िया ने अपने शरीर का एक वस्त्र शिष्यो को दिया। उस वस्त्र को देखकर बुद्ध भगवान प्रसन्न हुये। और कहा कि इस गाँव में एक पुण्यशाली और दानी जीव वसता है, उसकी पुण्याई से भगवान ने अपना प्राप्त हुआ अतिशय ज्ञान का बोध दिया। एक पुण्यशाली जीव नाव मे बैठकर ससार रूपी नाव को डूबने से बचा सकता है। उस एक न्यायी, वृद्ध और निर्धन बुढ़िया के दान के प्रभाव से लाखो मनुष्य उपदेश सुन सके। दान ही मोक्ष मार्ग का प्रथम सोपान है। और वर्तमान युग, कलियुग का एक तारण हार धर्म है।

आदिनाथ तथा महावीर के भक्त होने लायक हो कि नहीं ? यह सोचो। आपके जैसे भक्तों से आदिनाथ और महावीर का धर्म शोभता है ? यह विचारो। धन मसजिद के उपासक की दान तथा धर्म की भावना और आपके उपाश्रय तथा मंदिर के उपासकों की धर्म भावना दिखाओ। आगाखान और मुहम्मद के भक्तों के साथ आपकी दान तथा धर्म भावना की तुलना करो और आदिनाथ तथा महावीर के सत्य भक्त बनो। त्रुटियाँ देख कर सत्वर दूर करो।

सत्य दानवीर कौन ?—भगवान बुद्ध के पास एक महाराजाओं ने हीरा, मोती और माणिक आदि रत्न दान किये तब भगवान बुद्ध ने उस जवाहरात के ढेर पर एक हाथ रक्खा और एक बुढ़िया ने आधी अनार दान में रक्खी तब दोनों हाथ धरे। राजाओं को भगवान बुद्ध की प्रवृत्ति से बड़ा ही कौतूहल हुआ तब भगवान बुद्ध ने खुलासा किया कि तुमने अपनी संपत्ति का १०० वाँ, हजारवाँ या लाखवाँ भाग रक्खा है और इस बुढ़िया ने अपना सर्वस्व अर्पण किया है; अतः तुम्हारे करोड़ों के दान से इस बुढ़िया की आधी अनार बढ़ जाती है। अपने सर्वस्व का त्याग करने वाला ही सच्चा दानी है।

भगवान बुद्ध को विशेष ज्ञान होने से अपने शिष्यों को ग्राम में से एक दानी को ढूंढने के लिए भेजा। और कहा कि ग्राम में यह ढंढेरा पिटवा देना, कि इस ग्राम में से जो एक भी दानी मिल जायगा तो उसके पुण्य से भगवान उपदेश देंगे। बुद्ध भगवान जैसा दानी चाहते थे वैसा दानी न मिलने के कारण शिष्य उदास होकर लौटने लगे। इसी बीच में ग्राम के जंगल में

एका सीखे हुए शिवाजी—शिवाजी के पास सेना के सिपाही एक सुन्दर स्त्री को पकड लाये, तब शिवाजी ने कहा-यदि यह स्त्री मेरी माता होती तो उसके पेट से मै उसके जैसा सुन्दर होता। ऐसा जवाब शिवाजी के मुँह से निकला, क्योंकि उन्होंने आत्मतत्व का एका अपने हृदयपट पर अंकित कर लिया था। यदि उन का जीवन शून्य(०)बिन्दी जैसा होता तो वे ऐसा जवाब नहीं दे सकते। सिंह, बाघ और रींछ वाले भयानक जगलों में अडोल ध्यान से तप करने वाले सुने गये हैं, परन्तु विषय विकारों पर विजय प्राप्त करने वाले विश्व में विरले ही सुने जाते हैं। दस योद्धाओं को जीतने की अपेक्षा अपने पर ही विजय प्राप्त करने वाला ही महान् योद्धा महावीर है।

भौंरा लकड़ो को छेद सकता है। परन्तु पुष्प में बन्द हो जाने के बाद उसको काट कर-छेद कर बाहर नहीं निकल सकता। वह पुष्प की कोमलता और सुवास में मुग्ध हो कर मर जाता है। उसी प्रकार मानव रण संग्राम में विजय प्राप्त कर सकता है, परन्तु विषय वासना पर विजय पाना दुष्कर है।

धर्म सूत्रों में एक कथा है, कि सिंह गुफावासी तपस्वी मुनि एक स्त्री की कोमलता पर चलायमान और भ्रष्ट हो गये थे।

सत्य स्मारक--शिवाजी जैसे महाराष्ट्री महाराजा आस्तिक थे। जिससे उसका अस्तित्व विश्व में न होने पर भी हमें उनको याद करना पड़ा है। पूना आदि शहरों में उनकी राजधानी थी। वहा जा कर देखेंगे तो उनके महल, शिला लेख या अन्य स्मारक चिन्ह शायद ही दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि उनको

७—शून्य (०) से एका तो बनाइये।

अनन्त काल से अनन्त ज्ञानी पुरुष जिस विषय को समझा रहे हैं उसी विषय को समझाने के लिए ही हम प्रयत्नशील हैं। इस विषय को समझाकर अनन्त ज्ञानी पुरुष अपने जीवन की इति भी कर स्वर्गधाम को सिधार गये लेकिन वह विषय हमारी समझ में नहीं आया। वह विषय इतना अधिक विषम और अगम्य है कि अनन्त समझने वाले होने पर भी हम में से एक भी व्यक्ति न समझ पाया। इस जीवन में भी इतने वर्षों से वह विषय समझाया जा रहा है फिर अभी तक उसे न समझ सके।

शून्य का गुणा—आत्मतत्त्व समझे बिना प्रत्येक प्रवृत्ति शून्य का गुणा और शून्य की जोड़ ही है। चाहे जितने बड़े कागज पर बिंदियाँ लिख कर उसका गुणा या जोड़ कीजिये, लेकिन करोड़ों बिंदियों का मूल्य केवल एक इके बराबर भी नहीं हो सकेगा।

जीवन की प्रत्येक प्रवृत्तियां, धन्धा रोजगार, धन सम्पत्ति और वैभव सभी बिन्दी का गुणा मात्र है। बिन्दी के आगे इका हो तो इके और बिन्दी की भी शोभा है। इसी प्रकार यदि आत्म-तत्त्व का भान हो तभी सब वैभव और सम्पत्ति की प्राप्ति सार्थक हो सकती है।

एका सीखे हुए शिवाजी— शिवाजी के पास सेना के सिपाही एक सुन्दर स्त्री को पकड़ लाये, तब शिवाजी ने कहा– यदि यह स्त्री मेरी माता होती तो उसके पेट से मैं उसके जैसा सुन्दर होता। ऐसा जवाब शिवाजी के मुँह से निकला, क्योंकि उन्होंने आत्मतत्व का एका अपने हृदयपट पर अंकित कर लिया था। यदि उन का जीवन शून्य (०) बिन्दी जैसा होता तो वे ऐसा जवाब नहीं दे सकते। सिंह, बाघ और रींछ वाले भयानक जंगलों में अडोल ध्यान से तप करने वाले सुने गये हैं, परन्तु विषय विकारों पर विजय प्राप्त करने वाले विश्व में विरले ही सुने जाते हैं। दस योद्धाओं को जीतने की अपेक्षा अपने पर ही विजय प्राप्त करने वाला ही महान् योद्धा महावीर है।

भौंरा लकड़ी को छेद सकता है। परन्तु पुष्प में बन्द हो जाने के बाद उसको काट कर-छेद कर बाहर नहीं निकल सकता। वह पुष्प की कोमलता और सुवास में मुग्ध हो कर मर जाता है। उसी प्रकार मानव रण संग्राम में विजय प्राप्त कर सकता है, परन्तु विषय वासना पर विजय पाना दुष्कर है।

धर्म सूत्रों में एक कथा है, कि सिंह गुफावासी तपस्वी मुनि एक स्त्री की कोमलता पर चलायमान और भ्रष्ट हो गये थे।

सत्य स्मारक—शिवाजी जैसे महाराष्ट्री महाराजा आस्तिक थे। जिससे उसका अस्तित्व विश्व में न होने पर भी हमें उनको याद करना पड़ा है। पूना आदि शहरों में उनकी राजधानी थी। वहां जा कर देखेंगे तो उनके महल, शिला लेख या अन्य स्मारक चिन्ह शायद ही दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि उनको

जीवित रहना और मरना आता था। अब कि मुगल बादशाहों ने अपने स्मारक स्थान स्थान पर बनाये हैं। उनके नाम के बड़े रोचे मकबरे और मीनारें मौजूद हैं। वर्तमान के राजा लोग भी अपने स्मारक खड़े कर रहे हैं, लेकिन सत्य स्मारक और अस्तित्व अपनी आत्मा का ही है। मनुष्य को अपने अस्तित्व का भय नहीं है और महान से महान समर्थ इतना भी उनको समझने के लिये सर्वथा असमर्थ हैं।

मृत्यु का विश्वास है ?—मधुमक्खी और भौंरे रंक का जितना भय है, उतना भी मनुष्य को मृत्यु का डर व विश्वास नहीं है। जीवन नित्य घटता है या बढ़ता है? जीवन प्रति पल घटता जाता है, फिर भी अज्ञानी मानव वैभव विलास और सांसारिक प्रवृत्तियां बढ़ाता जाता है।

मृत्यु रूपी हौआ—सिंह के पास गाय बाघ के पास बकरी और बिल्ली के पास चूहे को रख दीजिये और उनके सामने हरा घास और स्वच्छ जल भी रखिये; फिर भी वे उसको स्पर्श भी न करेंगे। क्योंकि उनके सम्मुख साक्षात् यमराज खड़ा है बान्दरा और कुरला के कसाईखानों की गन्ध आते ही गला काटने के लिए ले जाये जाने वाले पशु अपना पैर पीछे रखते हैं। अति बलात्कार से उनको वहां जाना पड़ता है। ऐसे पशुओं को भी मृत्यु का भय है, परन्तु विचारक माने जाने वाले मानव को पाप बचाने के लिए मृत्यु का विचार तक भी नहीं आ सकता है। बाल्यावस्था में जिस प्रकार माता पिताओं ने हौवे का डर बताया है उसी प्रकार मृत्यु, स्वर्ग, नरक और पाप रूपी हौवे से डरना ढोंग मात्र माना जाता है।

सर्प का भयः—कोई व्यक्ति आपको अपनी बन्द मुट्ठी में से रबर का साप या बिच्छू अ.पके हाथ में रक्खे तो आप उसको देखते ही उछल पड़ेंगे और चिल्लायेंगे। क्योंकि आपको उस समय सच्चे साप और बिच्छू होने का भय था।

अन्धेरे में रस्सी पड़ी हो तो उसकी आप नाग देवता की तरह मान्यता करेंगे और अन्त में उन नाग देवता के न जाने के कारण घी का दीपक जलायेंगे। उसी दीपक के जलते ही भ्रान्ति दूर होती है। साप की छाया और पूँछ के लिए भय है लेकिन विनाश होते हुए इस मानव जीवन के लिए अ.पका तिल भर भी परवाह नहीं है।

लग्न मरण समय पर होने वाली क्रिया के समान है—उस समय कुंकुंपत्री लिखी जाती है, लेकिन उस कुंकुंपत्री लिखने वाले वृद्ध पिता को इस बात का स्मरण नहीं है कि इसी पाट पर इसी कलम और दावात द्वारा मेरा पुत्र मेरे मृत्यु समाचार लिखेगा, और इसी चवरी के बास, मटकिया, नारियल, मूज, नया वस्त्र, होमाग्नि आदि सभी स.धन मेरी मृत्यु के समय काम आयेंगे। मेरी मृत्यु के समय भी एसे बास, ऐसी मूंज, ऐसा नारियल, ऐसी अग्नि भरने की मटकी लायेंगे और मुझे श्मशान में जलायेंगे। यदि उसके जीवन में जागृति का एका होता तो उसको ऐसा अवश्यमेव भान होता।

ज्ञानी का रुदन—अपने बालकों को किसी मकान में जलते देख कर माता पिता फूट २ कर रुदन करते हैं, लेकिन अग्नि की ज्वालाओं के सामने उनका वश नहीं चल सकता। उस

जीवित रहना और मरना आता था। अब कि मुगल बादशाहों ने अपने स्मारक स्थान स्थान पर बनाये हैं। उनके नाम के बड़े रोजे मकबरे और मीनारें मौजूद हैं। वर्तमान के राजा लोग भी अपने स्मारक खड़े कर रहे हैं, लेकिन सत्य स्मारक और अस्तित्व अपनी आत्मा का ही है। मनुष्य को अपने अस्तित्व का म[illegible] नहीं है और महान् से महान समर्थ इतना भी उसको समझने के लिये सर्वथा असमर्थ हैं।

मृत्यु का विश्वास है!—मधुमक्खी और भौंरे के डंक का जितना भय है, उतना भी मनुष्य को मृत्यु का डर व विश्वास नहीं है। जीवन नित्य घटता है या बढ़ता है? जीवन प्रति पल घटता जाता है, फिर भी अज्ञानी मानव वैभव विलास और सांसारिक प्रवृत्तियां बढ़ाता जाता है।

मृत्यु रूपी हौआ—सिंह के पास गाय बाघ के पास बकरी और बिल्ली के पास चूहे को रख दीजिये और उनके सामने हरा घास और स्वच्छ जल भी रखिये, फिर भी वे उसको स्पर्श भी न करेंगे। क्योंकि उनके सम्मुख साक्षात् यमराज खड़ा है, कलकत्ता और कुरला के कसाईखानों की गन्ध आते ही वहां काटने के लिए ले जाये जाने वाले पशु अपना पैर पीछे रखते हैं। अति बलात्कार से उनको वहां जाना पड़ता है। ऐसे पशुओं को भी मृत्यु का भय है परन्तु विचारक माने जाने वाले मानव को पाप से बचने के लिए मृत्यु का विचार तक भी नहीं आ सकता है। अमावस्या में जिस प्रकार माता [illegible] बालकों को हौवे का डर बताती है उसी प्रकार मृत्यु, स्वर्ग, नरक और पाप रूपी हौवे से डरना ढोंग मात्र माना जाता है।

[प]त्थर चढ़ते या उतरते हुए भूला जाय तो नीचे गिरकर प्राण [ग]ंवाने पड़ते हैं, उसी प्रकार आत्मधर्म की एक भूल भी अक्षम्य है।

कषाय का बारूदखाना—मनुष्य में अज्ञानता के कारण विषय कषाय रूपी बारूदखाना भरा हुआ है। बारूदखाने का नौहरा भरा हुआ हो तो वह नौहरा एक चिनगारी रखते ही जल उठता है। उसी प्रकार मनुष्य के सन्मुख शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्शमय प्रतिकूल संयोग उत्पन्न होते ही मनुष्य में से विविध प्रकार की कषाय रूप चिनगारिया निकलने लगती हैं।

शान्ति कब तक?—कुत्ता प्राय चुपचाप बैठा हुआ या [स]ोता हुआ दिखाई देता है, परन्तु ज्योंही उसकी दृष्टि किसी अप-[रि]चित मनुष्य, पशु, या कुत्ते पर पडती है तो वह अपनी शान्ति [क]ा भग कर भूकने लगता है। उसी प्रकार धार्मिक सभाओं में, [ब]ाजार में या घर में विपरीत सयोग उत्पन्न न हो तभी तक [श]ान्ति रक्खी जाती है; लेकिन प्रतिकूल संयोग पैदा होने पर मनुष्य [क]ुत्ते को भी लज्जित करदे ऐसा द्वेष और दुष्ट वृत्ति प्रकट [क]रता है।

राज्य का वारण्ट—राज्य की पुलिस भूल से जेल का [व]ारण्ट दूसरे के बदले आपके पास लावे और आपके हाथों में [ह]थकडिया डाले तो आपको कितना दु ख होगा? आप पर तो मानो दु:ख का दावानल टूट पडा हो ऐसा प्रतीत होगा। परन्तु आपकी [ब]ाल्यावस्था बीत गई और युवावस्था का वारण्ट आया तत्पश्चात् [वृ]द्धावस्था का वारण्ट भी। जिसके चिन्हस्वरूप सब बाल सफेद होगए, दांत गिरगए, कमर झुकगई, भोजन पचता नहीं है

प्रकार ज्ञानी पुरुष प्रत्येक मनुष्य को अपनी संतान मानते हैं वे उनको विषय विलास की ज्वाला में जलते हुए अनुभव करते हैं। मरते हुए भी वे अज्ञानी जीवों की अज्ञान दशा पर आंसू गिराते हैं कि इन बाल जीवों की क्या दशा होगी ? लेकिन जिस प्रकार माता पिता अग्नि की ज्वाला के सन्मुख बेबस हैं, उसी प्रकार संसारियों की विषय-वासना रूपी मोह ज्वाला के आगे ज्ञानी भी बेबस हैं।

एक पाई और एक घंटा—किसी व्यक्ति के लेन मिलन में केवल एक पाई भी घटे तो वह उसे सहन नहीं कर सकता। उसको जितना एक पाई का मोह है, उतना मोह अमूल्य जीवन-धन के एक-एक मिनट के सदुपयोग के लिए है क्या! लक्षाधिपति भी अपनी गिरी हुई पाई को धूल में से उठा लेते हैं। इस प्रकार पाई २ की रक्षा करने की रुचिवाले मनुष्यों को बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था पूर्ण होने पर भी जीवन का लाभमात्र भय नहीं है।

छोटी भूल भी महा भयंकर है—जीवन की छोटी से छोटी भूल भी महा भयंकर है। वर्षों से कुए में से पानी भरने वाली या सगड़ी पर रसोई करने वाली बहिन भी थोड़ी सी असावधानी से कुए और चूल्हे की अग्नि का भोग बन जाती है। ५००० मील से चक्कर खाने वाली स्टीमर ४९९९ माइल तक सही सलामत पहुँच गई। लेकिन यदि केवल अन्तिम १ मील में ही भूलचूक करे और स्टीमर पहाड़ से टकरा जावे तो उसके टुकड़े २ हो जायें और सब मनुष्य मर जायें। सीढ़ी का एक

श्याम पड़ जाता है। उस जज के शब्दों में उतनी शक्ति नहीं, लेकिन श्रोता उन शब्दों को स्वजीवन के लिए परमावश्यक मानता है। उसी प्रकार ज्ञानी के शब्दों को महत्वशील समझिये, तभी उनके उपदेशामृत का असर आप पर होगा और आपका जीवन सफल बनेगा। उस समय आपका जीवन बिन्दी जैसा शून्य और शुष्क जीवन ऐके के रूप में बदल जायगा।

—:—

और अबतो मृत्यु का अन्तिम वारण्ट है। मृत्यु के दूत समीप आ पहुँचे हैं, जीवन रूपी ट्रेन मृत्यु के स्टेशन पर आ चुकी है, सिटी बज चुकी है, सिगनल गिरगया है, अब उसे चलने में क्या देर लगती ? इसलिए अब शीघ्र ही स्व-स्वरूप की पहचान कीजिए।

जीवन पर दृष्टिपात कीजिए—अपने जीवन। शून्य से जब तक एका न सीखेंगे, तब तक तीर्थंकरों के वाक्य भी निरर्थक हैं। एका के आगे बिन्दियां रखने पर उसकी कीमत बढ़ती है। लेकिन यदि उसके पीछे बिन्दियां रखती जायें तो कीमत घटती है; इसी प्रकार आपकी प्रवृत्तियाँ आपके जीवन के साधक हैं या बाधक ? इस पर विचार कीजिए। जैसा भूतकाल में बोया जायगा, वैसा वर्तमान में पायेंगे और जैसा वर्तमान में बोयेंगे वैसा भविष्य में।

श्रम सफल कब ?—प्रति दिन डाक्टर के पास जाते हैं। वह आपको नित्य नई दवाई और इन्जक्शन दे, फिर यदि आपका रोग कम न हो तो आपको या डाक्टर को दुःख होगा। इसी प्रकार आप प्रति दिन यहाँ आया करते हैं, आप में धर्म भावना का अंश है, इसीलिए आने का मन होता है। लेकिन यदि सुने हुए तत्त्व को जीवन में न उतार सकें तो आपका और हमारा श्रम सफल न गिना जायगा।

जज (Judge) और आसामी के शब्द—कोर्ट में वादी और प्रतिवादी दोनों को जज अपना जजमेन्ट सुनाता है जिसको सुन कर एक का २ सेर खून बढ़ता है और दूसरे का घटता है। एक का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठता है, जबकि दूसरे का चेहरा

का पोषण करके मानवरूप पशु-जीवन को भी शरमावे ऐसा जीवन व्यतीत करता है। यदि दो कुत्ते लडेंगे तो ५ मिनट में लड़ाई के प्रसग को तथा द्वेष को भूल जायेंगे और परस्पर प्रम-भाव से साथ २ खेलने लगेंगे तब मनुष्य को अगर एक तमाचा मार दिया या उसका अपमान कर दिया तो वे उस प्रसंग को यावज्जीवन नहीं भूलेंगे।

क्रोध के हित आविष्कार—क्रोध की वृत्ति पोषण करने के लिए मानव ने अपशब्दों का आविष्कार किया है। इसके उपरान्त विशेष वृत्ति को पोषण करने के लिए लाठी, तलवार, भाला तथा बरछी का आविष्कार किया है। और वर्तमान में विज्ञान अपने विकाश के साथ विनाशी साधन, जहरीली गैस, बम गोले आदि बनाता जा रहा है।

मान हेतु आविष्कार—मानवी वृत्ति यानी अपना बड़प्पन पोषण करने के लिए मानव ने हीरा, मोती माणिक के आभूषण, विलासी वस्त्र, भव्य भवन, चाँदी और सोने के पात्र आदि अनेक सामान उत्पन्न किये हैं, जिसके द्वारा वे अपनी वृत्ति का पोषण करते हैं।

माया के लिये आविष्कार—माया वृत्ति का पोषण करने के लिए मानव ने छिपी पुलिस, तहखाने, झूठे दस्तावेज, झूठी साक्षी आदि तत्व उत्पन्न किये हैं। गरीब होय तो भी गरीबी को छिपाने के लिए नकली आभूषण तथा वस्त्र पहन कर अपनी गरीबी का श्रीमताई के रूप से प्रदर्शन करता है।

लोभ हेतु आविष्कार—लोभ की वृत्ति का पोषण

है। निन्दा के महापाप से धर्म गुरु तथा धर्माचार्य भी बचे है ही अपने पाते हैं। एक धर्म गुरु दूसरे धर्म की निन्दा कर के अपने धर्म की उत्तमता बताने का यत्न करता है। परन्तु ऐसा करने में वे क्रूर दयापात्र बन कर धर्म के रहस्य को ही भूल कर पामर कीड़े जैसा पतित जीवन बिताता है और क्रूर की मर्यादित्व का प्रदर्शन करता है।

विषभरी वृत्ति किसको शोभती है?—द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध और क्रूरता आदि स्वभाव पशु जीवन का शोभें ऐसा है और यह स्वभाव उनके जीवन के लिए आवश्यक है। क्योंकि पशुओं को सींग पूंछ आदि कुदरत ने ही दिए हैं, जिससे वे अपने शरीर की रक्षा कर सकते हैं।

कुत्ते में ईर्षा, चिड़ियों में द्वेष, सर्प में क्रोध, मोर में मद, पशुओं में माया व मछी में लुच्चाई आदि अनुकूलता के लिए आवश्यक भी हैं। एक कुत्ता शांत स्वभाव होकर बैठा रहे तो वह भूखों मर जाना पड़े। अतः उसको लड़ाई करके दूसरे कुत्ते के मुंह में से अपना भाग पटकना पड़ता है। मानव में बुद्धि, विवेक व समझ होने से अपना जीवन शांत रीति से बिता सकता है। मानव साधन सम्पन्न है। तो भी अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करके ज्यादा से ज्यादा पापमय जीवन बिताता है।

मानव की विषभरी वृत्ति—मानव के पास लड़ने के लिए सींग या दाँत नहीं हैं, काटने के लिए नहरी (नख) नहीं हैं जिससे उसने बुद्धि के बल द्वारा अपनी अधम वृत्ति का पोषण करने के लिए नवीन आविष्कार किये हैं, और वह अब अपनी दृष्टि

तथा माँस के लिए घृणा उत्पन्न होती है वैसे ही द्वेश, ईर्षा तथा निंदा तत्व के लिए भी अपार घृणा उत्पन्न होनी चाहिये।

पेड-लॉक सोसायटी—योरोप में निन्दा न करने के लिए और भ्रातृभाव सिखाने के लिए एक Pad-lock Society स्थापित की गई है। इस सभा का मेम्बर वही बन सकता है जो तीन मनुष्यों की साक्षी से ३ बार ताला उघाडे और बंद करे। अर्थात् भावार्थ यह है कि अनावश्यक शब्द, किसी की निन्दा का शब्द मैं नहीं सुनूगा तथा नहीं बोलूँगा। अंग्रेजी में निंदा को Back-bite कहते हैं। बैक यानी पीठ और बाइट यानी काटना, यानि किसी की पीठ का मास खाना। वे सोसायटी वाले निन्दा करना नर मास खाने के समान पाप समझते हैं। जैन शास्त्रों में भी निन्दा के लिए Back-bite शब्द ही प्रयुक्त हुआ है, जिसे पिट्टी मस कहते हैं। पिट्ठीमंस यानि पीठ का माँस खाना। यूरोप में निंदा विरोधी मंडल के हजारों सभ्य बन चुके हैं, तब भारत में जो कि धर्म प्रधान, आध्यात्म-प्रधान देश कहलाता है उस देश में धर्म-विनाशक निन्दा की प्रवृत्ति बढती जाती मालूम पड़ती है।

निन्दा के शिकारी—एक मनुष्य ने ९९ बार किसी दूसरे मनुष्य की सेवा की हो और अगर एक दिन वह प्रसंगवशात् सेवा न कर सके तो वह ९९ बार सेवा लेने वाला उसकी ९९ बार की सेवा भूल कर एक बार सेवा न करने से वह उसका दुश्मन बन जाता है और वह उसके बदले के रूप में उसकी छिपी तौर पर निन्दा कर के संतोष मानता है। और प्रसन्नता प्राप्त करता

८—अंतर सृष्टि के संस्कारों का सुधार कीजिये।

जीवन के संस्कार—आर्य संतान शराब, मांस तथा शिकार को स्वीकार कभी नहीं कर सकती। एक हिन्दू के बालक को अगर लाख रुपये भी दिये जायें तो भी वह गाय या अन्य प्राणियों को मारने के लिये विष का प्रयोग नहीं करेगा। परन्तु अनार्य-म्लेच्छ का बालक पचासों के लालच से ही उस प्राणी को विष खिला कर मार डालेगा। क्योंकि हिन्दू बालक को सैकड़ों वर्षों से पूर्वजों का दिया हुआ अहिंसा तत्व मिला है और उसके प्रत्येक खून के बिन्दु में उसकी नाड़ियों तथा रग रग के धधकारे में अहिंसा तत्व भर गया है। तब अनार्य बालक के शरीर के परमाणुओं में हिंसा तत्व समावेश कर गया है।

अध्यात्म तत्त्व विचार—आर्य तरीके से, जैन तरीके से शराब तथा मांस का स्वप्न में भी विचार नहीं आ सकता और वे संस्कार दृढ़तर होते जाते हैं, इसलिए सावधानी रखने में भलाई है। शराब तथा मांस का उपभोग करने वाले का पड़ोसी होने में या उस पड़ोसी तरीके से रहने में भी तुम पाप मानते हो उसी तरह जीवन में अहिंसा तत्व की तरह आध्यात्म तत्व भी ओत-प्रोत होना चाहिए।

जैन तरीके से या आर्यपुत्र तरीके से तुम्हारे में काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि तत्व नहीं होने चाहिए। जैसे शराब

तथा माँस के लिए घृणा उत्पन्न होती है वैसे ही द्वेश, ईर्षा तथा निंदा तत्व के लिए भी अपार घृणा उत्पन्न होनी चाहिये।

पेड-लॉक सोसायटी—योरोप मे निन्दा न करने के लिए और भ्रातृभाव सिखाने के लिए एक Pad-lock Society स्थापित की गई है। इस सभा का मेम्बर वही वन सकता है जो तीन मनुष्यों की साक्षी से ३ वार ताला उघाडे और वंद करे। अर्थात् भावार्थ यह है कि अनावश्यक शब्द, किसी की निन्दा का शब्द मैं नहीं सुनूगा तथा नहीं वोलूँगा। अंग्रेजी में निंदा को Back-bite कहते हैं। वैक यानी पीठ और वाइट यानी काटना, यानि किसी की पीठ का मास खाना। वे सोसायटी वाले निन्दा करना नर मास खाने के समान पाप समझते हैं। जैन शास्त्रों में भी निन्दा के लिए Back-bite शब्द ही प्रयुक्त हुआ है, जिसे पिट्ठी मस कहते हैं। पिट्ठीमंस यानि पीठ का माँस खाना। यूरोप में निंदा विरोधी मडल के हजारों सभ्य वन चुके हैं, तव भारत में जो कि धर्म प्रधान, आध्यात्म-प्रधान देश कहलाता है उस देश में धर्म-विनाशक निन्दा की प्रवृत्ति वढती जाती मालूम पड़ती है।

निन्दा के शिकारी—एक मनुष्य ने ९९ बार किसी दूसरे मनुष्य की सेवा की हो और अगर एक दिन वह प्रसगवशात् सेवा न कर सके तो वह ९९ बार सेवा लेने वाला उसकी ९९ बार की सेवा भूल कर एक वार सेवा न करने से वह उसका दुश्मन वन जाता है और वह उसके वदले के रूप में उसकी छिपी तौर पर निन्दा कर के सतोष मानता है। और प्रसन्नता प्राप्त करता

है। निन्दा के महापाप से धर्म गुरु तथा धर्माचार्य भी भोले है ही बचने पाते हैं। एक धर्म गुरु दूसरे धर्म की निन्दा कर के अपने धर्म की उत्तमता बताने का यत्न करता है। परन्तु ऐसा करने में व गुरु महापापी बन कर धर्म के रहस्य को ही भूल कर पामर कीड़े जैसा पतित जीवन बिताता है और गुरु की अप्रामाणिकता का प्रदर्शन करता है।

विषभरी वृत्ति किसको शोभती है?—द्वेष, ईर्षा, क्रोध और क्रूरता आदि स्वभाव पशु जीवन को शोभे ऐसा है और यह स्वभाव उनके जीवन के लिए आवश्यक है। उन पशुओं को सींग पूंछ आदि कुदरत ने ही दिए हैं, जिससे वे अपने शरीर की रक्षा कर सकते हैं।

कुत्ते में ईर्षा, बिल्लियों में द्वेष, सर्प में क्रोध, मोर में मान, पशुओं में माया छछुंदरी में लुच्चाई आदि अनुकूलता के लिए आवश्यक भी हैं। एक कुत्ता शांत स्वभाव होकर बैठा रहे तो उसे भूखों मर जाना पड़े। अतः उसको लड़ाई करके दूसरे कुत्ते के मुंह में से अपना भाग पकड़ना पड़ता है। मानव में बुद्धि, विवेक तथा समझ होने से अपना जीवन शांत रीति से बिता सकता है। मानव साधन सम्पन्न है। तो भी अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करके ज्यादा से ज्यादा पापमय जीवन बिताता है।

मानव की विषभरी वृत्ति—मानव के पास लड़ने के लिए सींग या दाँत नहीं हैं काटने के लिए जहरी डंक नहीं हैं, जिससे उसने बुद्धि के बल द्वारा अपनी अधम वृत्ति का पोषण करने के लिए नवीन आविष्कार किये हैं, और वह अब अपनी वृत्ति

का पोषण करके मानवरूप पशु-जीवन को भी शरमावे ऐसा जीवन व्यतीत करता है। यदि दो कुत्ते लड़ेंगे तो ५ मिनट में लड़ाई के प्रसंग को तथा द्वेष को भूल जायेंगे और परस्पर प्रेम-भाव से साथ २ खेलने लगेंगे तब मनुष्य को अगर एक तमाचा मार दिया या उसका अपमान कर दिया तो वे उस प्रसंग को यावज्जीवन नहीं भूलेंगे।

क्रोध के हित आविष्कार—क्रोध की वृत्ति पोषण करने के लिए मानव ने अपशब्दों का आविष्कार किया है। इसके उपरान्त विशेष वृत्ति को पोषण करने के लिए लाठी, तलवार, भाला तथा बरछी का आविष्कार किया है। और वर्तमान में विज्ञान अपने विकाश के साथ विनाशी साधन, जहरीली गैस, बम गोले आदि बनाता जा रहा है।

मान हेतु आविष्कार—मानवी वृत्ति यानी अपना बड़प्पन पोषण करने के लिए मानव ने हीरा, मोती माणिक के आभूषण, विलासी वस्त्र, भव्य भवन, चाँदी और सोने के पात्र आदि अनेक सामान उत्पन्न किये हैं, जिसके द्वारा वे अपनी वृत्ति का पोषण करते हैं।

माया के लिये आविष्कार—माया वृत्ति का पोषण करने के लिए मानव ने छिपी पुलिस, तहखाने, झूठे दस्तावेज, झूठी साक्षी आदि तत्व उत्पन्न किये हैं। गरीब होय तो भी गरीबी को छिपाने के लिए नकली आभूषण तथा वस्त्र पहन कर अपनी गरीबी का श्रीमताई के रूप से प्रदर्शन करता है।

लोभ हेतु आविष्कार—लोभ की वृत्ति का पोषण

करने के लिए विविध प्रकार के व्यापार, यंत्र तथा प्रलोभन द्वारा विश्व के धन को अपना बनाने के लिये अहर्निश यत्न करता रहता है।

जैसे भोजन के समय दाल शाक में नमक न हो तो उसमें तमाम भोजन फीका लगता है वैसे ही अपने जीवन की छोटी तथा मोटी तमाम प्रवृत्ति के समय वे उसमें कषाय का रस डालते हैं। मैं धनवान हूँ, विद्वान हूँ, तपस्वी हूँ, ज्ञानी हूँ, ... हूँ, मिल मालिक हूँ, घर पर घोड़े गाड़ी तथा मोटर हैं, मेरे सब पुत्र तथा पुत्रियां मेम्यूएट हैं। सब के रहने के लिए ... हैं, ऐसा बार्तालाप किए बिना उसे लेश मात्र भी चैन नहीं पड़ता। सत्य, नीति तथा न्याय को अलग रख कर मानव जैसा ... करता है उसमें उसकी भावना केवल बड़प्पन की तृप्ति को ... की ही है।

अन्तर हृदय को ढूँढो—जैसे बारूदखाने में एक चिनगारी डालने के साथ ही बड़ा भारी धड़ाका होता है ... सारी पृथ्वी हिल जाती है उसी प्रकार मानव को सताने ... चिढ़ाने में नहीं आवे तब तक वह शांत रहता है। ... प्रतिकूल संयोग से उसकी क्रोधादि प्रवृत्ति भड़क उठती है और वह अपने हिताहित का ज्ञान भी भूल जाते हैं।

अगर तुम किसी के पास से चार आने मांगते हो और ... तुम्हें नहीं दे या उल्टा तुम्हें कहे कि तुम्हारे पास में आठ आने मांगता हूँ, ऐसे तुच्छ प्रसंग पर भी मानव अपनी शांति ... समता भूल जाता है।

महात्मा गांधी और लार्ड इरविन—भारत आर्य देश है। भारतवासी आर्य सन्तान हैं। तो भी वे आर्यता के तत्वों को प्रति दिन बिसारते जाते हैं। महात्मा गाधी तथा इरविन के ध्येय में महान अन्तर था। महात्मा गांधी भारत के प्रतिनिधि गिने जाते हैं और लार्ड इरविन बृटेन के प्रतिनिधि। दोनों के ध्येय में ३ तथा ६ के अक की तरह भेद था। ३ का मुख बाईं ओर है तब ६ का दायों ओर। दोनों के परस्पर विचारों में महान अन्तर था तो भी महात्माजी कहते हैं कि लार्ड इरविन और मेरे बीच में बहुत देर तक बातचीत हुई और बातचीत के प्रसग में इरविन चिढे तथा खीजे ऐसे बहुत से प्रसग आये थे तो भी उनका स्वभाव चिढ़ा हुआ मेरे तो देखने में नहीं आया। पश्चिम की प्रजा भारत की शासक है, वे भारतवासियों से वैभव में धनवान हैं और तिस पर स्वभाव में भी श्रीमत हैं। अन्यथा इरविन को चिढ़ते देर नहीं लगती। राजनीति के आधीन हो कर इरविन ने शाति और धैर्य रक्खा होगा तब तुम्हारे अन्दर का बड़ा भाग तुच्छ प्रसगों पर अनेक बार अपने धैर्य तथा शाति को खोता होगा यह तुमसे छिपा हुआ नहीं है।

यूरोप के सेनाधिपति की क्षमा—योरोप का एक सेनाधिपति जिसका नाम मि० रेले था, उसके साथ कुश्ती करने के लिए एक पहलवान आया था। उस सेनाधिपति ने उसके साथ कुश्ती करने से इन्कार कर दिया। उससे क्रोधित हो कर उस पहलवान ने उसके हाथ पर थूक दिया। इस प्रसग से लश्कर के दूसरे मनुष्य क्रोधित हुये। सेनापति ने उनको शात किया और कहा कि इस पहलवान ने जो भूल की है उस भूल को मेरा यह

छोटा सा स्नान सुधार सकता है। जो काम करने लिए स्वयं समर्थ है उस काम के लिए तुम्हारी तलवार किस लिए प्रयुक्त होनी चाहिए ? ऐसे सत्ताधारी अपने में ऐसी शांति रख सकते हैं तब भारत भूमि, जो कि धर्म भूमि है उसके आर्य और धर्मात्मा कहे जाने वाले मानवों में कितनी शांति होनी चाहिए !

एक जापानी की निरभिमानता—जापान के एक पति के फोटो बाजार में बेचने को थे। इस बात का पता उनको लगते ही वह तुरन्त बाजार में गया। अपने हजारों फोटो उसने खरीद लिये और उस दुकानदार के सामने ही उनको जला दिया। और दुकानदार को शिक्षा दी कि मेरे जैसे सामान्य पुरुष का फोटो लोग अपने मकानों में रखेंगे तो फिर महापुरुषों के फोटुओं की क्या दशा होगी ? इसके बदले यदि कहीं आपके फोटो बिकते हों तो आप क्या करेंगे ? अपने को धर्मात्मा मानने के बदले अपने अन्तर को दूढो।

आर्य और जैन कौन ?—आर्य भूमि में मात्र जन्म लेने से ही आर्य नहीं हो सकते। अनार्य भूमि में जन्मा हो परन्तु जो उनमें सात्विक वृत्ति हो तो वे आर्य हैं और आर्यभूमि में जन्मे में भी पाशविकवृत्ति हो तो वे अनार्य हैं। राग, द्वेष, निद्रा प्रमाद पर जिनको विजय मिली है वही जैन हैं, फिर चाहे किसी भी पंथ के सम्प्रदाय के, जाति के या देश के हों जिसमें राग द्वेष क्लेश, ईर्षा तथा निन्दा के तत्व हैं वे भले जैन कुल मे ही जन्मे हों जैन साधु या आचार्य हों तो भी अजैन, अनार्य, नास्तिक और मिथ्यात्वी हैं।

जितनी बाह्य सुन्दरता उतनी ही मलीनता—शहर, सुन्दर सड़क तथा भव्य मकानों से सुन्दर दीखता है परन्तु यदि आप एक दो हाथ जमीन खोद कर देखेंगे तो सड़कों के नीचे दुर्गंध युक्त नालियां बहती दिखाई देंगी। रात में आखें चकाचौंध कर देने वाली बिजली का प्रकाश दीखता है परन्तु उन्हीं शहरों में सब से ज्यादा चोर, लुटेरे, ठग और बदमाशों की धमा चौकड़ी जमी रहती है। मानव पैर भी नहीं दीखे ऐसी सभ्यता के पुजारी बन कर विविध प्रकार के स्वच्छ, सुन्दर और रमणीक वस्त्र पहनते हैं पर उन वस्त्रों के अन्दर रहा हुआ उनका हृदय ढूँढोगे तो उसमें द्वेष, ईर्षा, निंदा और कोयले से भी काली क्लेशमय कालिमा आपको मिलेगी।

धर्माधिकारी कब बनोगे ?—मानवों में से मानवता कूच कर गई है। इस स्थिति में उनमें धर्म तत्व या अध्यात्म तत्व कैसे टिक सकता है ? खुद अपनी पात्रता ढूंढ़ो और धर्माभिमुख नहीं हो सको तो सत्य, नीति, न्याय, सहिष्णुता और सादगी रखोगे तो मानवता प्राप्त कर सकोगे और उसके बाद धर्माधिकारी बन सकोगे ॥ ॐ शान्ति ॥

९—आन्तरिक सृष्टि का सौंदर्य

जीवन किसको प्रिय नहीं ?—जीव मात्र का जीवित रहना प्रिय है। मृत्यु किसी को प्रिय नहीं। एक ही बन्दूक की आवाज सुनते ही, वृक्ष पर बैठे हुए तमाम पक्षी पलायमान हो जाते हैं। तब मनुष्य प्रतिदिन हजारों मनुष्यों को मरते हुए देखता है और लाखों के मृत्यु समाचार पढ़ता है और सुनता है लेकिन फिर भी वह बंदूक की आवाज से भयभीत हुए पक्षियों की तरह भयभीत नहीं होता है। इस अपेक्षा से मनुष्य से पक्षी विशेष जागृत है।

पशुओं का शरीर मोह—कीड़े मकोड़े अपने शरीर की रक्षा के लिए अपने बिल एकान्त स्थान में बनाते हैं। धूप में मक्खियाँ आरम्भ हो जाती हैं और ऐसे स्थान में जाकर बैठ जाती हैं कि कोई उनका शिकार न कर सके। पक्षी भी अपने शिकारी से बचने के लिए बहुत ऊँचे वृक्ष की पतली डाली का आश्रय लेते हैं। इस प्रकार प्रत्येक को अपने शरीर और जीवन का प्रेम है और अपने विरोधी तत्वों से भयभीत होते हैं। सिंह के पास गाय, बाघ के पास बकरी, और बिल्ली के पास चूहे को रख दीजिये तो वह जीवित होने पर भी मृतवत् प्रतीत होंगे। आप उन्हें खिलाने पिलाने का यत्न करेंगे तो निष्फल होंगे।

कसाईखाने में जाने वाले पशुओं को कसाईखाने की गंध आते ही वे अपना पैर पीछे हटाते हैं। कसाइयों की मार खा

पर भी आगे नहीं बढ़ते अन्त में बलात्कार से उन्हें उस दिशा की ओर जाना पड़ता है।

दो आंख के बदले दो लाख—शरीर तो क्या लेकिन शरीर के प्रत्येक अंगोपांग के लिए मनुष्य को अति मोह और ममता है। एक भिखारी को कहा जाय कि—"तुम अपनी आंखें दे दो और बदले में दो लाख रुपये ले लो।" तो भी वह शायद ही इस बात को पसन्द करेगा। एक हजार रुपये देने पर भी अपने नाक का एक रत्ती भर मांस भी देने के लिये वह तैयार न होगा।

लजायमान शरीर—किसी का नाक सड़ गया हो और वह नाक काटा हो गया हो तो वह रास्ते चलते लज्जित होता है। काने को अपनी कानी आख दूसरे को बताते हुए लज्जा आती है। लूले और लगड़े भी अपने शरीर की त्रुटि के लिए लज्जित होते हैं और रबर और चमड़े के नकली हाथ पैर पहिनते हैं। काना अपनी कानी आख को जगह काच की आख लगवा कर अपने शरीर सौंदर्य की वृद्धि के लिए प्रयत्न करता है। जिसके दात गिर गये हों ऐसे वृद्ध भी दात की बत्तीसी लगाते हैं। सफेद मूछों पर कलफ लगवा कर कौवे के पंख जैसी काली बनाते हैं। अपनी वृद्धावस्था को छिपाकर यौवन का प्रदर्शन करते हैं।

सत्य वचन भी नहीं सुहाते—काने को काना, अंधे को अधा, बहरे को बहरा, लगडे को लगडा, और लूले को लूला कहा जाय तो भी उन्हे दुख होता है। तो उन्हे अपने अगो-

योग की न्यूनता कितनी खटकती होगी यह सहज ही समझा जा सकता है।

इन्द्रियों की असुन्दरता—शरीर और इन्द्रियों की सुन्दरता और सम्पूर्णता अच्छा लगती है। लेकिन इन्द्रियों के धर्मों की असुन्दरता और अपूर्णता के लिए शायद ही किसी को दुख होता हो। इन्द्रियों की शोभा आभूषण नहीं लेकिन इन्द्रियों के धर्मों को पालन करना ही है।

कान एक भी अप्रिय शब्द नहीं सुन सकता है। आंख एक भी अप्रिय शब्द नहीं पढ़ सकती। और जीभ एक भी अप्रिय शब्द का जवाब दिये बिना विश्राम नहीं लेती। या खाने पीने की त्रुटि को नहीं सहन कर सकती इस प्रकार प्रति पल इन्द्रियों की असुन्दरता दुर्बलता और कायरता का अनुभव होता है।

इन्द्रिय रूपी नागिन—प्रतिकूल संयोगों में कान सर्प श्रुता, आंख प्रेम दृष्टि और जीभ अपने मीठेपन को खो देती है। जिस प्रकार प्रतिकूल संयोग में सर्प अपनी फनों को फैला कर फुंकारता है उसी प्रकार मनुष्य भी इन्द्रिय रूपी पांचों फेनों को उन्मत्त कर फुंकारने लगता है और भक्तों को भी एक बार कम्पित कर देता है।

कान या कंकर!—एक ही कंकर जिस प्रकार हजारों पत्तों को छेद सकता है उसी प्रकार दुर्बल मनुष्यों की शान्ति को शब्द रूपी एक ही कंकर भंग कर सकता है। अनेक वर्षों के पठन, श्रवण और मनन के पश्चात भी जिस मनुष्य ने अपने

कानों को सहिष्णु नहीं बनाया उन कानों और कुम्भार के कोकरों में क्या अन्तर ?

ईर्ष्याग्नि की ज्वाला—गांव का कसाई करोड़ों रुपये कमाता है। उसके लिए लेश मात्र भी विचार नहीं होता परन्तु अपने पड़ौसी या ज्ञाति बन्धु को लाभ होता है तो यह ईर्ष्यालु आंखे उसे नहीं देख सकतीं और वे ईर्ष्याग्नि से जला ही करती हैं। चूले या श्मशान की अग्नि तो थोड़े समय के बाद ही शान्त हो जाती है लेकिन ईर्ष्याग्नि की भट्टी तो चौवीसों घंटे जला करती है।

झूठी बड़ाई—अपने मस्तक को ऊँचा रखने के लिए बड़े कहलाये जाने के लिए मनुष्य देश देशान्तरों मे भागता फिरता है। थोड़ी सी भी लघुता या नम्रता वह सहन नहीं कर सकता। विलास में, लग्न में और जीमनवार में बड़ा कहलाने के लिए शक्ति के उपरात खर्च करता है लेकिन झूठी बड़ाई चले जाने के डर से वह विलास को घटा कर अपने धन का सदुपयोग शुभ दानादि कार्यों में नहीं कर सकता।

अधिकार या धिक्कार—मनों मिठाई खाने पर भी जीभ को मीठी बना कर अपने दुश्मन को प्रिय और मधुर लगे ऐसे शब्द बोलने की उदारता या मधुरता किसी में शायद ही आई हो। यदि कोई जगत में लाखों का दान देकर दान-वीर कहलाता है तो दूसरा करोड़ों का दान देकर "महादानवीर या "कलियुगी कर्ण" की पदवी लेने के लिए तनतोड़ परिश्रम करता है। लेकिन अपने दुश्मन की प्रसन्नता के लिए एक भी मीठे

शब्द का दान नहीं कर सकता। जिसमें एक मीठे शब्द का भी दान करने की उदारता नहीं वह लाखों का दान किस प्रकार दे सकता है। दान देने वाला दानवीर नहीं लेकिन दान के बदले मान की भीख मांगने वाला महा भिखारी है। नौकर की मामूली भूल पर जो नौकर पर क्रुद्ध होकर वचन से उसे शान्ति नहीं दे सकता उसके हाथ में दान धन कितनी उदारता कहां से हो! लकड़ी वाले पर लकड़ी के बदले तलवार चलाने वाला हृदय शून्य दयाहीन है। इसी प्रकार अपने आश्रितों पर श्रीमन्ताई के अभिमान में जो वाक्-प्रहार करके अपने वचनों की मिठास का नाश करता है वह हृदयशून्य पाशविक वृत्ति वाला है। अधिकारी अपने अधिकार की मर्यादा और विवेक को भूल जाते हैं जिससे वे अधिकारी के बदले धिक्कारपात्र बन जाते हैं।

टौंटा कौन?—जो कि बचपन एक हाथ होने से टौंटा लज्जित होता है और रबर या चमड़े का नकली हाथ पहनकर अपनी त्रुटि को ढंकता है। टौंटा होने में उसे लज्जा होती है। उन टौंटा रहने की जरामात्र भी भावना नहीं। लेकिन जिनके पास अटूट सम्पत्ति है वे दुखियों के दुःख सुनकर भी दयाहीन और बधिर बने रहते हैं। दुखियों के दुःख देखकर भी उनको मदद के लिए अन्धे बने रहते हैं, दुखियों को अपने समझने का बड़प्पन जिनमें नहीं है और दुखियों के दुःख दूर करने के हेतु जो अपने धन का सदुपयोग करने के लिए वचन का उदारता न कर मूक रहता है उसके रत्नजड़ित अंगूठी से चमकते दो हाथ होने पर भी वह टौंटा ही है। दान न देने वाला अपने हाथों को

संकुचित करता है उसके साथ ही उसका हृदय और शरीर का खून भी संकुचित हो जाता है और जो दान के लिए अपना हाथ फैलाता है उसके अंगोपाग विशेष स्फूर्ति और निरोगी बनते हैं। ऐसे कंजूस टोंटा श्रीमन्तों का धन परोपकार के लिए सात ताले वाले कमरे में रहता है और अपने विलास के लिए चौबीसों घड़ी उसकी मुट्ठी में हाजिर रहता है। "जहा धन वहा मन" इस न्याय से उसका मन पाताल ही में भटकता रहता है। और दानादि स्वर्गीय कामों में धन का व्यय करने वाले का मन स्वर्गीय सुख का उपयोग करता है।

गरीब या स्वर्ग के दूत—इस कलियुग में धनवानों के परम सौभाग्य से गरीबों को जन्म मिला है जिससे कि वे अपने धन का व्यय विलासवर्धक नारकीय कामों में न करें। गरीबों के उद्धार जैसे स्वर्गीय कामों में करें। जिस प्रकार रोगी डाक्टर के पैरों में पड़ता है और कहता है "महरबानी कर मुझे रोग से मुक्त कीजिए" उसी प्रकार धन वालों को भी गरीबों के पैरों में पड़कर उन्हें प्रार्थना करनी चाहिये कि "विषय विलास में व्यय होते हुए हमारे धन का आपके उद्धार के लिए उपयोग कीजिये। हमारे धन से आपकी आत्मा को ज्ञान से और आपके शरीर को अन्न से पुष्ट कीजिए। और आपके सुकृत्यों में हमारा भी हिस्सा रखिये" जब तक धनवान आदर्श दान का पाठ न सीखेंगे और ऐसे आदर्श दान अपने हाथों से नहीं देंगे तब तक उन्हें टोंटों के समान ही समझना चाहिये।

परोपकार के लिए जो प्रेमपूर्वक पैर नहीं बढ़ाता वह पैर वाला होने पर भी पगु ही है।

टायर विशेष न घिसे इन बातों की जिस प्रकार सावधानी रखता है उसी प्रकार इन्द्रियों को भी विशेष मूल्यवान नहीं तो केवल जड़यन्त्रवत् मूल्यवान समझे तो भी काफ़ी है। कानों को टेलीफोन जितना, आंखों को वेट्री जितना, नाक को थर्मामीटर जितना, जीभ को फोनोग्राफ जितना, और हाथ को साइकल जैसा मूल्यवान समझे तो भी मनुष्य नाटक, सिनेमा, विषय विलास, गान तान आदि अनेक प्रकार के पाप प्रवाह से छूट सकता है और इन्द्रियों का सदुपयोग कर सकता है। वेट्री या लाइट को जलाते हुए अंधेरा है या नहीं आदि का विचार करता है उसी प्रकार सुनते देखते और पढ़ते हुए उसकी आवश्यकता का विचार करना चाहिए। ऐसा करने पर वह अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। सर्प, पतग, भ्रमर, मत्स्य और हाथी एक एक इन्द्रियों के वशीभूत होकर मृत्यु-प्राप्त करते हैं तो मनुष्य जो कि पाचों इन्द्रिय के विलास का उपभोग करता है उसका कितना पतन होता होगा इस बात का विचार प्रत्येक सुज्ञ और विवेकशील पुरुष को करना चाहिये।

१०—आप किसके पुजारी हैं?

अत्यावश्यक तत्त्व पर विचार कीजिये!

शरीर के लिए अन्न जल और हवा आवश्यक है। और ये भी एक एक से बढ़ बढ़ कर। अन्न के बिना कुछ महीनों तक निभा सकते हैं, जल के बिना कुछ दिनों तक लेकिन हवा के बिना शरीर कुछ मिनिट तक भी नहीं टिक सकता। अन्न की अपेक्षा जल, और जल की अपेक्षा हवा अधिक आवश्यक है। लेकिन फिर भी मनुष्य को पानी और हवा की अपेक्षा अन्न विशेष आवश्यक प्रतीत होता है। इस लिए मनुष्य अन्न के लिए रात दिन दौड़ धूप मचाता है। अन्न और पानी का नित्य स्मरण करता है, लेकिन हवा जैसी कोई वस्तु विश्व में अस्तित्व रखती है या नहीं इसका लेशमात्र भी विचार मनुष्य नहीं करता। जब उसे बन्द कोठी में रख दिया जाता है तभी वह हवा का मूल्य समझता है। हवा से भी विशेष मूल्यवान तत्त्व है कि जिसके अभाव में मनुष्य एक सेकण्ड भी जीवित नहीं रह सकता है। उस तत्त्व को मनुष्य सर्वथा भूल गया है। उस तत्त्व का नाम है आत्म-तत्त्व। आत्म तत्त्व के अभाव ही से नित्य चालीस सहस्र मनुष्यों को मुर्दे समझकर जला दिया जाता है। उस तत्त्व का इतना महत्त्व होने पर भी उसका नाम तक पाशविक वृत्ति में जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य को अच्छा नहीं लगता। इससे विशेष आश्चर्य क्या है?

शरीर की खुराक अन्न, जल, और हवा है। उसी प्रकार आत्म तत्व की खुराक दान, शील, तप और पवित्र भावना आदि हैं। जिसके प्रताप से मनुष्य अपने जीवन में सुख शान्ति और आनन्द का उपभोग कर सकता है। लेकिन जहा आत्म तत्व की बात ही नहीं सुहाती वहा उसको धरम की बात कैसे अच्छी लग सकती है ?

अन्न, जल और हवा में से एक भी तत्व यदि कम हो तो शरीर को शान्ति मालूम नहीं होती। उसी प्रकार आत्म धर्म के तत्व में से किसी एक तत्व की भी न्यूनता हो तो आत्म शान्ति का अनुभव नहीं ही होना चाहिये।

सूक्ष्म भूल—एक से दस तक के अंकों में से बालक को केवल एक दो का अंक न आता हो और व्यजनों में से केवल "ख" न आता हो तो वह गणित सीखने में, या पुस्तकों को पढने में असमर्थ होता है। उसी प्रकार एक भी आत्म धर्म की न्यूनता आत्मोन्नति के लिए असम्भव है।

अपूर्व आविष्कार—पूर्वाचार्यों ने पर्वों की स्थापना कर धर्माराधन के लिए अमुक दिन तथा अमुक गुणों की आराधना के मध्यम मार्ग का मानव समाज के लिए आविष्कार किया है। और उन्हें विश्वास है कि रो रो कर पाठशाला जाने वाला बालक कभी न कभी स्वेच्छा से पाठशाला मे जाकर अपनी प्रगति कर सकता है। उसी प्रकार कोई पुण्यशाली जीव भी स्थायी धर्माराधन कर सकेंगे।

धर्म कब?—अपने आगन में जब कचरा इकट्ठा हो जाता

है तब झाड़ू और सफाई करने वाले का याद आती है उसी तरह शरीर रूपी आंगन में जब रोग रूपी कचरा भर गया है और वे पीड़ा दे रही है तब इस कचरे को दूर करने के लिये झाड़ू रूपी डाक्टर याद आता है। और वह डॉक्टरों की दवाइयों से थक जाता है। डॉक्टर स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि यह केस नहीं सुधर सकता। तब अन्ततोगत्वा उसे धर्म रूपी झाड़ू और झाड़ू देने वाले धर्मगुरु याद आते है। इसके अलावा मनुष्य और किसी समय धर्मको शायद ही याद करता है।

शारीरिक रोग—अपने पुत्र के पेट में विशेष रोग होने पर पिता डाक्टर के पास आता है। डॉक्टर कहता है कि पेट में चीरा देना होगा। रुपये ५ ०) फीस के देने होंगे। क्लोरोफार्म सुंघाना पड़ेगा। बालक की मृत्यु का जिम्मेवार मैं नहीं। इस प्रकार डॉक्टर की प्रत्येक गारन्टी उसका पिता मंजूर करता है।

पिता अपने प्रिय पुत्र को डॉक्टर के स्वाधीन करता है। वह आपरेशन रूम में ले जाया जाता है। यह सब देख कर पिता और पुत्र थर थर कांपते हैं। पिता को वहां से हटा दिया जाता है। पुत्र को क्लोरोफार्म सुंघाया जाता है उसके बाद उसके शरीर पर ओपरेशन से क्रिया शुरू की जाती है।

शरीर का रोग दूर करने के लिए क्लोरोफार्म सुंघाना पड़ा और उसे सूंघने से बालक अपने माता पिता और संसार को भूल गया। तदुपरान्त उसे अपने शरीर का भान भी न रहा। तभी ओपरेशन हो सका तो आत्मा में अनन्त काल से भरे हुए कामक्रोधादि रोगों को दूर करने के लिए कितने पुरुषार्थ और

कितनी जिज्ञासा आवश्यक है। इस बात को कोई भी विचारक सरलता से समझ सकता है।

अज्ञानियों की समझ—रोगी को दवाई और डाक्टर याद आते हैं, लेकिन निरोगी के लिए दवाई या डाक्टर की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार आत्मज्ञान रहित मनुष्य अपने आपको निरोगी समझते हैं और अपने लिए धर्मतत्व की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं समझते।

दोनों कार्यों को मत बिगाड़िए—आप धर्म तत्व समझने के लिये धर्म गुरुओं के पास आते हैं। लेकिन जिस प्रकार कोई कारीगर दिन को दिवाल चुनता है और रात को उसे गिरा देता है वही स्थिति आपकी है। धर्म स्थानक में आकर आप अपने आप में पवित्र विचारों की दीवाल चुनते हैं, परन्तु बाहर निकलते ही वह पवित्र विचारों की दीवाल जमीन दोस्त हो जाती है। इस प्रकार की प्रकृति से आपके यहा आने का समय बिगड़ता है और साथ ही उस समय में होने वाला आपका सासारिक कार्य भी नहीं हो पाता। इससे धर्म और ससार दोनों स्थान से भ्रष्ट होते हुये न समझे जायगे।

ज्ञानियों से मज़ाक की जा सकती है?—

रोगी डाक्टर के पास परहेज रखना स्वीकार करता है और घर जा कर परहेज नहीं रखता तो क्या डाक्टर की आज्ञा का उलघन या मजाक नहीं है? उसी प्रकार आप हमारे समक्ष ज्ञानियों के वचनों के लिए "हाँ जी हाँ" करते हैं और घर जा कर उन वचनों को भूल जाते हैं यह ज्ञानियों की हसी ही है।

क्या यह शोभा देता है ?—कोई स्त्री अपने पति के फोटू की पूजा करे और जब पति घर आवे तब उसका सम्मान भी न करे, लेकिन उसके साथ अविवेकपूर्ण व्यवहार करे तो यह उसकी अज्ञानता और मूर्खता है इसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य भी अपने शरीर रूपी फोटू की पूजा करते हैं। वे उस फोटू को हीरे मोती, माणिक और विविध प्रकार के वस्त्रालंकारों से सजा करते हैं लेकिन उस फोटू के स्वामी स्वरूप आत्मा का अनादर करते हैं। उसके अस्तित्व को स्वीकार करने की प्रामाणिकता भी उनमें नहीं है। तो उन्हें कैसा समझना चाहिए ?

जीवित कौन ?—मुर्दे के सामने लाखों मनुष्यों को रुलाया जावे, फिर भी उसमें जरा भी जागृति नहीं आ सकती। इसी प्रकार मानव की आन्तरिक स्थिति भी मुर्दे के समान होने लगी है, जिससे मनुष्य पर जरा भी असर नहीं हो पाता। मुर्दे को लाखों मन जलते हुए लक्कड़ों या कोयलों में गाड़ दिया जावे फिर भी वह चमकता नहीं है। जब कि मानव एक चिनगारी मात्र से चमक जाता है। इसी प्रकार जिस आत्म-तत्त्व का भान नहीं है उस पर किसी प्रकार के उपदेश असर नहीं कर सकते। जब कि आत्म-तत्त्व के भान वाला साधारण प्रसंगों में भी जागृत हो कर धर्माभिमुख बन जाता है।

पर्वत बड़ा या चींटी ? —मेरु जैसे महान पर्वत पर गिलहरी और चिड़िया जैसे सामान्य प्राणी भी चढ़ सकते हैं, उस सिंहासन बनाकर उसपर बैठ सकते हैं और वे पर्वत के शिखर पर ही अपने शरीर का मल-विसर्जन करते हैं। तब गिलहरी अपने

शरीर पर मक्खी या मच्छर को भी नहीं बैठने देती। क्योंकि गिलहरी में मेरु पर्वत की अपेक्षा आत्म तत्व की झलक विशेष है। मेरु पर्वत करोड़ों गिलहरियों को अपने एक ही कोने में दवा सकता है। इतना वह महान है। फिर भी उसमें चींटी की अपेक्षा चेतना शक्ति की अल्पता के कारण वह गिलहरी या चींटी से भी पामर है। इसी प्रकार चाहे जैसा धनवान मनुष्य हो, लेकिन यदि उसे आत्म तत्व का भान नहीं है तो मनुष्यों की दृष्टि में भले ही वह बड़ा हो तो भी वास्तव मे वह जड मेरु पर्वत के समान निर्माल्य है।

मृत्यु के समय क्या काम आयेगा ? :–धर्म भावना वाला अपने लिए इस लोक और परलोक में स्वर्गीय महल बनवाता है। जब कि अधर्मी अपने लिए कब्रस्तान तैयार करता है। प्राचीन काल में कई देशो में बालक पैदा होत ही उसको गाड़ने के लिए कब्र बनाने का विचार किया जाता था और राजकुमारो के लिए तो जन्म होते ही कब्र बनाई जाती थी। उस कब्र का कार्य जब तक वह जीवित रहे चलता था। जिस प्रकार वर्तमान में रहने के लिए बडा महल हो उसमें बड़प्पन समझा जाता है, उसी प्रकार उस समय जिसको गाड़ने के लिए बड़ा कब्रस्तान हो वही बडा समझा जाता था। वह कब्र तो मृत्यु के समय भी काम आती है, लेकिन मनुष्य की सपत्ति मृत्यु समय भी काम में नहीं आती।

धन और धर्म:—मनुष्यों को धन का मोह इतना है कि वह उसे धर्माभिमुख नहीं होने देता। आपको यदि धन विशेष

प्रिय है तो उसे आप अपना सिरताज समझते हैं और उसे उतना ही सम्मान देते हैं, लेकिन धर्म को अपने तुच्छ पैरों के समान मानते हैं। लेकिन पैर तन्दुरुस्त न हो तो मस्तिष्क को जरा भी चैन नहीं पड़ती तो धर्म को कैसे भुलाया जा सकता है? पैर के आधार पर ही मस्तक रहा हुआ है उसी प्रकार धर्म के सहारे पर ही आपका सुख और धन संपत्ति टिकी हुई है।

मोर जैसे न बनिए' — मोर छत्र बनाकर नाचता है और नाचते हुए विचार करता है कि मेरी कलंगी, गरदन, शरीर, और पूंछ कितने सुन्दर हैं। केवल पैर ही अशोभित करने वाले हैं। लेकिन वह पामर प्राणी इस बात का विचार नहीं कर सकता कि यह कलगी और सुन्दर पूंछ ही शिकारी को उसके प्राण हरण करने के लिए लालायित करते हैं और पैर ही उसके रक्षा कार्य उपयोगी हैं। इसी प्रकार मोर के सुन्दर पूंछ रूपी धन ही मनुष्य के लिए शत्रुरूप है। वही मनुष्य के जीवन को कई बार खतरे में डाल देता है, जबकि धर्म ही उसकी रक्षा करता है। अर्थ सुख और संपत्ति का मूल धर्माराधन ही है —

११—मानव शरीर का आविष्कार क्यों ?

महान् आविष्कारः—शरीर की सच्ची शोभा आभूषण नहीं अपितु—आत्मिक गुण हैं। इस बात पर हम अनेक वार विचार कर चुके हैं। आत्म साधना के लिये मानव शरीर प्रकृति का ' Latest and last " सबसे अन्तिम आविष्कार है। इस से विशेष सुन्दर आविष्कार करने के लिए प्रकृति सर्वथा असमर्थ है।

आंखों का मूल्यः—मानव शरीर की मशीन और उसके यत्र महा मूल्यवान हैं एक २ यंत्र की त्रुटि का सुधार करने के लिए ऐडीसन जैसे करोड़ों विज्ञान सम्राट् भी सर्वथा असमर्थ हैं। एक मनुष्य के आखें नहीं हैं, फिर भलेही वह चक्र-वर्ती का पुत्र ही क्यों न हो। वह आखों का तेज देने वाले को शरीर के तोल के बराबर भी कोहिनूर और हीरे देने की इच्छा करे फिर भी उसे आखें नहीं मिल सकती। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय की उपयोगिता और बहुमूल्यता समझ लेनी चाहिए।

जीभ का मूल्यः—मनुष्य में जब तक जीवन है तब तक वह सार्थक या निरर्थक कार्यों में अपने शब्दों का उपयोग करता है। लेकिन उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके साथ बात करा देने वाले को करोड़ों का उपहार या आधा राज्य भी दे दिया

जाय तो भी वह उसे नहीं सुलभा सकता और डॉक्टर और वैज्ञानिक भी पता नहीं करवा सकते।

विश्व के तमाम वैज्ञानिक और विश्व के तमाम साइन्स के प्रयोग एकत्रित करने पर भी वे मानव का शरीर या उसके अंगो-पांग बनाने में सर्वथा असमर्थ हैं।

विज्ञान की शक्ति—वैज्ञानिकों ने जल थल और नभ मंडल पर अपना साम्राज्य स्थापित किया है रेल्वे तार, पोस्ट, ऐरोप्लेन, मोटर, स्टीमर, रेडियो, बिजली, वायरलेस और फोनोग्राफ आदि महान आविष्कार किए हैं और कर रहे हैं लेकिन मानव यन्त्र बनाने के लिए वे सर्वथा असमर्थ है।

शून्य का गुणाकार—मनुष्य के शरीर की त्रुटि वैज्ञानिक दूर न कर सकें या मनुष्य की मृत्यु को न रोक सकें, तब तक उनके तमाम आविष्कारों का जोड़ और गुणाकार शून्य का गुणाकार और जोड़ ही है।

इस पर से यह सरलता से समझा जा सकता है कि मानव का यन्त्र महान से भी महान है।

मानव अनन्त सृष्टि समान है—रेल्वे स्टीमर, ऐरोप्लेन, बिजली वायरलेस रेडियो, बीन प्रेस, और महलों की उत्पत्ति छोटे दिखने हुए मानव के मस्तिष्क रूपी अनन्त सृष्टि में से हुई है और वर्तमान के तमाम आविष्कार उस अनन्त महान सागर रूपी सृष्टि के बिन्दु तुल्य है और भविष्य में विमान, आकाश और पाताल को एक कर दें। चन्द्र और सूर्य को

अपने विज्ञान भवन मे कैद करले तो भी वह मानव महासागर रूपी सृष्टि का विन्दु मात्र ही है।

मानव का आविष्कार महान् है। प्रत्येक यत्र की कीमत अकित की जा सकती है। लेकिन मानव यंत्र के एक आगुल के भाग की कीमत भी देने के लिए विश्व मे कोई भी समर्थ नहीं।

जीवन नहीं जुड़ सकता:—गगा, यमुना और सिन्ध के वडे वडे पुल विज्ञान की सहायता से वनाये गए हैं और विज्ञान मेरू जैसे महान् पर्वतो को भी गिरते हुए रोक सका है। लेकिन मानव जीवन का एक पल भी नहीं वढा सकता। विज्ञान मनुष्य के टूटे हुए आयुष्य को नहीं जोड सकता।

मनुष्य का खर्च:—मिल, जीन, प्रेस आदि यत्रों मे प्रति दिन सैकडो रुपयो का कोयला जलता है। गाय, भैंस और घोड़ों के लिए भी प्रति दिन घास और धान्य के पीछे १-२ रुपयों का खर्च करना पड़ता है। जब कि मानव की महान् मशीन को चलाने के लिए केवल पाव भर आटा ही पर्याप्त है। मानव शरीर की और उसके अगोपागों की उपयोगिता देखते हुए यदि उसके पीछे प्रति दिन करोड़ों का भी खर्च करना पडे तो भी वह अत्यल्प है। मृत्यु के वाद प्रत्येक इन्द्रिय की एक २ मिनिट के लिए करोडों रुपया खर्च करने पर भी सफलता नहीं मिलती। तो फिर जीवित अवस्था वाले मानव के प्रत्येक दिन का खर्च कितना होना चाहिये यह सहज ही समझा जा सकता है।

प्रकृति का कर (Tax):—प्रकृति का ऐसा नियम है, कि जो

वस्तु विशेष मूल्यवान होती है उसे अमूल्य ही रखी जाती है जिससे उसका वास्तविक मूल्य समझा जा सके।

यदि प्रकृति चन्द्र और सूर्य के प्रकाश पर चुंगी (Tax) मनुष्य पर डाले, तो क्या उसे वह अदा कर सकता है ?

वर्षा, गर्मी और सर्दी आदि ऋतुएं भी अपना कर (Tax) मनुष्य पर लगावे तो क्या वह उसे चुका सकता है ?

इसी प्रकार मानव के जीवन के लिए पवन विशेष आवश्यक हुआ है। यदि उसका भी कर (Tax) देना पड़ता होता तो किस के प्राणी शायद ही जीवित रह पाते।

उसी प्रकार प्रकृति ने मानव का यन्त्र इस प्रकार बनाया है, कि वह बड़े से बड़ा काम भी कर सकता है। फिर भी उसका निभाव खर्च ४ आने की बैट्री जितना भी नहीं। ६ आने की बैट्री का जितना चार्ज लगता है यदि उतना चार्ज आंखों के प्रकाश के लिए लगाया जाता तो मनुष्य धन के लोभ से आंखें बन्द करते हुए चलते और कुए में पड़ कर मृत्यु के लोग बनते।

मानव शरीर का महत्त्व सरलता से समझा जा सकता है। उस शरीर से वैसे ही महत्त्वपूर्ण काम होने चाहियें। तब इस जीवन की सार्थकता है और तभी प्रकृति की कृपा का सदुपयोग किया गया माना जा सकता है।

मनुष्य के लिए आदर्श-आकाश दीप (Search Light) प्रति दिन सैकड़ों जहाज और स्टीमरों को चट्टानों से टकराते हुए बचाता है और लाखों मनुष्यों को जीवन दान देता है।

नदी का पुल अपने ऊपर से सैकड़ों ट्रेनों को जाने देता है और लाखों मनुष्यों के सुख में सहायता पहुँचाता है।

आपकी गली में यदि एक ही दीपक जलता हो तो वह सैकड़ों मनुष्यों के, आने जाने के लिये, मार्ग दर्शक हो जाता है। साप, बिच्छू, खड्डे, आदि से आपको बचाता है। एक ही गुलाब का पौधा आपके आगन में बोया गया हो तो वह आपकी गली के तमाम मनुष्यों को सुवास और शीतलता देता है। एक ही कुआ हजारों मनुष्यों की तृषा रूपी ज्वाला को शान्त करता है। एक ही वृक्ष छाया दे कर हजारों मनुष्य, पशु और पक्षियों पर उपकार करता है। तो फिर एक ही मनुष्य का जीवन विश्व के लिये कितना उपयोगी होना चाहिये ? इसका विचार आप स्वय करें।

जीवन की निष्फलता:—मानव अपना जीवन सरलता से परमार्थ मय व्यतीत कर सके, इसीलिये इतनी सुविधाएँ दी गई हैं। इसके फलस्वरूप मानव स्वार्थ भावना से अधिकाधिक सड़ रहा है और उसकी दुर्गन्ध विश्व में फैल कर शान्ति का भग कर रही है।

प्रकृति की दया:—मानव शरीर धनोपार्जन के लिये ही नहीं प्राप्त हुआ है। मानव शरीर के लिये आवश्यक अन्नजलादि साधन वह साथ लेकर ही जन्म लेता है। जन्म के समय बाल्यावस्था के कारण, दांत के अभाव में धान्य को पचाने की शक्ति न होने से प्रकृति ने माता के स्तनों में दूध दिया और उसमें प्रकृति ने लेशमात्र भी पक्षपात नहीं किया। रानी और महतरानी, दोनों के यहाँ बालक का जन्म हुआ तो दोनों ही को एक साथ प्रकृति ने दूध दिया और वही व्यवस्था पशुओं के लिये भी की।

माता के स्तनों से दूध आना बन्द होते ही राज कुमार और भगी कुमार, दोनों ही को प्रकृति ने दाँत दिये, जिससे कि वे खाना खा सकें। जिस प्रकृति ने ऐसा मूल्यवान यंत्र वाला शरीर दिया है, वह प्रकृति क्या मनुष्य को अन्न, जल और वस्त्र नहीं दे सकती।

विवेकमय जीवन—एक मनुष्य रुपये को खाये तो उसमें स्वाद नहीं आ सकता लेकिन दाँत टूट जायगा। परन्तु वो रुपये की भीतर ले कर बाजार में एक ही पैसे की शक्कर खरीद लावे और उसका उपयोग करे तो उसे बहुत प्रसन्नता होगी। हीरे को मनुष्य चूसता है तो उसे वह फीका लगता है। उसमें जरा भी स्वाद नहीं आता। बालक के सामने हीरा और मिश्री का टुकड़ा रखिये तो वह हीरे को फेंककर मिश्री के टुकड़े को प्रेम से खा लेगा। बालक को यह मालूम नहीं है, कि इस टुकड़े में लाखों मन मिश्री की बोरियाँ भरी हुई हैं। उस हीरे में छिपी हुई शक्कर को कोई जौहरी ही देख सकता है। बालक को उसका ज्ञान नहीं हो सकता। वही स्थिति वर्तमान में मानव समाज के समक्ष मानव वृन्द की हो रही है

राजकुमार राजसिंहासन पर बैठ कर राज्य तन्त्र चला सकता है, लेकिन यदि वह खेत में जाकर घास काटने का काम करेगा तो वह घास काटने के बदले अपनी अंगुली ही काट जायगा। यही स्थिति मानव प्राणी की हो रही है।

मनुष्य विकल्प—भारत में अन्य देशों की अपेक्षा में वायसराय का वेतन सब से अधिक है। मासिक वेतन इक्कीस हजार अर्थात एक दिन के सात सौ रु० होते हैं और एक दिन

के मिनीट एक हजार चार सौ चालीस होती है इस हिसाव से वायसराय को प्रत्येक मिनीट के आठ आने और एक घटे के तीस रुपये मिलते हैं। जब कि कइयो को मासिक तीस या तीन सौ योग्यता अनुसार मिलते हैं।

एक विधवा के पास यदि एक करोड रुपया है तो उसका व्याज प्रति वर्ष ५ लाख मिलता है और यदि व्याज न उठाले तो वारह वर्षों में एक करोड के दो करोड हो जाते हैं। यदि एक मनुष्य कहीं नौकरी करता है तो एक वर्ष के लिये अपनी तमाम शक्तियाँ सेठ के वहा व्याज पर रखता है तव मुश्किल से हो किसी को वार्षिक पाच सौ, हजार या दो हजार का वेतन मिलता है।

जिस मनुष्य ने अपने शरीर रूपी यन्त्र को किसी सेठ के यहा व्याज पर या गिरवी रक्खा, उसके फलस्वरूप रोज के आठ, वारह आने या दो चार रुपये मिलते हैं। इसीसे यह स्पष्ट होता है कि मानव शरीर धनोपार्जन के लिये नहीं, लेकिन धर्मोपार्जन के लिये ही मिलता है।

मानव जीवन का ध्येय:—यदि मानव जीवन का ध्येय धनोपार्जन ही होता, तो मानव के मूल्यवान् शरीर और उसकी अमूल्य इन्द्रियों के हिसाब से उसे प्रत्येक मिनिट में लाखो रुपयों की आवक होनी चाहिये। मानव जीवन कल्पवृक्ष या कामधेनु जैसा होने से वह जिस समय जो वस्तु चाहे वह उसे मिल जानी चाहिये था, लेकिन ऐसा नहीं होता। चौबीसों घंटे तनतोड परिश्रम करने पर भी कोई भाग्यशाली ही अपनी आजीविका चला सकता है। मानव समाज का बहुत बड़ा भाग तो अर्ध नग्न और अर्ध क्षुधातुर

स्थिति में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। भारत में कर करोड़ मनुष्यों को नित्य भरपेट भोजन नहीं मिलता।

यदि मनुष्य अपना विलासी जीवन घटा कर शरीर के लिए आवश्यक अन्न जल और वस्त्र के अलावा निरुपयोगी ऐशआराम की चीजों का त्याग करें तो वह अपना जीवन सादगी और संयममय (धर्ममय) व्यतीत कर सकता है और तभी सच्चा संयम साधक है।

१२-ऋतु धर्म और मानव धर्म

इस समय वर्षा ऋतु है। इसलिए जो स्थलमय स्थान थे वे जलमय हो गये हैं। और मानों पृथ्वी पर चमकते हीरों की बिछात की गई हो इस प्रकार नदी और सरोवर रमणीय प्रतीत होते है। जो जमीन मिट्टी, पत्थर, ककर और कूडा करकट म श्मशानवत् मालूम पड़ती थी, वह आज नीलम के गलीचे की तरह सुहावनी बन गई है। वर्ष भर से तृषातुर चातकों की तृषा तथा स्थावर और जगम जीवो को शान्ति मिली है।

नालियाँ और गटरें धुल गईं:—शहरों की मीलों लम्बी और दुर्गंधमय गटरें, नलियाँ और सडकें धुल कर स्वच्छ हो गई हैं। वर्षा ने सारे ससार को धोकर साफ सुथरा बना दिया है।

अब उस वर्षा ऋतु का हम पर क्या प्रभाव पडा है? यही विचारणीय है। हमारा हृदय, कि जो केवल चार अगुली प्रमाण है वह धोया गया या नहीं? उसमें से दुर्गन्ध और मलीनता का नाश हुआ है या नहीं? इस बात का विचार कीजिये।

दया का अंकुर:— स्थान स्थान पर हरियाली आगई है, लेकिन हमारे में दया का अकुर उदित हुआ है या नहीं? इस बात का विचार करने के लिए हम एकत्र हुये हैं।

प्याऊ:—वर्षा ने जगह जगह पर जल की प्याऊ लगाई है और वह प्रति वर्ष लगाता है। तथा मनुष्यों ने वर्षा के जल

से भी अधिक उपयोगी बनने के लिए । हमें क्षुधा पीड़ित और तृषातुरों के लिए प्याऊ खोली और विश्व को शान्ति प्रदान की।

इस ऋतु में तालाब और कूप तो भर गए और नदियां में पूर आगये। तो इस श्रावण मास में जो कि धार्मिक मास कहलाता है, आपमें धर्म भावना के पूर आये या नहीं ? कुआ और बावड़ी रूपी आपकी तृष्णा शान्त हुई या नहीं ? इस पर विचार करने के लिए आप लोगों को आमंत्रण दिया जाता है।

किसान पट पर पट्टी बांधकर भी जमीन मे विविध प्रकार का अनाज बोकर धान्य पैदा करते हैं। तब मनुष्य का अपना हृदय रूपी खेत में धर्माराधना के दान शीयल तप और भावना रूपी बीज बोना है और उसके मधुर मधुर फलों को चखने के निमित्त ही यह अवसर प्राप्त हुआ है। इसी में हमकी सार्थकता है।

वृक्ष की सेवा'—वृक्ष प्रकृति मे इस ऋतु मे फलते फूलते हैं और उसके बदले म प्रकृति के भंडार रूप समस्त विश्व को पत्र पुष्प फल और उनके मधुर रसों का दान देकर अपने ऋण से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं। थके हुए पशु पक्षी तथा मनुष्यों को अपनी छाया और पवन के शीतल झकोरे म विश्राम और शान्ति देते हैं फिर भी मनुष्य उन्हें पत्थरों की मार मारते हैं लेकिन व प्रसन्न भाव से मनुष्यों को फल देते ही हैं।

शिक्षा पाठ'—वृक्ष हमारे समक्ष विश्व प्रेम, विश्व सेवा का आदर्श उपस्थित करते हैं। जब कि वृक्ष उपरोक्त रीति से विश्व की सेवा करते हैं, तो मनुष्य को अपना मनुष्यत्व और

महत्व बनाये रखने के लिये सेवा के कैसे अलौकिक और अपूर्व आदर्श उपस्थित करने चाहियें ? और ऋण से उऋण होने के लिये कैसे कैसे प्रयत्न करना चाहिये ? यह सहज ही समझा जा सकता है।

रोटी का कवलः—मनुष्य एक ही सेकंड में रोटी का एक कवल गले में उतार जाता है। लेकिन वह कृतघ्न मनुष्य विचार नहीं करता है कि रोटी का यह कवल कितने लाख मनुष्य और पशुओं के श्रम का फल है ? और एक ही कवल के आहार से मैं लाखों मनुष्य और पशुओं के उपकार से उपकृत होता हूँ। अत उनकी सेवा करना मेरा परम कर्तव्य है। इन बातों का तो शायद ही कोई विचार करता हो।

चाँवल का एक दाणा—बौद्ध साधुओ का ऐसा नियम है, कि भोजन करते हुए चाँवल का एक भी दाणा व्यर्थ न जाने देना। वे समझते हैं कि एक दाना झूठा डालना, करोड़ों मनुष्यों के श्रम का अपमान करना है। इस प्रकार झूंठा छोड़ना, देश बन्धुओ को भूखे मारने का पाप सिर पर उठाना है। तब महाजनों के घरा मे और जिमनवार मे सैकडो मनुष्य जीम सकें उतना भोजन खराब कर समय और धन का दुर्व्यय किया जाता है और झूठन की गदगी से जहरी जन्तु उत्पन्न कर रोग फैलाये जाते हैं। यह बात अनुभव सिद्ध है अत इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

लाखों का उपकार— गेहूँ की उत्पत्ति के लिए खेत, खेती, किसान, बैल, हल, बीज, पानी, कुआ, गेहूँ को पीसने के,

लिये पर्वतों को तुड़वा कर पत्थरों की चक्की बनाना उसके बीजों के लिए लोहे की खानों को खुदवाना, कोल्हू बनाना, पकाने के लिए चूल्हा, लकड़ी, चकरोटा, बेलन आदि अनेकानेक साधनों के लिए अगणित मनुष्यों की सहायता प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लेनी पड़ती है। फिर भी मनुष्य इस प्रकार का सम्यग विवेक पशु की तरह भूल गया है। पशुओं में विचार शक्ति नहीं है, लेकिन मनुष्य में विचार शक्ति होने पर भी वह पशुवत् विवेक शून्य जीवन व्यतीत करता है। इस लिए वह पशु से भी अधिक दया पात्र है।

शरद् ऋतु—वर्षा ऋतु के अपूर्ण कार्यों को शिशाम पूर्ण करता है। शरद्ऋतु की धूप दिन में अपनी गर्मी से धान्य को सुखाता है। और पृथ्वी की आर्द्रता को दूर कर मनुष्यों की सर्दी के साथ सूर्य स्नान करवा कर मनुष्य म भरता है। जठ राग्नि को भी विशेष प्रबल करता है और जठराग्नि को पुष्ट करने वाले बादाम पिस्ता द्राक्षादि मेवा तैयार कर मानव समुदाय की सेवा करता है।

ओस का आदर्श—रात्रि को विश्व का प्रत्येक स्थावर और जंगम जीव निद्राधीन हो जाता है तब शरद् ऋतु की शीतल रात्रि ओस बिंदु बरसा कर पत्तों को पोषण देती है और मनुष्य उसकी गुप्त सेवा को न जान सके, इसलिए मनुष्यों का जागृत होने स पहले ही वह (ओस बिंदु) लुप्त होजाती है। इस प्रकार का मूक और गुप्त सेवा का मनुष्य को दान का आदर्श पाठ सिखाती है।

दान के प्रकार—दान देकर मौन रहे, वह उत्तम दान देकर विज्ञापन करे वह मध्यम, दान देने के पहले ही विज्ञापन करे यह अधम।

इस प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम ऐसे दातारो; के तीन विभाग हैं। इन तीनों में से आप किस कोटि के हैं? इस बात का विचार करें। वर्तमान जैन समाज की मनोदशा पर विचार करते हुये उपरोक्त तीन विभागो के बदले किलयुग मे महाअधम, अधमाधम अधम आदि विभाग करें तभी उन विभागो मे से उसका एक नबर आ सकता है। अन्यथा वह उस दान के स्वरूप को समझने के लिये भी सर्वथा अपात्र बन सकता है।

मान का दान दीजिये—लाख का दान देना सरल है। लेकिन दिये हुऐ दान के मान का दान देना बहुत कठिन है। सौ का दान देने वाला लाख के दान के मान की आशा रखता है। लाखों की मिल्कियत के औषधालय, स्कूल, धर्मशाला आदि मकानों में पद्रह बीस हजार का दान देकर उस सस्था पर अपने नाम के शिला लेख का सुनहरी अक्षर वाला बोर्ड लगाते हुऐ मनुष्य को जरा भी लज्जा नहीं आती।

धर्मशाला में सैतान—एक धर्मशाला में मेरा उतरा था। वहा एक मुसलमान दर्शनार्थ आया। उसने कहा कि 'महाराजजी! आपके मकान में शैतान घुस गया है" में इस मुसलमान के शब्द एक दम नहीं समझ सका, तब उसने स्पष्टीकरण किया कि धर्मशाला बनाने वाले ने दरवाजे पर अपने नाम का शिला लेख रक्खा है। लोगों की सुख साधना के लिए हजारों

रुपया खर्च कर धर्मशाला बनवाती है, लेकिन उसमें अपने नाम का मान रूपी शिला लेख रूप शैतान रख रहा है। वह शैतान मुसाफिरों में शैतान जमाने की भावना पैदा करेगा और दूसरों को भी स्वत्वाधिकार के रूप में शैतानी भाव देता जायगा।

कहां तो शरद् ऋतु की ओस बिंदुओं का एकान्त दान और घोर अंधेरी रात्रि में गुप्त और मूक सेवा करने का पवित्र आदर्श ? और कहां थोड़े दान में ऐसी शैतानी भावना वाले थे अपने आराम के लिए भी स्वत्वाधिकार के रूप में शैतानी तत्व रख कर अपना अहित करने के साथ अपने वंशज का भी अहित करने की भावना।

चीन के साहूकार—आपको कोई चीन का साहूकार कहे तो बुरा लगेगा कि मेरा अपमान किया। लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है। कुछ वर्षों पहिले एक राष्ट्रीय नेता रंगून में एक चीनी की दुकान पर चंदा लेने के लिये गये थे। तब वह चीनी व्यौपारी सीधा तिजोरी के पास गया और देने की रकम देने के बाद ही चंदे की लिस्ट में अपना नाम लिखा। कारण पूछने पर उसने कहा कि "लिखान के बाद जितनी देर रकम देने में लगती है उतना मेरे सर पर धर्म का कर्ज रहता है। ऐसा कर्ज रखने की हमारे धर्म शास्त्रों में सख्त मनाई है। तब आज भारत भूमि बड़े बड़े धर्मार्थियों के घरों में वर्षों तक धर्मार्थ की रकम अमानत रूप से जमा रहा करती है। उसीसे अपना व्यौपार करते हैं और अक्सर घर में रखते हैं। और यदि व्याज देते हैं तो साहूकारी व्याज से बहुत ही कम। जाहिर की जाने वाली दान की रकम

मरण शैय्या पर पड़े हुए मनुष्य को सान्त्वना देने के लिए और यमराज को रिश्वत देने के रूप में जाहिर की जाती है। रकम तो अपने घर ही में रहती है। भारतीय धार्मिक संस्थाओं की धर्म खाते के रकम की जैसी अव्यवस्था देखी जाती है वैसी तो शायद ही किसी अन्य देश में होगी। भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। भारतीय जनता आस्तिक कही जाती है। फिर भी पाश्चिमात्य नास्तिक मानी जाने वाली प्रजा के दान के आगे भारत के राजा महाराजाओं के दान भी लज्जित हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु—चौमासे के अपूर्ण रहे हुए कार्य को शर्दी ने पूर्ण किया और शर्दी का अपूर्ण कार्य गर्म ऋतु पूर्ण करती है। ग्रीष्म काल की प्रचण्ड गर्मी विश्व की गंदगी को सुखाकर नस्स कर देती है। और कचरे को अपने पवनरूपी पंखों में डाल कर समुद्र में दफ़ना देती है तथा मेघराज को पधारने के लिए आमन्त्रण देती है और उनके आगमन के पूर्व करने योग्य तैयारियां वह कर रखती हैं।

कच्चे फलों को पकाना—विविध प्रकार के फलों का खट्टापन, कड़ुआपन फीकापन आदि को अपनी गर्मी से दूर कर मधुरता उत्पन्न करती है। जिस प्रकार कि पक्षी अपने अंडों को पंखों में दबाकर सावधानी से पकाता है और विश्व की व्याकुलता दूर करने के लिए विश्व की सेवा करने के लिए पक्षी को जन्म देता है। क्योंकि पक्षियों के पंखों की हवा अनेक रोगों का नाश करती है। लक़वा के रोगियों के लिए कबुतर की हवा विशेष लाभप्रद है। इसी लिए "सौ दवा और एक हवा" वाली उक्ति बहुत प्रचलित है।

रुपया खर्च कर धर्मशाला बनवाती है, लेकिन उसमें अपने नाम का मान रूपी शिला सगज रूप शैतान रक्खा है। वह शैतान मुसाफिरों में शैतान बनाने की भावना पैदा करेगा और दूसरों को भी उत्तराधिकार के रूप में शैतानी भाव दिया जायगा।

कहाँ तो शरद् ऋतु की ओस बिंदुओं का एकान्त शान्त और घोर अंधेरी रात्रि में गुप्त और मूक सेवा करने का आदर्श? और कहाँ थोड़े दान में ऐसी शैतानी भावना खाली ही अपने वंशज के लिए भी उत्तराधिकार के रूप में शैतानी भाव रख कर अपना अहित करने के साथ अपने वंशज का भी अहित करने की भावना।

चीन के साहूकार—आपको कोई चीन का साहूकार कहे तो बुरा लगेगा कि मेरा अपमान किया। लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है। कुछ वर्षों पहिले एक राष्ट्रीय नेता रंगून में एक चीने की दुकान पर चन्दा लेने के लिये गये थे। तब वह चीनी व्यौपारी सीधा तिजोरी के पास गया और देने की रकम देने के बाद ही चन्दे की लिस्ट में अपना नाम लिखा। कारण पूछने पर उसने कहा कि "लिखाने के बाद जितनी देर रकम देने में लगती है उतना मेरे सर पर धर्म का ऋण रहता है। ऐसा ऋण रखने की हमारे धर्म शास्त्रों में सख्त मनाई है। तब आज भारत भूमि के बड़े बड़े धर्मार्थियों के घरों में वर्षों तक धर्मार्थ की रकम अनामत रूप से जमा पड़ी रहती है। उसीसे अपना व्यौपार करते हैं और अपने घर में रखते हैं। और यदि ब्याज देते हैं तो साहूकारी ब्याज से बहुत ही कम। व्यापारि की भांति बाकी धर्म की रकम

मरण शैय्या पर पड़े हुए मनुष्य को सान्त्वना देने के लिए और यमराज को रिश्वत देने के रूप में जाहिर की जाती है। रकम तो अपने घर ही में रहती है। भारतीय धार्मिक सस्थाओ की धर्म खाते के रकम की जैसी अव्यवस्था देखी जाती है वैसी तो शायद ही किसी अन्य देश में होगी। भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। भारतीय जनता आस्तिक कही जाती है। फिर भी पाश्चिमात्य नास्तिक मानी जाने वाली प्रजा के दान के आगे भारत के राजा महाराजाओं के दान भी लज्जित हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु—चौमासे के अपूर्ण रहे हुए कार्य को शर्दी ने पूर्ण किया और शर्दी का अपूर्ण कार्य गर्म ऋतु पूर्ण करती है। ग्रीष्म काल की प्रचण्ड गर्मी विश्व की गदगी को सुखाकर भस्म कर देती है। और कचरे को अपने पवनरूपी पंखों में डाल कर समुद्र में दफ़ना देती है तथा मेघराज को पधारने के लिए आमत्रण देती है और उनके आगमन के पूर्व करने योग्य तैयारियां वह कर रखती हैं।

कच्चे फलो का पकाना—विविध प्रकार के फलों का खट्टापन, कडुआपन फीकापन आदि को अपनी गर्मी से दूर कर मधुरता उत्पन्न करती है। जिस प्रकार कि पक्षी अपने अडों को पखों में दबाकर सावधानी से पकाता है और विश्व की व्याकुलता दूर करने के लिए विश्व की सेवा करने के लिए पक्षी को जन्म देता है। क्योंकि पक्षियों के परवों की हवा अनेक रोगों का नाश करती है। लक़वा के रोगियों के लिए कबुतर की हवा विशेष लाभप्रद है। इसी लिए "सौ दवा और एक हवा" वाली उक्ति बहुत प्रचलित है।

रुपया खर्च कर धर्मशाला बनवाती है, लेकिन उसमें अपने नाम का मान रूपी शिला लेख रूप शैतान रख रखा है। वह शैतान मुसाफिरों में शैतान बढ़ाने की भावना पैदा करेगा और दूसरों को भी उत्तराधिकार के रूप में शैतानी भाव देता जायगा।

कहाँ तो शरद् ऋतु की ओस बिंदुओं का एकान्त शान्त और घोर अंधेरी रात्रि में गुप्त और मूक सेवा करने का श्रेष्ठ आदर्श ? और कहाँ थोड़े दान में ऐसी शैतानी भावना वाले का अपने वंशज के लिए भी उत्तराधिकार के रूप में शैतानी दान रख कर अपना अहित करने के साथ अपने वंशज का भी अहित करने की भावना।

चीन के साहूकार—आपको कोई चीन का साहूकार कहे तो बुरा लगेगा कि मेरा अपमान किया। लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है। कुछ वर्षों पहिले एक राष्ट्रीय नेता रंगून में एक चीनी की दुकान पर चन्दा लेने के लिये गये थे। तब वह चीनी व्योपारी सीधा तिजोरी के पास गया और देने की रकम देने के बाद ही चंदे की लिस्ट में अपना नाम लिखा। कारण पूछने पर उसने कहा कि लिखाने के बाद जितनी देर रकम देने में लगती उतना मेरे सर पर कर्ज का बोझा रहता है। ऐसा कर्ज रखने की हमारे धर्म शास्त्रों में सख्त मनाई है। तब आज भारत भूमि के बड़े धर्मार्थियों के घरों में वर्षों तक धर्मादे की रकम अनामत रूप से जमा रहा करती है। उसीसे अपना व्योपार करते हैं और नफा घर में रखते हैं। और यदि ब्याज देते हैं तो साहूकारी ब्याज से बहुत ही कम। जाहिर की जाने वाली दान की रकम

मरण शैय्या पर पड़े हुए मनुष्य को सान्त्वना देने के लिए और यमराज को रिश्वत देने के रूप में जाहिर की जाती है। रकम तो अपने घर ही में रहती है। भारतीय धार्मिक सस्थाओं की धर्म खाते के रकम की जैसी अव्यवस्था देखी जाती है वैसी तो शायद ही किसी अन्य देश में होगी। भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। भारतीय जनता आस्तिक कही जाती है। फिर भी पाश्चिमात्य नास्तिक मानी जाने वाली प्रजा के दान के आगे भारत के राजा महाराजाओं के दान भी लज्जित हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु—चौमासे के अपूर्ण रहे हुए कार्य को शर्दी ने पूर्ण किया और शर्दी का अपूर्ण कार्य गर्म ऋतु पूर्ण करती है। ग्रीष्म काल की प्रचण्ड गर्मी विश्व की गदगी को सुखाकर भस्म कर देती है। और कचरे को अपने पवनरूपी पंखों में डाल कर समुद्र में दफ़ना देती है तथा मेघराज को पधारने के लिए आमत्रण देती है और उनके आगमन के पूर्व करने योग्य तैयारियां वह कर रखती हैं।

कच्चे फलों का पकाना—विविध प्रकार के फलों का खट्टापन, कड़ुआपन फीकापन आदि को अपनी गर्मी से दूर कर मधुरता उत्पन्न करती है। जिस प्रकार कि पक्षी अपने अडों को पंखों में दबाकर सावधानी से पकाता है और विश्व की व्याकुलता दूर करने के लिए विश्व की सेवा करने के लिए पक्षी को जन्म देता है। क्योंकि पक्षियों के परों की हवा अनेक रोगों का नाश करती है। लक़वा के रोगियों के लिए कबुतर की हवा विशेष लाभप्रद है। इसी लिए "सौ दवा और एक हवा" वाली उक्ति बहुत प्रचलित है।

मरण शैय्या पर पड़े हुए मनुष्य को सान्त्वना देने के लिए और यमराज को रिश्वत देने के रूप में जाहिर की जाती है। रकम तो अपने घर ही में रहती है। भारतीय धार्मिक सस्थाओं की धर्म खाते के रकम की जैसी अव्यवस्था देखी जाती है वैसी तो शायद ही किसी अन्य देश में होगी। भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। भारतीय जनता आस्तिक कही जाती है। फिर भी पाश्चिमात्य नास्तिक मानी जाने वाली प्रजा के दान के आगे भारत के राजा महाराजाओं के दान भी लज्जित हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु—चौमासे के अपूर्ण रहे हुए कार्य को शर्दी ने पूर्ण किया और शर्दी का अपूर्ण कार्य गर्म ऋतु पूर्ण करती है। ग्रीष्म काल की प्रचण्ड गर्मी विश्व की गदगी को सुखाकर भस्म कर देती है। और कचरे को अपने पवनरूपी पंखों में डाल कर समुद्र में दफना देती है तथा मेघराज को पधारने के लिए आमत्रण देती है और उनके आगमन के पूर्व करने योग्य तैयारिया वह कर रखती हैं।

कच्चे फलों का पकाना—विविध प्रकार के फलो का खट्टापन, कडुआपन फीकापन आदि को अपनी गर्मी से दूर कर मधुरता उत्पन्न करती है। जिस प्रकार कि पक्षी अपने अडों को पखों में दबाकर सावधानी से पकाता है और विश्व की व्याकुलता दूर करने के लिए विश्व की सेवा करने के लिए पक्षी को जन्म देता है। क्योंकि पक्षियों के पखों की हवा अनेक रोगों का नाश करती है। लकवा के रोगियों के लिए कबुतर की हवा विशेष लाभप्रद है। इसी लिए "सौ दवा और एक हवा" वाली उक्ति बहुत प्रचलित है।

प्रेम का प्रदर्शन—कच्चे आम खट्टे होते हैं। पकने के बाद वह मनुष्य को बहुत स्वादिष्ट और मधुर मालूम होते हैं। रविवार आदि दिनों में अपने स्नेहीजनों को आमंत्रण देकर प्रेम का प्रदर्शन करते हैं। यदि आम को गरमी ने न पकाया होता तो आप अपने स्नेही का स्वागत किस प्रकार कर सकते थे?

निंबोली भी मीठी—ग्रीष्म ऋतु आम को मीठा बना देती है, परन्तु निंबोली जो कि जहर जैसी होती है उसे भी वह मीठी बना देती है। और बच्चे प्रसन्नता पूर्वक उसे खाते हैं। तदुपरान्त वह अनेक रोगों को दूर करती है।

फल अपरिपक्व अवस्था में कच्चे होते हैं, परन्तु पकने के बाद तो निंबोली भी मीठी बन जाती है। तो अन्य फलों के मीठे पन के सम्बन्ध में किसको शंका हो सकती है?

ऋतु और अवस्था—मनुष्य की बाल्यावस्था तो चौमास के उगते हुए अंकुर के समान है। युवावस्था, जठराग्नि की प्रबलता के समान या धान के गीले दानों के सूखने और कठोर होने के समान उनाली की तरह है। वृद्धावस्था पौधों के सूखने के समान या कच्चे फलों के पकने पर मीठे होने के समान उष्ण ऋतुवत् है।

चौमासा और उनाली ऋतु से मनुष्य शिक्षा ग्रहण न कर सके ऐसा विचार कर उष्ण ऋतु में जिस प्रकार ऊपर कहने के समान ही फलों का कडुआपन और खट्टापन दूर होता है। उसी प्रकार मनुष्य में से भी कडुआपन और खट्टापन दूर होना चाहिये। और

उसमें पके हुए फल की तरह नम्रता, कोमलता और मधुरता उत्पन्न होनी चाहिये।

अन्तर का निरीक्षण कीजिये---आप सभी के मस्तक पर से अनेक शर्दी-गर्मी और चौमासे व्यतीत हो चुके, लेकिन यदि हृदय पर दृष्टिपात करेंगे तो मालूम होगा कि वह सदा से ही कौए की पख जैसा काला है। जिसे लाखों मण साबुन से धोया जावे तो भी सफ़ेद नहीं हो सकता। इसी प्रकार इतने संस्कार होने पर भी मानव-हृदय जैसे का तैसा ही कृष्ण-श्याम है। अथवा ज्यों-ज्यों पुराना होता जाता है, त्यों-त्यों उसका कडुआपन और साप का विष भी बढ़ता जाता है, उसी प्रकार मनुष्य में भी कटुता और विष बढ़ता हुआ प्रतीत होता है।

योग्यता---मनुष्य की पात्रता और योग्यता छिपी नहीं रह सकती। दिन में चाहे जैसे घनघोर बादलो से सूर्य की एक भी किरण न दिख पडे फिर भी वह तो दिन ही है। और रात्रि शरद् पूर्णिमा की चाँदनी से क्यों न उज्ज्वल हो फिर भी रात तो रात ही है। लाखों पूर्णिमा की रात्रि के प्रकाश से घनघोर बादलों से आच्छादित सूर्य का प्रकाश अधिक ही है।

जमीन पर थोड़ा पानी पडते ही अकुर स्फुरित्त हो जाता है, लेकिन पत्थर को बारोंही महिने भूमध्य सागर मे रक्खा जाय फिर भी उसमें अकुर नहीं स्फुरित हो सकता, बल्कि अकुर उठाने की योग्यता वाली उस पत्थर पर लगी हुई मिट्टी हट जायगी और वह अपनी जड़ (मूल) वृत्ति में और भी विशेप वृद्धि करेगा।

लकडा समुद्र में----लकड़े के सूर्य जैसे छोटे छोटे टुकड़े

कर उस करोड़ों योजन की गहराई वाले समुद्र के अंदर डाल दीजिये परन्तु वह जरासा टुकड़ा अपने शरीर पर रहे हुए करोड़ों टन पानी के वजन का भेदता हुआ क्षण भर ही में ऊपर को चढ़ आयगा। जब की पत्थर के टुकड़े को घिस कर मक्खी की पंख जैसा बारीक बना डालिये और उस हवाई जहाज के टुकड़े टुकड़े करने वाली तोप में डाल कर ऊँचे आकाश में उड़ा दीजिये लेकिन फिर भी वह उसी क्षण नीचे गिर जायगा। इसको स्वभाव तैरने का है जब कि पत्थर का स्वभाव डूबने या नीचे की ओर जाने का है।

भाग्य शाली एक ही बीज—एक ही वृक्ष का देव प्रतिवर्ष लाखों नहीं करोड़ों बीज उत्पन्न करता है। और उनमें से करोड़ों बीज मनुष्यों के पैर तले दब कर नष्ट हो जाते हैं। तब कोई एक ही पुण्यशाली बीज किसान द्वारा जमीन के गहरे खड्डे में गाड़ा जाता है। उस पर उसके शरीर से करोड़ों गुणा मिट्टी और पत्थर गिरता है। वह बीज पानी से भीगता है और उस सड़ जाता है, तब उसम योग्यता होने से जमीन के अगाध पड़ों को भेद कर अंकुर रूप से उत्पन्न होता है। और कुछ समय पश्चात् वही बीज अपने शरीर के साथ अनेक हाथी और सिंह को बंधा कर कैद कराता है। और वह उनका चौकीदार बनता है। जिस बीज को चींटी भी खींच कर ले जा सकती है। वही नन्हा बीज अपने आंगन पर हाथी और सिंह कैद कर सकता है।

आर्यभूमि को मनुष्य रूप फल—भारत आत्मा अपनी

योग्यता अनुसार विकास करता है। भारतभूमि कि जो आर्य भूमि है, शक्कर से भी विशेष मीठी है। उसके वनस्पति रूपी जो विविध प्रकार के फल हैं, वे कितने स्वादिष्ट और मधुर होते हैं ? तब मनुष्य रूप आर्य-भूमि के माननीय फल जगत के लिये कितने उपकारी होने चाहिये ?

ऋतुए अपना फ़र्ज अदा करती हैं। छोटे बडे स्थावर और जगम प्राणी भी अपना कर्त्तव्य बजाते हैं। केवल मानव, जिसे कि अपनी योग्यता और जवाबदारी का विशेष भान है, अपनी जिम्मेवारी और योग्यता को भूलता जाता है। मनुष्य में नित्य मानवता के बजाय पाशवता का प्रवेश तीव्रवेग से होरहा है।

प्रकृति ने विश्व के उपकार के लिए महान् प्राणी के आविष्कार के तौर पर मनुष्य को जन्म दिया है। इससे बढ कर आविष्कार करने के लिए प्रकृति असमर्थ है।

मानव यंत्र—सबसे अंतिम आविष्कार के रूप में मानव अवतार है। आज के वैज्ञानिक आविष्कार के जमाने में मनुष्य भी जडयत्रवत् बाँदरा, कुरला और मेनचेस्टर के कारखानों की भाति शून्य दशा में पाप प्रवृत्ति करता है। कसाई खाने में गौएँ कटेंगी और कसाई का प्यारा बालक भी भूल से मशीन के नीचे आजाय तो उसे भी काट देंगे। और उसके शरीर का लोहू माँस चमडी आदि को दूर कर उसे भी दूसरे ढेर में मिला देंगे। मानव ससार की भावना भी ऐसी ही जडयत्रवत् क्रूर प्रतीत होती है।

महा रावण—रावण के दश सिर थे। इस लिए वह

चोरों की अपेक्षा दसगुणी जगह रोकता होगा या उतना अधिक भोजन करता होगा। लेकिन आज के वैज्ञानिक युग ने इस रावण को भी लज्जित कर दिया है। मानव द्वारा निर्मित १००) की मशीन भी रावण की अपेक्षा विशेष हृष्ट पुष्ट बली और मुफ्तखोर है।

लाखों की सम्पत्ति लगा कर एक मिल खड़ी की जाती है, उसमें हजारों मजदूर काम करते हैं। उन मनुष्यों को एक एक मशीन दी जाती है जो कि एक मनुष्य की अपेक्षा १०० गुणा विशेष कार्य करती है। इस लिए यह स्पष्ट है, कि एक मशीन तीन सौ मनुष्यों की आजीविका छीन लेती है। एक मिल में कम से कम २००० मनुष्य काम करते हैं। और मशीन की सहायता से एक एक मजदूर तीन-तीन सौ मनुष्य का काम कर लेता है। इस प्रकार एक ही मिल ६ लाख मनुष्य का कार्य कर लेती है। उस ६ लाख गुणी मजदूरी का नफा केवल एक ही धनवान मिल मालिक को मिलता है। लेकिन धनवान को मालामाल कर देने वाले उन मजदूरों को सुख से सोने का खाने पीने और आराम करने का भी समय नहीं मिलता। न पेट भर अन्न, शरीर रक्षा के लिए पूर्ण वस्त्र और मकान ही मिलते हैं। रावण दस सिर का ही उपभोग करता था। परन्तु आधुनिक पूंजीवाद का पुजारी, जैसा कि उपरोक्त अंकों से सिद्ध होता है, रावण के दस सिर से भी ६० हजार गुणा विशेष रक्त चूसता है फिर भी वह संतुष्ट नहीं हो पाता। उनकी दृष्टि दिन रात मजूरों के वेतन में कटौती करने पर ही लगी रहती है। और वे उस धन द्वारा नाटक, सिनेमा गाड़ी घोड़े और विलायत के भोग विलास

का उपभोग करते हैं। इससे विशेष अमानुषिकता और क्या हो सकती है।

उनके हृदय रूपी जमीन पर दया का एक अंकुर भी पैदा हुआ होता तो वे अपने जीवन का विचार करते और पाप के लिये पश्चताप भी करते। लेकिन मानवता के अध पतन मे तो प्रति दिन अधिकता ही प्रतीत होती है।

स्वार्थान्धता—वर्तमान मे चरबी वाले वस्त्रों के लिये दूध देने वाले विश्वोपकारक पशु काटे जाते हैं। रेशम के लिये कीडों का विश्वासघात कर उनको उबलते हुये पानी में डाल दिये जाते हैं। मोतियों के लिये मछलियों को इमली की फली की तरह चीर कर उनमें से मोती निकाले जाते हैं, हाथीदाँत के लिये माया जाल रच कर हाथी को मारा जाता है। इस प्रकार मनुष्य अपने सुख और स्वार्थ के लिये पाप करने में जरा भी सकोच नहीं करते।

मुलायम ऊनी वस्त्रों के लिये पजाब मे भेड़ों के कच्चे गर्भ गिराकर उनके बाल काम में लाये जाते हैं। इन्जक्शन के प्रयोग की अजमाइस के लिये विदेश में बदर भेजे जाते हैं। जहरी दवाइया तैयार करने के लिये जहरी सर्प भी भेजे जाते हैं। इस प्रकार पाप अपनी सीमा को उलाघ चुका है।

मनुष्य की खोपड़ी का प्याला—यदि इस पवित्र भारत भूमि में विज्ञान विशारद भगवान ऋषभदेव का जन्म हुआ होता और उन्होंने मिट्टी और धातु के बर्तनो का आविष्कार न किया होता तो आधुनिक यन्त्रवाद का पुजारी मानव, मानव

को भी मामूली समझ कर उसके मस्तक को फोड़ कर, खोपड़ी का बरतन के तौर पर उपयोग करता । यदि पशु के चमड़े का आविष्कार न हुआ होता तो वह मनुष्य की चमड़ी के जूते बनवाता । लेकिन मनुष्य की चमड़ी के जूते बन नहीं सकते हैं, इसी लिए गरीब वर्गों पर इस प्रकार का जुल्म नहीं किया गया है। बरतनों के आविष्कार के कारण ही मनुष्य, मनुष्य मस्तक की खोपड़ी का उपयोग करने की निर्दयता के पाप से बच पाया है ।

पूंजी वाद की उत्पत्ति—अपने घर पर ही पैसा ढालने की और नोट छापने की आज्ञा सरकार ने मनुष्य को नहीं दी है इसलिए विश्व का धन हमारे ही पास किस प्रकार आजाये, इसी स्वार्थ जन्य भावना के लिए मनुष्य ने पूंजीवाद को जन्म दिया। जिसका अर्थ यही है कि अधिक मनुष्यों की मजूरी श्रीमता से एक ही मनुष्य को मिल सके ।

राजा अपने विलास के लिए विविध प्रकार के कर प्रजा पर डालते हैं जिससे प्रजा गरीब हो जाती है । राजा प्रजा को नौकर की भांति रखते हैं । युद्ध में लाखों सैनिक लड़ने के लिए जाते हैं और उनमें से अनेकों वहीं काम आजाते हैं, लेकिन युद्ध की विजय का ताज केवल एक राजा के मस्तक पर ही चढ़ता है । श्रीमन्तों ने विविध प्रकार के व्याज और व्यौपार से गरीब वर्गों को लूट लिया है । उन्हें बिलकुल ही निर्धन बना दिया है । उन निराधार निर्धनों को श्रीमन्तों ने पूंजीवाद द्वारा विश्व का धन उनके को लड़ाई के काम मे लगा दिया है । इस युद्ध में उनका स्वार्थ

धन भी लूट लिया गया। सैनिक युद्ध मे तोप और बन्दूक के
शिकार बनते हैं। परन्तु इस यन्त्रवाद के युद्ध में मनुष्य दु खी होकर
सड सड़ कर मरते हैं और यन्त्रवाद के पुजारी उसकी लूट को श्री
मन्ताई समझ कर मौज मनाते हैं।

पापी कौन ?—भर समुद्र मे एक जहाज जा रहा है, उसमें
एक व्यक्ति ने सोने के स्थान के अभाव से एक मनुष्य को समुद्र
में फेंक दिया और वह सुख पूर्वक सोया। तब एक दूसरा मनुष्य
एक कीले की आवश्यकता के कारण जहाज में से एक कीला निका-
लने का प्रयत्न कर रहा है। इन दोनों में विशेष पापी कौन ? सोने
के लिए मनुष्य को समुद्र में फेंकने वाला केवल एक ही मनुष्य
का खून करता है, जबकि कीले के लिए जहाज के पटियों को अलग
करने वाला सैकड़ों मनुष्यों के विनाश का प्रयत्न कर रहा है।
इसी प्रकार आधुनिक यन्त्रवादी सभ्य समाज सीधे तरीके से
मनुष्य का खून न करता हुआ भी यंत्रवाद को जन्म देकर सैकड़ों
मनुष्यों की आजीविका छीन कर उन्हें लूटकर, अर्धनग्न क्षुधा
पीडित स्थिति में डालकर बुरी हालत में मारने की मशीन तैयार
करता है।

चोर और साहूकार—आज के लाखों साहूकार
शाहीवाद को एक ओर रखिये और दूसरी ओर पूर्वकालीन चोरों
के चोरी वाद को। तो चोरों के चोरीवाद में भी जितनी प्रमाणिकता,
नीति, न्याय और दया का अनुभव होगा, उतना आज के साहू-
कारों में शायद ही होगा।

प्रभव चोर—प्रभव नाम का चोर पाच सौ चोरों के

साथ राजगृही नगरी में चोरों को लिये आया है। चोरी करने से पहले वह विचार करता है, कि आज चोरी कहाँ की जाय ? किसी के घड़े में से जल की चोरी करने की अपेक्षा सरोवर में से ही पानी भर लेना उत्तमोत्तम है। इस प्रकार निर्धन या कंजूस श्रीमन्त के घर चोरी करने से विशेष दुःख न होगा। इसलिए चोरी तो उनके यहाँ की जाय, कि जिन्हें समुद्र में से पानी पीने की भांति मन में चोरी होने का विचार मात्र भी न हो। इस प्रकार इन विचारों के साथ वह चोरी करने के लिए नगर में प्रवेश करता है और जम्बूजी के यहाँ जिनके पास अपार धन सम्पत्ति है, आवश्यक धन उठाता है। जम्बूजी को मालूम पड़ता है, चोर भयभीत होते हैं। तब जम्बूजी उन्हें आश्वासनपूर्वक हितोपदेश देते हैं। उनका उपदेश सुनते ही पांच सौ चोर अपने चोरी के धंधे को छोड़ देते हैं और अपना जीवन पवित्र प्रवृत्ति में व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार आपने उपरोक्त चोर की कथा पढ़ली ? और आज के व्यापारी वर्ग की क्या भावना रहती है। वह आपसे छिपी नहीं।

पाप किसमें है—किसी भी कार्य में पाप नहीं है, यदि वे नीति, न्याय और मर्यादापूर्वक किए जायँ। वैराग्यमय आत्मा विश्व का जितना हित कर सकता है उतना ही एक व्यापारी भी कर सकता है। जो साधुता साधु जीवन में रह सकता है उसे एक साहूकार अपने रोजी धन्धे में भी रख सकता है। जिस व्यापारी के हृदय में ग्राहकों के हित की ही भावना होती है, वह अपने नौकरों को नौकर न मानता हुआ पुत्र या बन्धु ही माने। और उनके साथ वैसा ही बर्ताव करे तो वह व्यापारी अपने व्यवसाय में रहकर भी

आत्म साधन कर सकता है और विश्व के लिये उपयोगी जीवन बिता सकता है।

सब पापों का मूल—मनुष्य में सहिष्णुता का अभाव है, उसके स्थान पर केवल स्वार्थ भावना ने प्रवेश किया। जब आप स्वर और व्यंजन सीख रहे थे, तभी आपको सहिष्णुता का पाठ सिखाया गया है, लेकिन आप उस पाठ को भूल गये हैं। तालव्य मुर्द्धन्य और दन्त्य श, ष, स, के उसी प्रकार व्यजन मे तीन श, ष, स, सिखाने के बाद ह, लगाने से 'सह' सहन करो' साहिष्णु बनो ऐसा भावार्थ निकलता है।

शब्द का एक ही तीर—आप सब आज शांति रस का पाठ पढने आये हैं। यदि कोई शराबी आकर आपको धर्म का ठोंगी कहे तो आपको कितना दु ख होगा? उसके शब्द का एक ही ककर आपके शांति रस से भरे हुए समुद्र को हिला देता है। समता का पाठ पढते हुए अनेक वर्ष हुए, अनेक वर्षों के सीखे हुए पाठ को एक ही कंकर भुला देता है इसका मुख्य कारण सहिष्णुता का अभाव है।

पड़ोस धर्म—(Neighbour hood) फर्ज करो कि आपकी दुकान में टेलीफोन है, पड़ोस की दुकान वाला उसका उपयोग करने के लिये आता है, तो आप उसे स्पष्ट शब्दों में इन्कार करते हैं। एक पडोसी या दस पड़ोसी भी उसका उपयोग करें तो भी आपको एक पाई विशेष नहीं देनी पड़ती। आपके पड़ोसी या स्व-धर्मी बधु को २०० या २००० का लाभ हो तो आपके नेत्र उसे नहीं देख सकते तो कहिये कि वे आपके नेत्र कैसे है? टेलीफोन

कम्पनी को लाभ हो तो क्या आपको उसमें खुशहाली मिलेगी ? लेकिन अपनी नाक कटा कर भी अगर दूसरों को अपशकुन हो सकता है तो वैसा ही करने की आपकी मनोवृत्ति रहती है। गाँव के व्यक्ति भाई के सुख को न देख सकने के कारण एक भाई ने अपने पुत्र को सिंह की गुफा के सामने रख दिया। ताकि सिंह मनुष्य के खून का प्यासा बन कर बार बार गाँव में आकर ग्राम वासियों को त्रास दें ऐसी तुच्छ मनोवृत्ति प्रतिक्षण मानव समाज में अनुभव होती आ रही है।

मनुष्य यदि सहिष्णु बन, अपनी आवश्यकताओं को घटा कर सादगी पूर्ण अपना जीवन व्यतीत करे तो वह अपना जीवन विज्ञान के नियमानुसार ऋतु और फूलों की तरह उपयोगी और सुन्दर बना सकता है।

आशा है कि बन्धुओं द्वारा भी यह आदर्श शिक्षा हृदय में धारण कर हमारा और आपका श्रम सार्थक करेंगे।

—)—

१३—सम्यक् ज्ञान का साम्राज्य
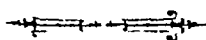
करोड़ों दीपक और एक ही सूर्य—सूर्योदय होने से पूर्व अंधकार को दूर करने के लिए बिजली, गैस, ग्यास, तेल और एरंडी के करोड़ों दीपक जलते रहते हैं। लेकिन सूर्योदय होते ही सब दीपक अस्त होने लगते हैं। करोड़ों दीपकों में जो शक्ति है उससे अनंत गुनी विशेष सूर्य के प्रकाश में है। सारे विश्व को, पर्वतों को और वृक्षों के एक एक पत्ते पर इलेकट्रीक दीपक लगा दीजिये, लेकिन सूर्य के प्रकाश के आगे अनंत दीपकों का प्रकाश जुगनू के प्रकाश से विशेष नहीं। उसी प्रकार समाज सुधार के लिए अनेक संस्थाएँ, सभाएँ खोली जाती हैं। नित्य नये कानून बनाये जाते हैं और सुधार के प्रस्ताव पास किये जाते हैं, लेकिन वे सभी सुधार बिजली के दीपकों के समान ही हैं। विश्व में जब तक सम्यक् ज्ञान का सूर्य उदय नहीं हुआ है तब तक भारत की दरिद्रता, अज्ञानता, फूट, स्वार्थ वृत्ति, भोग विलास, ऐश-आराम और देश के लिये भारभूत खर्चे में सुधार होने का नहीं।

सुई की नोंक जितना प्रकाश—मनुष्य का शरीर अंधेरी कुटिया के समान है। उसमें सब जगह अंधकार ही है। केवल सुई की नोंक जितने आंखों के दो छिद्र जितनी आंखें खुली हैं। इसी से मनुष्य अपना सांसारिक व्यवहार चला सकता है। बादलों के कारण सूर्य का प्रकाश ढक जाता है। उसी प्रकार

आत्मज्ञान का प्रकाश शरीरादि कर्मों द्वारा दब गया है। सौभाग्य से आंखों के दो छिद्र द्वारा प्रकाश मिल रहा है। कर्मों का आवरण दूर होने से आत्मा अपने मूल स्वरूप ज्ञानमय, प्रकाशमय बन सकता है।

महाभगवान कौन ?——आंखों द्वारा मिलने वाला प्रकाश तो सामान्य है लेकिन उससे आत्मा का प्रकाश अनंत विशेष है उसे सम्यक ज्ञान कहा जाता है। एक श्रीमन्त का हृदय गरीबों का देखने पर भी पिघलता नहीं। उसे सहायता नहीं देता। वह नेत्र होने पर भी अन्धा है और लक्ष्मी होने पर भी निर्धन है। जब कि एक धर्मभिखारी भी यदि गरीब के दुःख को सुन कर अपनी ओर से यथाशक्ति साधन देने को तैयार होता है तो वह धनवान ज्ञानवान, और भव्य बनता है।

धर्म गुरुओं का स्थान फोनोग्राफ ग्रहण करेंगे—व्यावहारिक शिक्षण के लिए जितना लक्ष दिया जाता है उससे विशेष धार्मिक शिक्षण के लिए दिया जाना चाहिये। धार्मिक ज्ञान ही के अभाव के कारण भारत से आर्यत्व जा रहा है। और अनार्य साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। प्रभु स्तुति के स्तोत्र और स्तवना को मानव भूल गया तो इसी ग्रामोफोन के रेकर्डों का स्तोत्र और धार्मिक ज्ञान के लिए उपयोग होगा और धर्म स्थानों में पाट और सिंहासनों पर धर्म गुरुओं के स्थान पर फोनोग्राफ बैठेंगे और उपदेश सुनायेंगे तथा प्रतिक्रमणादि आवश्यक क्रियाएं भी करायेंगे। यदि मानव समाज जल्दी न चेतगा तो उसकी पराधीनता की सीमा भी न रहेगी। और ज्ञान

पान आदि के लिये जिस प्रकार जड़ पदार्थों की शरण लेनी पड़ती है। उसी प्रकार धार्मिक क्रियाओं के लिये फोनोग्राफ आदि जड़ विज्ञान की शरण लेनी होगी।

२१००० वर्षों तक शासन—ढाई हजार वर्ष में भारत में अनेक राजा होगये। राजपूत, मुगल, और मराठे भी हो गये। लेकिन आज भारत को संभालने के लिये भारतवासियों में से किसी एक की शक्ति न होने से परदेशी अंग्रेज भारत की रक्षा और शासन कर रहे हैं। तब प्रभुवीर का शासन ढाई हजार वर्षों से अखंडरूप से चला आ रहा है। और अभी साढ़े अठारह हजार वर्ष तक चलता रहेगा। प्रभु महावीर के शासन की नींव इतनी गहरी है। इसका कारण ज्ञान की प्रभावना ही है। महावीर के शासन में राजा सरीखा शस्त्रधारी बलवान सैन्य और सेनाधिपति न होने पर भी केवल अपने अनुयायियों के लिये ज्ञान का अमोघ साधन प्रभुवीर ने छोड़ा है। जिसके प्रताप से उनका शासन निराबाध रूप से चल रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा।

शान्ति का उपाय—सिर बिना का शरीर जितना भयंकर, घृणापात्र और दुर्गन्धमय प्रतीत होता है। उससे विशेष सामाजिक जीवन की व्यवस्था ज्ञान के अभाव से प्रतीत होती है। देश, समाज, ज्ञाती और कौटुम्बिक क्लेशो का मूल कारण केवल सम्यग्ज्ञान का अभाव ही है। मानव समाज जाति और देश के प्रति अपना कर्त्तव्य समझे तो विश्व मे इस समय जिस अशान्ति का अनुभव होता है उतनी ही शान्ति का अनुभव हो।

विष भी अमृत—वैद्य, सोमल, पारा आदि विषैले पदार्थों का मिश्रण कर उन तत्वों को बाधक के बजाय मानव जीवन के लिये साधक बनाता है। इसी प्रकार यदि हम समाज में सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हो तो अशान्ति और विषम प्रसंगों को मानव शान्ति और सुख रूप में परिवर्तन कर सकता है।

महाश्वान की लूट—अमानवता के वश होकर मनुष्य महापाप करता है। अपने तुच्छ स्वार्थों के कारण समाज को शोषक मंत्रचार का शरण लेकर हजारों अनाथ और विधवाओं के मुँह से रोटी का टुकड़ा महाश्वान की तरह छीनकर सिर्फ लूटी से अपना पापी पेट भरते हैं।

स्वपरबाधक और घातक—प्रकाश के बिना वे जंगली पौधे भी मुरझा जाते हैं। वे अपनी प्रगति नहीं कर सकते और न विश्व के लिए साधकभूत बन सकते हैं। साथ ही वे अपने आसपास की जमीन का मल चूस कर अन्य पौधों को भी बढ़ने नहीं देते। इसी प्रकार ज्ञान रूप प्रकाशहीन मनुष्य सार्वजन भावना से अपनी प्रगति नहीं कर सकता। बल्कि समाज के भारभूत जीवन को व्यतीत करता है।

ज्ञानाग्नि का प्रकाश—ज्ञान अग्नि के समान है। वह अपथ्य को पथ्य बनाती है और साथ ही अंधकार का नाश कर प्रकाश देती है। इसी प्रकार ज्ञान भी सब प्रकार के प्रतिकूल संयोगों को सहन करना सिखाता है। विष को विराम नाश किस

प्रकार ही वही उसका ध्येय रहता है और अनेक अज्ञानियों का ज्ञान के सुपथ पर प्रयाण कराता है।

मानव भूमि ही देवभूमि—एक पांच वर्ष का छोटा बालक हजारों अध मनुष्यों को खड्डे या कुएँ में गिरते हुए कुपथ पर जाते हुए बचा सकता है तो जब सारी ही प्रजा में ज्ञान, प्रेम, सहानुभूति, परमार्थ और सेवामय वातावरण फैल जाय तब वह भूमि मानव भूमि मिटकर स्वर्गीय भूमि बन जाय और इस भूमि के मानव देव-दानवों के पूजनीय और प्राणप्रिय हो जायें।

महान् क्रूर कौन?—बाघ, रींछ, सिंह, सूर्य, आदि क्रूर प्राणी भी बिना किसी के सताये जिस प्रकार हमला कर देते हैं और मार खाते हैं। इसी प्रकार ज्ञानहीन मानव में क्रूरता का जन्म होता है जिससे क्रूरता में मात्र बुद्धि की वृद्धि हो जाने से सिंह, सर्प, रींछ, बाघ आदि क्रूर प्राणी भी लज्जित हों ऐसी क्रूरता का मनुष्य में भी अनुभव किया जाता है। सिंह वन का राजा है और चाहे तो अपनी गुफा रूपी तिजोरी में हजारों हिरण और खरगोश जैसे पशुओं को एकत्रित कर सकता है। लेकिन उसमें क्रूरता होने पर भी संतोषवृत्ति है। एक दिन की खुराक मिलने के बाद वह दूसरे दिन की चिन्ता नहीं करता। और जगल के प्राणियों को नहीं सताता। गतवर्ष चतुर्मास के लिए उदयपुर की ओर विहार करते हुए मुनि श्री विद्या विजयजी को रास्ते में शेर मिला। वह चार ही हाथ दूर बैठा हुआ था। मुनिराज भयभीत हुए। मगर उस शेर ने अपनी शान्ति भग नहीं की तब मुनिराज

ने विचारा कि "शेर पेट भरकर बैठा हुआ है नहीं तो मेरा आहार कर लेता" भोजन के बाद शरीर शास्त्र के ज्ञाता डाक्टर को रस वाले पदार्थ खाने के लिए आमन्त्रण दिया जावे तो वह अपना स्वास्थ्य का भान भूलकर भी रसास्वादन के लिए वशीभूत हो, उस वस्तु का उपयोग करेगा। जब कि शेर जैसे क्रूर प्राणी भी हाथ में आये हुए मानव भक्ष को छोड़कर अपनी उदारता बतलाता है और मानव समाज को भी उदाहरण का पाठ पढ़ाता है। उपरोक्त प्राणियों में एक दिन की भूख जितनी ही लालसा है पर यदि मानव समाज के लिए विचारेंगे तो ज्ञान पड़ेगा कि मनुष्य के पास इतना धन है कि उसकी पीढ़ी दर पीढ़ी भी बैठी २ खाती रहे फिर भी खतम न हो। ऐसा होते हुए भी वह प्रतिदिन पाप अपच करता हुआ नवीन धन का उपार्जन करता है। यदि मनुष्य के सिंह या बाघ जितनी शक्ति और साधन हो तो आज विश्व में थोड़े ही मनुष्य जीवित होते और समस्त विश्व का नाश होगया होता। मानव यंत्रवाद की शरण लेकर क्रूरता का प्रदर्शन करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करता। लेकिन दयावान प्रकृति करोड़ों मनुष्यों की रक्षा के लिए क्रूर प्राणियों को आकाश जितना ऊंचा उठाकर फिर नीचे गिरा उन्हें मार डालती है जिससे क्रूरता का अन्त हो जाता है और गरीब सुख पूर्वक रोटी खा सकते हैं। आज यन्त्रवाद का पूरा साम्राज्य छाया हुआ है। पाँच या दस हजार रुपया हो तो ब्याज पच्चीस या पचास तक आ सकता है। और इस ब्याज से उस व्यक्ति की सात पीढ़ियाँ सुख पूर्वक जीवन निर्वाह कर सकती हैं। वह रकम तो स्थायी रहती है। लेकिन मनुष्य का सन्तोष न होने

से लाखों और करोड़ों एकत्र करने के लिए क्रूरता पूर्ण रोजगार करते हैं। और इतने से भी सन्तुष्ट न हो कर हजारों गुणी शीघ्रता वाले यन्त्रों को चला कर अपने स्वभाव और शक्ति से हजारों गुणो से भी अधिक क्रूरता का प्रचार करते हैं।

प्रो० मेक्स मूलर और अन्य जर्मन प्रोफेसर—
भारत की अज्ञानता और स्वार्थांधता को दूर करने के लिये पूर्वज ज्ञान की सम्पत्ति छोड़ गये हैं। लेकिन स्वार्थान्धता के कारण मानव समाज में विशेष अन्धकार छाया हुआ होने से वे अपनी सम्पत्ति को सभालने के लिए भी भाग्यशाली न हुए। लेकिन सद्-भाग्य से प्रो० मेक्स मूलर ने चार वेदों का, पच्चीस वर्षो के महा परिश्रम से सशोधन किया। बीस वर्ष उसे छपाने में लग गये और उसके पीछे नौ लाख रुपया खर्च हुआ। तदुपरान्त जैन शास्त्र भी जर्मन प्रोफेसर ने सुधारे हैं। भारतीय साहित्य भारत के सन्तानों के लिए न होने के समान ही है। पश्चिम के विद्वान ही उसका उद्धार करते हैं। यदि पाश्चिमात्य विद्वानों ने भारत के समक्ष उनका तत्त्वज्ञान न रक्खा होता तो आज भारत किस स्थिति में होता इस बात का विचार करने पर सहज ही समझा जा सकता है। अपनी क्रूरता और अज्ञानता के विनाश के लिए मनुष्यों के पास महान् साहित्य है, धर्मोपदेशक हैं फिर भी उनकी क्रूरता की कमी दृष्टिगोचर नहीं होती। यदि उनका जीवन पशु-वत् विवेक शून्य होता तो आज मानवी, दानव और राक्षस समझा जाता। मानव ससार में से बाह्याडम्बरमय सभ्यता दूर कर दी जावे तो मानव को मानव रूप मे शायद ही पहचाना जा सके।

आकाश में उड़ने वाला गीध पक्षी—गीध पक्षी चाहे जितना आकाश में ऊँचा उड़े फिर भी उसकी दृष्टि तो जमीन पर पड़े हुए सड़े मांस के टुकड़े पर ही होती है। इसी प्रकार ज्ञान विहीन मनुष्य को चाहे जैसे शुभ संयोगों में रख जाये फिर भी उसकी दृष्टि तो अज्ञानजन्य विषयवर्धक विरुद्ध भावनाओं में ही रहती है।

आत्म-रक्षक सरल समझ—जिसके पैर में फूट ए उस मार्ग में कोई नहीं सता सकते इसी प्रकार जिसमें तीक्ष्ण समझ शक्ति है वह कैसे प्रलोभनो में फसता नहीं और अपना पतन नहीं कर सकता।

दीपक और पतंगियों का प्रेम—दीपक को देखने के बाद पतंगिया कभी भी अन्धकार में नहीं जायगा। उसे प्राणान्त कष्टों को सहन करना मंजूर होगा परन्तु अन्धकार को पसंद न करेगा। यदि मानव समाज को ऐसी लगन ऐसा प्रेम ज्ञान के लिए होता तो वह प्राण जाने पर भी अज्ञान के अन्धकार मय पथ पर पैर नहीं रख सकता।

ज्ञानी आकाश दीप के समान है—अज्ञानान्धकार में भटकते हुए जीवों के लिए ज्ञानी का जीवन आकाश दीप समान है। जिस प्रकार आकाशदीप समुद्र में भटकते और डूबते हुये जहाजों को और मुसाफिरों को बचा लेता है इसी प्रकार ज्ञानी भी भटके कुमार्गगामी मनुष्यों की पथप्रदर्शक बन कर उन्हें सत्पथ पर लगाया करते हैं। जिसस ज्ञान के प्रताप से मानव प्राणी भी, देव समान अपना जीवन निर्माणकारक व्यतीत कर

सकता है और उसके अभाव में पशुवत स्वार्थी पेटू श्वान की तरह, व्यतीत करता है ।

भाग्यशाली कौन ?—प्राचीन महापुरुषों ने वनों में, जङ्गलों में और पर्वतों की गुफाओं में और शिखरों पर ध्यानस्थ होकर ज्ञान रूपी खजाना प्राप्त किया । उस अगम्य ज्ञान को हम समझ सकें वैसा सरल बना दिया । यदि उन महा पुरुषों की यह सम्पत्ति हमें प्राप्त न हुई होती तो सचमुच ही पशु संसार से भी मानव संसार अधिक क्रूर, घातक, जङ्गली और हिंसक होता । मानव संसार में यदि कुछ सुन्दरता अच्छापन है तो वह प्राचीन पुरुषों के ज्ञानरूप सम्पत्ति की बदौलत ही । उसी का यह प्रताप है और उसी को ही इसका श्रेय है । आज पैदा हुआ बालक ऐडीसन जैसे वैज्ञानिकों से भी विशेष भाग्यशाली है । विज्ञान का लाभ सैकड़ों वैज्ञानिकों से भी आज के बालक को विशेष मिल सकता है । इसी प्रकार हम भी विशेष भाग्यशाली हैं कि प्राचीन ऋषि मुनियों को जो तत्व जङ्गलों में, वनों में और पर्वत कन्दराओं में घोर तपस्या करने पर भी न प्राप्त हुआ वह अपूर्व तत्वज्ञान आज हमें दो आने की छोटी सी पुस्तिका में ही मिल रहा है । और उस पुस्तक को मनुष्य लाखों बार पढ़ सकता है और जीवन में भी उतार सकता है । इससे विशेष भाग्यशाली भी अन्य कोई हो सकता है ? ज्ञानी की सहायता हमें न मिली होती तो करोड़ों बार मानव-अवतार धारण करने पर भी हम नौ वर्ष के बालक जितनी भी प्रगति न कर पाये होते । अपने आपको भाग्यशाली समझ कर जीवन की सार्थकता के लिये घर-घर ज्ञान की प्याऊ

खोल दीजिये और ज्ञान ज्योति जला कर अपने आत्मा के अपने आंगन को शोभित कीजिये।

करोड़ों वर्षों की अन्धकार मय गुफा या कुटिया का अन्धकार एक ही छोटा सा दीपक दूर कर सकता है। इसी प्रकार केवल सच्चा ज्ञान भी अज्ञान रूपी द्वेष कषाय, निन्दा, ईर्षा, लोभ, असन्तोष आदि शोषण वृत्तियां नाश कर सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य स्थापित करता है।

१४—पर्युषण पर्व और अहिंसा

दिवाली में धन की पूजा होती है और धन का धुआ फूँका जाता है, क्या यही स्थिति धार्मिक पर्वों की नहीं ? धार्मिक पर्वों में पापमय विलासी वस्त्र और हिंसक दूध शोभा दे सकता है ?

पर्यूषण पर्व में महात्माजी पधारें तो ? दो आंसू गिरावे।

दस जैन मिल करके भी यदि एक पशु का पालन करें तो भी दस हजार को अभयदान।

धार्मिक पर्व तो कसाई और शिकारियों के लिए कमाई की सीझन (मौसिम) होता है।

आणदजी कल्याणजी की पेढी को भावनगर का आदर्श।

परीक्षा और पर्युषण—विद्यार्थी के लिए १२ मास के अभ्यास का विशेष रूप से निरीक्षण उसका नाम परीक्षा। परीक्षक चाहे जैसे कठिन प्रश्न पूछे फिर भी उनका उत्तर शांत और प्रसन्न चित्त से देने के लिए विद्यार्थी तैयार रहता है और शत प्रति शत नम्बर प्राप्त करना ही उनका ध्येय होता है। उसी प्रकार विशेष प्रकार की आत्मिक उपासना करने का नाम पर्युषण। इन दिनों में हमें हमारा आंतरिक निरीक्षण और परीक्षण विशेष रूप से करने का होता है। जिस प्रकार दिवाली के दिनों में धन के लाभ हानि का हिसाब मिलाते हैं उसी प्रकार पर्यूषण अर्थात् भाव दिवाली में भी आत्मिक धन की लाभ हानि के हिसाब का मिलान करना चाहिए।

धन की पूजा और धन का धुंआ फूंकना— दिवाली का पर्व लौकिक है जब कि पर्युषण पर्व अलौकिक। दिवाली में एक ओर तो पूजा होती है दूसरी ओर आतशबाजी छोड़कर धन का धुंआ फूंक जाता है। क्या इसी प्रकार का पागलपन इन धार्मिक पर्वों में दृष्टिगोचर नहीं होता?

धार्मिक पर्व या विलास पर्व—दिवाली के दिनों में लौकिक पर्वोचित विलासी वस्त्राभूषण पहिने जाते हैं वैसे ही या उससे भी अधिक विलासमय वस्त्र इस अलौकिक पर्व में भी मानव समुदाय के शरीर पर धारण किये हुए दिखाई पड़ते हैं जिससे ये अलौकिक वैराग्य वर्धक पर्व भी विलास वर्धक और विकारी बनने लगा है।

पर्व में कैसे वस्त्र शोभा दे सकते हैं?—धार्मिक पर्व के दिनों में पर्व में शोभित हों वैसे सादे और शुद्ध अहिंसक वस्त्र मनुष्यों को धारण करना चाहिए उसके बदले में चरबी वाले और अश्लील वस्त्र स्त्री पुरुष समाज के शरीर पर दिख पड़ते हैं इससे विशेष आश्चर्य और क्या होगा?

पर्व के दिन पापी वस्त्र धारण किये जा सकते हैं?—इस पर्व के दिनों में छोटे-छोटे बच्चे भी उपवास और एकाशन आदि तपश्चर्या करते हैं रात्रिभोजन और हरियाली का त्याग करते हैं। धर्म के दिनों में उपवास और लीलोत्री न खाने का स्मरण रहता है परन्तु धाम पर्व के दिन चरबी वाले तथा रेशम के पापमय वस्त्रों का स्पर्श भी नहीं हो सकता तो पहिने तो जाही कैसे सकते हैं? ऐसा ख्याल तो शायद ही

किसी को रहता हो। चरबीवाले वस्त्रों के लिए भारत मे प्रति दिन हजारों दूध देने वाले पशुओं का बलिदान होता है। ये बातें तो विश्व विख्यात हैं अत विशेप स्पष्ट समझाने की आवश्यकता ही नहीं।

पर्व की मर्यादा बनाए रक्खो—ऐसे चरबी तथा रेशमी वस्त्र पहन कर पर्व के दिनों मे सूक्ष्म जीवों की दया पालने वाले जैन धर्मस्थान में सहर्ष प्रवेश करते हैं. उस सभा में अचानक ही म० गांधीजी या जवाहिरलाल जैसे देश नेता आ पहुचें तो उनके आश्चार्य का ठिकाना न रहे। वे पूछें कि इतनी बडी मानवमेदना यहाँ क्यों एकत्रित हुई है ? उनके उत्तर में धर्माराधन का ही कारण बताया जाय तब उनकी दृष्टि धर्म के मूलतत्व अहिंसा और इन पापमय वस्त्रों पर पड़े तो उनको कितना दुख हो ? जैन धर्म कि जो विश्वधर्म बनने के लिए साधन संपन्न है, उसके अनुयायी पर्व के दिनों में ऐसे पापमय वस्त्र धारण करते हैं, यह देख कर ऐसी सभा में जैन समाज की अज्ञानता पर दो आँसू गिरा कर वे भग्न हृदय के साथ वापस लौट जाय।

लग्न जैसे शुभ कार्य में काले वस्त्र पहिन कर नहीं जा सकते, जब इन स्थानों की मर्यादा का भी उल्लघन नहीं हो सकता तो फिर धार्मिक पर्वों की पवित्रता रूप अहिंसक भावना की भी मर्यादा निभाये रहना चाहिए।

कुमारपाल राजा और उसके वर्तमान अनुयायी—कुमारपाल के राज्य में गुप्तचर गश्त लगाते रहते थे कि कोई जूँ

खटमल को मारने न पाये। उनको मारने वाले कुमारपाल के राज्य में दोषी समझे जाते थे। दंड देने के आदर्श रूप में जूं मारने वाले दोषी से कुमारपाल ने महल बनवाया था और वह जूं में मुक्तिका महल के नाम से सुप्रसिद्ध है। उनके राज्य में चौपड़ खेली जाती थी परन्तु "मार, मार" शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता था। सब हाथी घोड़ों को पानी छान कर पिलाया जाता था। वर्तमान समाज को कुमारपाल की यह अहिंसा अति सूक्ष्म प्रतीत होगी। परन्तु विचारक सरलता से समझ सकते हैं कि कुमारपाल जैसे राजा अपने विस्तृत राज्य के व्यवहार में भी इतनी सूक्ष्म अहिंसा का पालन करा सकता था, तो क्या वे अनुयायी विलासी मन के खातिर ही गाय भैंस जैसे बड़े पंचेन्द्रिय प्राणियों की होने वाली हिंसा को रोकने का या वैसे वस्त्र न पहिनने का साधारण विवेक भी नहीं रख सकते, तो वे कैसे जिने बोध ?

पर्व में भी हिंसक दूध—पर्यूषण पर्व के दिनों में उपवास के पारणे खीर, श्रीखंड, बासुंदी की 'धारणा' होती है। हजारों मनुष्यों के सामूहिक रूप भोजन जिमाये जाते हैं उनमें भी उपरोक्त भोजन होता है और इन दिनों में बाजारू घी दूध भी यही काम में लाया जाता है। धर्म भावना के प्रति इससे विशेष उपेक्षा और क्या हो सकती है? बम्बई में दूध नहीं देने वाले प्राणी सीधे कसाईखाने में ही जाते हैं, यह बात बम्बई निवासियों से छिपी नहीं है।

पूर्व कालीन श्रावक—पूर्व कालीन आनन्दजी आदि

ावक अपने यहां ४०-६० और ८० हजार तक गौएँ रक्खा
रते थे, परन्तु वर्तमान कालीन श्रावक अपने यहां यदि एक-एक
ध देने वाला पशु रक्खें तो भी हजारों जीवों की रक्षा सरलता
। की जा सकती है।

अहिंसक दूध और हजारों पशुओं को अभय-
ान—बम्बई मे सम्भवत एक लाख जैनियों की वस्ती है। वे सब
लकर यदि अहिंसक दूध की व्यवस्था करें तो भी जैन समाज
श्रागण में दस वीस हजार पशुओं का पालन हो सकता है
ौर उतने पशुओं को अभयदान मिल सकता है।

यह भी क्या जीवदया है ?—पर्यूषण पर्वों के दिनों
जीवदया के लिये फण्ड होंगे। कसाई के वहाँ से बकरे, गाय,
भेड़, भैंसे, मुँह मागा दाम देकर छुड़ाई जायेंगी। इन दिनों में
श्रावकों की जीवदया चींटी के बीलों की तरह उमड़ पड़ती है।
परन्तु वे ही जैन चर्बी वाले वस्त्र को धारण करें, अपने मिलों में
चर्बी का उपयोग करें और हिंसक दूध का सेवन करें, ऐसी
मनोवृत्ति वालों को शुद्ध अहिंसक कैसे कहा जा सकता है ? यह
उनकी वास्तविक अहिंसा है या केवल उसका ढोंग है ?

प्रतिवर्ष जीवों को छुड़ाने के खर्च की रकम मे से व्यवस्थित
एक गौशाला खोली जा सकती है। जिससे सभी को अहिंसक
दूध प्राप्त हो सकता है। अथवा कसाइयों के बच्चों की सुशिक्षा
के लिये भी इस धन का व्यय किया जा सकता है। इससे भी
भविष्य में हिंसा रुक सकती है। वर्तमान परिस्थिति तो जीवदया
के नाम पर कसाइयों के हाथ गरम करने के समान है।

धार्मिक दिन और हिंसकों की मौसिम—दक्षिण और गुजरात में कसाई लोग पर्यूषण पर्व के पहिले कुछ और पर कबूतर चिड़िया और मोर जैसे पक्षियों को जाल में पकड़ कर, पंख काट कर, उनमें डाल देते हैं। और इन दिनों हजारों जीवों को बाजार में बेचने लगते हैं। दयावान पुरुष उन्हें छुड़ाते हैं, जिससे पर्यूषण पर्व कसाइयों के लिये कमाने की मौसिम बन गये हैं। उनकी ओर अपेक्षा रखने से वे उन्हें बुरी तरह से मार डालते हैं। यही स्थिति इन दिनों में पशुओं की भी होती है। अतः जीवदया के कार्य में भी पूर्ण विवेक और बुद्धि की आवश्यकता है।

अनिच्छा से भी पाप के भागी—घर पर एक गाय रख कर उसकी व्यवस्था द्वारा घास पानी स्नान आदि क्रिया में पाप मानने वाले लोग विलास के खातिर तथा दूधादि वस्तुओं का उपयोग करके हजारों जीवों को कत्लखाने ही में मरण शरण करने के लिये कसाई के यहां भेजकर अनिच्छा होने पर भी पाप के भागीदार बनते हैं।

प्रभु को मोती का हार—जो हमें प्रिय लगता है वही हमारे देव को भी प्रिय होता है। ऐसा समझ कर पर्यूषण के दिनों में आंगी की रचना होती है और प्रभु को मोती का हार पहनाया जाता है। मोतियों के लिए लाखों मच्छीओं का इसकी की तरह कत्ल किया जाता है और सैकड़ों मच्छियों को मारने पर भी किसी में से कहीं एक मोती मिलता है। यही कारण है कि मोती इतने मंहगे हैं। वाह! कैसी बुद्धि!

अहिंसक देवों के मन्दिर में भी चँवर—मन्दिरों में चँवर भी काम में लाया जाता है। जिसके लिए चँवरी गायों का खून किया जाता है अथवा उनके अँगों को भयङ्कर नुकसान पहुँचाया जाता है। ऐसे पाप मय अपवित्र चँवर अहिंसक देवो के मन्दिर में कैसे शोभित हो सकते हैं? इसे सहृदय एव विचार शील पाठक स्वयं सोच सकते हैं।

श्री आणंदजी कल्याणजी की पेढी का स्तुत्य प्रयास—ये पर्व वर्षा काल में आते हैं, जिसमें पतगिये आदि जीवों की विशेष उत्पति होती है। धर्म मंदिर मे आगी की शोभा के लिये सैंकड़ों दीपक जलाये जाते हैं। इनमे अगणित जीवों का संहार होता है। परन्तु इस समय सद्भाग्य से आणन्दजी कल्याणजी की पेढी ने अपनी व्यवस्था और निरीक्षण वाले मन्दिर में से विजली कृत दीपक हटा देने का जो स्तुत्य प्रयास किया है उसके लिए वे कार्यकर्त्तागण धन्यवाद के पात्र हैं। आशा की जाती है कि, अन्य मन्दिरों के ट्रस्टी भी इस पवित्र कार्य का अनुकरण करने का सक्रिय प्रयास करेंगे।

भावनगर का आदर्श और पर्व की सफलता—भारत में केसर की पैदाइश बहुत ही थोड़ी है। नकली केसर विदेश से आती है। वह पवित्र नहीं होती, इसलिये भावनगर के मन्दिरो में केसर के स्थान पर पवित्र चन्दन काम में लाया जाता है। आशा है कि अन्य मन्दिरों में भी ऐसे सुधार कार्य रूप में रक्खे जायेंगे तो अहिंसा की दृष्टि से पर्यूषण पर्व को सफल कर सकेंगे।

वह बहिन उसकी उस भेंट को स्वीकार कर लेगी क्या ? वह बहिन भाई को कैसा समझेगी ? और सुनने वाले लोग भी उसे कैसा समझेंगे ? इसकी ऐसी मूर्खता पर किसे हँसी न आयगी ? लाखों की भेंट देने पर भी थोड़े से विवेक के अभाव से उसकी कार्यकीर्ति काजल की तरह काली हो जाती है। यही स्थिति लक्ष्मी पूजन और मानव समाज की है।

लक्ष्मी का अपमान—लक्ष्मी की कुंकु, केसर, कस्तूरी, चन्दन, धूप, दूध आदि से पूजा करने वाला ही यदि बारूदखाने के लिए, होली के धूए को भी लज्जित कर दे उतना धन का धुआ करता है तो वह लक्ष्मी का सरासर अनादर और अपमान करता है।

फांसी वाले का सन्मान—यह लक्ष्मी की पूजा नहीं, लेकिन उसका सत्यानाश है। पूर्वकाल में फासी की सजा प्राप्त व्यक्ति की सवारी जुलूस निकाली जाती थी। और सवारी में घोडे के बदले गधा, आभूषणों की जगह फटे जूतों का हार और फूटी हडियों के नगारे और ढोल बजाये जाते थे। ठीक यही स्थिति आज भारत वर्ष में लक्ष्मी देवी की है। लक्ष्मी देवी को इसके सपूत फासी के मच पर चढ़ा कर हर्ष-उन्मत्त होकर आनंद मना रहे हैं।

पागल खाना—आगरा के पागलखाने (Mad Hospital) में आग लगी, तब पागल दिवाली समझ कर नाचने लगे। सिपाहियों ने उन्हें उस मकान में से निकालने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्हे पूर्ण सफलता न मिली। इसी प्रकार भारत के

महान भीमन्तवर्ग में भी पागलपन का अनुभव होता है। दिवाली के निमित्त करोड़ों रुपये बारूदखाना नाटक सिनेमा और भोग विलास में पानी की तरह बहा कर प्रसन्न होते हैं। इससे अधिक दुखद प्रसंग और क्या हो सकता है ?

बारूदखाना और दिवाली—लाखों रुपये के पटाखे फोड़े जाते हैं। वे फूटते हुए आवाज करते हैं कि 'भारत वासी' तुम्हें फट फट—धिक्कार है। प्रति वर्ष पटाखों की यह 'फट,फट' ध्वनि सुनते हुए भी लज्जित होने के बदले प्रसन्न होते हैं। पटाके अन्तरध्वनि करते हैं, कि इन पवित्र और धार्मिक दिनों में भी नित्य करोड़ों मनुष्य अन्न बिना पटापट फूट रहे हैं। ऐसे प्रसंग पर इस प्रकार धन के दुरुपयोग करने वालों को पटाखा के मजाक और क्या कहा जा सकता है ? इतना द्रव्य शिक्षा प्रचार हरिजन या दीन जन्तुओं के उद्धार में व्यय किया जाय तब ही भारत धर्म प्रधान देश कहा जा सकता है। अन्यथा पागलपन के योग्य जंगली प्रदेश क्यों न माना जाय ?

तारा मण्डल—बारूदखाने की कोठी के मोहन पर उसमें से तारे टूट टूट कर गिरते हैं। वे सूचित करते हैं कि भारतवासियो ! सादगी संयम और स्वदेश-प्रेम का पाठ पढ़ाकर भारत के अनेक सितारे अपना बलिदान देकर टूट गए चल बसे। लेकिन आपकी विलास, मौजशौक और शृंगार की भावनाओं का अन्त न आया। उन महापुरुषों ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, लेकिन आप साधारण स्वार्थ और पैसा आराम का त्याग नहीं कर सकते।"

कोठी— कोठी के फोड़ने वाले अज्ञजनोंको वह उपदेश करती है कि "अरे! भारत के आर्यपुत्र! तू यह क्या कर रहा है? करोड़ों क्षुधापीड़ित लोगों के पेट में अन्न भरने के बजाय इस मिट्टी में बारूद भर कर तू क्यों धन का दुरुपयोग करता है? मेरे पेटमें बारूद भरने से मेरा तो नाश होता ही है, परन्तु साथ ही अन्न के अभाव से गरीब बन्धुओं का भी विनाश होता है। मेरे पेट में बारूद भरने के बजाय देश बन्धुओं के पेट में अन्न भर। जिससे मेरा भी नाश न होगा और देश बन्धुओं की रक्षा होगी। कोठी फोडने वाले! तू मुझे नहीं फोड़ता लेकिन स्वदेश बन्धुओं के पेट को फोडता है। इसमें से निकलने वाली चिनगारिया क्षुधा पीडित बन्धुओं के हाय त्रारा की ज्वलन्त वेदना है। इन चिनगा-रियों को देख कर जरा लज्जित हो! और धन का यथा शक्ति सदुपयोग कर।"

बारूदखाने से हानि—दिवाली के दिनों में बारूद-खाने के लिए करोडों का खर्च किया जाता है, परन्तु उसके अलावा अनेक बालक बारूद छोडते हुए मृत्यु के भोग बन जाते हैं। और कभी कभी उसको बनाने वाले मजूर और मालिक भी मर जाते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष दिवाली के दिन सख्या वन्ध मनुष्य और बालकों की मृत्यु होती है। इसमें धन की और साथ ही जीवन की भी बरबादी होती है। और साथ ही कभी कभी आग लगने पर करोड़ों रुपयों का कपडा, रुई और विशाल इमारतें भी जल कर खाक हो जाती हैं।

बारूदखाने पर प्रतिबन्ध—ऐसी कुप्रथा भारत जैसे

ाते हों उस देश की एक एक पाई का पूर्ण सदुपयोग होना ाहिये। किसी भी प्रकार का व्यर्थ व्यय भारत के लिये सह्य नहीं है।

दिवाली के दिन लक्ष्मी के पुजारी, शरीर पर रेशम और चाबी के चमकीले वस्त्र धारण कर करोड़ों रुपया निर्धन भारत-ें से विदा करते हैं और धन का धूँआ फूकते हैं।

धनवान निर्धन के लिये भारभूत—इस पवित्र दिन में नाटक सिनेमा, गान तान, मकान और दुकान की शोभा के लिये, इलेक्ट्रीक लाइट की सजावट आदि में करोड़ों रुपयों का खर्च होता है। श्रीमतों के इन सब खर्चों का बोझा मजूर वर्ग पर ही लादा जाता है और गरीब कौम का भोग देकर के भी धनवान अपने भोग विलास के साधन एकत्रित करते हैं।

भारत मे तो हमेशा ही होली—एक तागे वाला आवक से विशेष खर्च करता है, तो उस खर्च को पहुँचने के लिये अपने घोडे को विश्राम न देकर दिन रात उसे चाबुक की मार मार कर दौड़ाता है और उसे खिलाने के घास चने आदि में भी कर कसर से काम लेता है। ठीक यही स्थिति धनिक वर्ग की है। जिस प्रकार तागे वाले के विशेष खर्च का बोझ उन मूक प्राणियों पर पड़ता है और उन्हें कष्ट झेलना पड़ता है। उसी प्रकार धनवानों के अन्टसन्ट खर्च का बोझा उन निर्धन मजूरों पर पड़ता है। फल स्वरूप नौकर और मजूरों के वेतन में कमी की जाती है। जिससे कई बार पत्रों में हड़ताल के समाचार पढ़ते और सुनते हैं। हड़ताल से मजूर भूखे मरते हैं। और अन्त में उन्हें चोरी

और छूट खसोट जैसे पापाचरण करने पड़ते हैं। ऐसा अशान्त वातावरण भारत में तो चौबीसों घन्टे जारी रहता है। इसलिये भारत के लिये तो सदा ही दिवाली के बदले होली ही है। वर्षों भी इन प्रसंगों पर तो भारत में महा होली है। क्योंकि इन दिनों में अन्य दिनों की अपेक्षा विशेष खर्च होता है। इसलिये गरीबों को विशेष सहन करना पड़ता है।

सच्ची दिवाली कब ?—यदि सच्ची दिवाली ही मनानी है तो बारूद का सर्वथा बहिष्कार कीजिये। नाटक सिनेमा और भोग विलास की सब की बचत कर उसे दीन-अनाथ, हरिजन और दीनबन्धु की सेवा में व्यय कीजिये। दिवाली में पहनने जाने वाले वस्त्र शुद्ध प्रविशुद्ध शुद्ध खादी के ही होने चाहिये। छोटी से छोटी सूई से लेकर बड़ी से बड़ी उपयोगी वस्तु शुद्ध स्वदेशी गृह-उद्योग ही की काम में लेनी चाहिये। स्वदेशी का ही आग्रह होना चाहिये। तभी सच्ची दिवाली मनाई जा सकती है। अन्यथा भारत के करोड़ों मनुष्यों के लिये तो होली की ज्वाला से भी भयंकर, निर्दयता से मार देने वाली, भूख ज्वाला जल रहा है। उसमें करोड़ों मनुष्य होली के होम की तरह होम जा रहे हैं, जले जा रहे हैं। इससे विशेष दया पात्र स्थिति देश की और क्या हो सकती है ?

भारत को देदिप्यमान बनाइये ?—मनुष्य का सारा शरीर स्वस्थ हो, लेकिन पैर की एक अंगुली का नख पक गया हो तो उसे चैन नहीं पड़ती। तो जिस देश में करोड़ों मनुष्य भूख की ज्वाला में होमे जा रहे हों, वह देशवासी अमर

समाज को अपना अङ्ग समझने वाला, निश्चिन्तता पूर्वक कैसे सो सकता है ? या खा पी सकता है ? जिसके सामने ऐसा हाहाकार मचा हुआ हो उस देश के सज्जन को नाटक सिनेमा खानपान, भोगविलास और शृंगार आदि में एक भी पाई का व्यर्थ खर्च शोभा नहीं देता । उसका तो यही परम कर्त्तव्य है कि वह अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दीन दुखियों की सेवा से सत्य दिवाली मना कर, अपने सिर पर लगे हुए कलङ्क के टीके को मिटा दे । और समस्त देश को दिवाली से भी विशेष देदिप्यमान बनावे । यही सच्ची दिवाली है ।

१६—आप किसके अनुयायी हैं?
कृष्ण के या कंस के?

शराब, मांस और चरबी का उपयोग हिन्दू नहीं कर सकते। और न किसी जीव का वध ही कर सकते हैं। इतना ही नहीं, वे वध करने वाले को प्रोत्साहन भी नहीं दे सकते। क्योंकि पाप की दृष्टि से करने वाला कराने वाला और अनुमति देने वाला सभी पाप के भागी हैं।

अठारह प्रकार के चोर—प्रश्न व्याकरण सूत्र में चोर के अठारह भेद प्रभु ने फरमाये हैं। चोरी करने वाला चोर उसकी वस्तु लेने वाला, संभाल कर रखने वाला, सहायता करने वाला, मार्ग बताने वाला स्थान देने वाला, उसे छिपाने वाला इस प्रकार चोर के अठारह भेद हैं। इसी प्रकार पापी के लिए भी समझना चाहिये।

पाप एक, पापी अनेक—जैन शास्त्रों में अहिंसा विषय में बहुत ही सूक्ष्मता से विचार किया है। कोई शिकारी कबूतर को मार डाले तो उसको मारने वाले की तौर पर अकेला शिकारी ही पाप का भागी नहीं लेकिन शिकारी ने जिस साधन से उसे मारा उन साधनों को तैयार करने वाले भी पाप में भागी हैं। जैसे—यदि उसने तीर से उसका वध किया तो तीर बनाने वाला लुहार तीर को चोटी बनाने वाला चमार और चोर का तीर बनाने वाला व्यापी भी कबूतर की हिंसा में पाप

भागी हैं। क्योंकि तीर बनाते समय उनकी यही भावना थी कि तीर तीक्ष्ण बने, डोरी और धनुष मजबूत बने, जिससे बहुत दिनों तक तीर काम में आवे और ग्राहक खुश हों। और मेरा कार्य अच्छा चल सके।

छुरी कहाँ फिरती है ?—कसाई पत्थर पर अपनी छुरी घिस कर तीक्ष्ण करता है। छुरी दिखने में तो पत्थर पर चलती है परन्तु उसके मन की छुरी तो पशुओं के गलो पर फिरती रहती है।

हिंसा के कारण—वर्तमान युग में जीव हिंसा अनेक प्रकार से होती है। उसमें जिन देशों में धान्य का अभाव है वहाँ के जगली लोग मछलियों और पशुओं का मास काम में लेते हैं। उनके लिए वही साधन जीवनाधार है। और वह उनके लिए हमेश का आहार ही है।

लेकिन वर्तमान में विषय विकार वर्धक चमकीले वस्त्र बनाने के लिए रेशम के कीड़े तथा चरबी से चमकते हुए वस्त्र बनाने के लिए पशुओं को क़त्ल किया जाता है। और शहरों में कई गूजर दूध वेचने वाले दूध देने वाले जानवर पालते हैं। लेकिन उनका दूध घट जाने से उन पशुओं को कसाई खाने में कत्ल करने के लिए बेच देते हैं।

कोमल और मुलायम चमड़ा बनाने के लिए कई जीवित पशु भी काटे जाते हैं।

पापी कौन ?—इस प्रकार चर्बी वाले कपड़े और शहरी दूध, दही, घी और वैसे चमड़े की वस्तुओं का उपयोग

करने वाले मनुष्य, उपरोक्त पशुओं को मारने वाले कसाइयों से हिंसा के पाप के भागी, कम बनते हैं या अधिक ? इस बात पर आप विचार करेंगे।

दोनों में कौन महापापी ?—एक व्यक्ति ट्रेन के डिब्बे में एक मनुष्य का खून करता है। तब दूसरा मनुष्य रेल्वे लाइन पर पत्थर रखता है या चीजों को ढीला करता है या हटा देता है। इस प्रकार क्रिया करने वालों में कौन विशेष पापी ?

एक मनुष्य अपने दुश्मन को भोजन में विष देता है। तब दूसरा कुंए में विष डालता है। इसमें विशेष अपराधी कौन ? उपरोक्त दोनों दृष्टान्तों से आप सब समझ गये होंगे कि विष देकर मारने वाला या ट्रेन में खून करने वाला एक ही व्यक्ति का खून करने की भावना वाला है, और दूसरा हजारों के विनाश का यत्न करता है।

कसाई में विशेष पापी कौन ?—कलकत्ता और बम्बई में प्रति वर्ष करीबन पचास हजार दूध देने वाले पशुओं को मांस चर्बी और खून के लिए कत्ल किया जाता है। लेकिन उससे भी विशेष पशुओं को विश्व के कसाईखाने में कत्ल करने वाले वे ही हैं कि जो कसाईखाने के पदार्थों का अपने खानपान या वस्त्रादि की चर्बी के लिए उपयोग में लेते हैं।

अहिंसकों का कर्तव्य—केवल बम्बई और कलकत्ता के कसाईखानो में ही दूध घट जाने के कारण, १९३३ ३४ की साल में ३ २९० गौऐ और ७६१८ भैंसें काटी गई थीं। और मांस तथा चर्बी के लिए ११६३७ बैल काटे गये थे। इस पर से भारत

और विदेश के कसाईखानों के बढ़ते हुए अंको को समझ लें। यदि जीव दया प्रेमी अपने घर पशुओं का पालन करें, तो इतनी बड़ी सख्या में दूध देने वाले पशु कभी नहीं काटे जा सकते।

एक एक गृहस्थ के घर ८० हज़ार गौएँ—जैनशास्त्र अहिंसा के विषय में बहुत बारीकाई से उपदेश करता है, लेकिन उसी शास्त्र के सत्य उपासक श्रावक अपने घर ४० हजार, ६० हजार और ८० हजार गौओं का पालन पोषण करते थे। एक एक श्रावक इतनी गौएँ पालता था। उस समय भारत वर्ष में आर्य सस्कृति विद्यमान थी। पशु पालन और खेती ही उनका मुख्य व्यवसाय था। और ये ही वस्तुएँ जीवनोपयोगी हैं। उन वस्तुओं के अतिरिक्त वस्तुओं के बिना भी मनुष्य अपना जीवन सुखमय व्यतीत कर सकते हैं।

जयगोपाल—वैष्णव सम्प्रदायानुयायी जयगोपाल कहते हैं। गौओं के पालन करने वाले की जय हो" यह उसका अर्थ है। कृष्ण गौपाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। क्योंकि वे गौपालन करते थे। जो गौओं की प्रतिपालना करते हैं वे कृष्ण के समान दयावान हैं। इसलिए उसकी जय बोली जावे यह स्वाभाविक ही है। इस समय मानव संस्कृति विचार सून्य होने लगी है। जिससे भारत जैसे आर्य देश में गौ जैसे दूध देने वाले विश्वोपकारक पशु काटे जायँ, यह भारत के लिए लज्जा का विषय है। प्रति वर्ष भारत में एक करोड पशु काटे जाते हैं। जब तक भारत में एक भी पशु काटा जावेगा तब तक भारत भूमि को आर्य भूमि नहीं मान सकते।

जर्मनी का हिटलर और अमानुल्लाखां—जर्मनी

के डिरेक्टर हिम्लर ने तो डॉक्टरी का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों को भी प्रयोग के लिए पशुओं की हिंसा करने की सख्त मुमानियत करती है। और सीनेमा की फिल्म द्वारा पशुओं के शारीरिक विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। जमन जैसे देशों में पशु रक्षा को इतना महत्व दिया जाय, तब भारत में इतनी उपेक्षा रक्खा जा सकती है? भारत के लिए इससे अधिक अधोगति की पराकाष्ठा और क्या हो सकती है?

अफगान के नवाब अमानुल्लाखां भारत यात्रा के लिए आये हुये थे। तब उन्होंने भारतीय मुसलमानों को सचित करते हुवे कहा था कि यदि मेरे लिए एक भी गाय का खून करोगे तो मैं भारत से लौट जाऊंगा।

अनार्य देशों के रक्षा और प्रजा दूध देने वाले पशुओं की रक्षा के लिए अनेक उपाय सोचते हैं तब भारत का पशुधन प्रतिपक्ष विनाश होता चला जा रहा है।

निर्दयता की पराकाष्ठा—'Cow has no soul' गाय में जीवन न मानने वाले परम नास्तिक गो में जीव मानने के अलावा पृथ्वी जल, वनस्पति आदि में भी जीव मानने लगे हैं। और वे अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करने के लिए दूध देने वाले पशुओं का दूध दही घी, और चमड़ा भी उपयोग में नहीं लेते। और वे अपने आपको वेजीटेरियन कहलाते हैं। वे मानते हैं कि मनुष्य को पशुओं का दूध पीने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। पशुओं के बच्चों के मुंह का दूध छिनकर मनुष्य पी जाय, इससे विशेष निर्दयता और क्या हो सकती है?

शुद्ध शाकाहारी कौन ?—वे लोहू, मांस आदि को भी दूध की तरह अपवित्र पदार्थ मानते हैं। कोई हमे कहे कि, "मैं मास नहीं खाता परन्तु अडे खाता हूँ। क्यो कि वह मास नहीं है।' उसके ऐसे शब्द सुनकर हमें हँसी आती है। उसी प्रकार वे भी हमारे दूध पान पर हसते हैं, कि ये लोग कितने ढोंगी और दया हीन हैं ? फिर भी अपने आपको अहिसक मानते हैं। पश्चिमात्य अहिंसक और बौद्ध धर्मानुयायी तो हमें Lacto Vagitarian से सबोधित करते हैं। अर्थात् "वनस्पति का आहार करने वाले होने पर भी पशुओं के दूध दही घी आदि का उपयोग करने वाले लोग।"

घी खाने वाला पड़ोस में भी न रहे—बौद्ध धर्मानुयायी इस सबध मे ऐसे कट्टर हैं, कि जिस प्रकार चुस्त हिंदु या जैन माँसाहारी के पडौस में नहीं रहता या वह उन्हें पास नहीं रहने देता, उसी प्रकार जो घी में तली हुई पुडी, भुजिये या मिठाई खाते हैं उन्हें वे अपने पडोस में नहीं रहने देते। क्योंकि उनके मतानुसारी पुडी आदि का उपयोग करने वाले अभक्ष्य भोगी हैं। इस लिए वे भी उनके पास रहने में पाप मानते हैं।

पशुपालन—वेजीटेरियन युरोपियन और बौद्ध, पशुओं के घी दूध आदि खानेवालों को इतनी घृणा की दृष्टी से देखते हैं, जब कि शहर वासी हिन्दू और जैन निर्भयता स दया हीन लोगों से दूध खरीद कर उपयोग करते हैं। और उन्हें उत्तेजन देकर कसाई खाने में भिजवाते हैं। फिर भी अपने आपको शुद्ध अहिंसक मानते हैं। जीव दया मडल, पिंजरापोल तथा शुद्ध

अहिंसक हिन्दू और जैन प्रयत्न करें तो दूध देनेवाले जानवरों को कसाईखाने में आने से रोक सकते हैं। और वे पाप के भागी भी नहीं बन सकते हैं।

मौज शौक के साधन जैसे कि गाड़ी घोड़े मोटरें आदि रखने का स्थान शहर निवासियों को मिल जाता है। जब उन्हें वे निभा सकते हैं, परन्तु दयापात्र पशुओं का पालन उन्हें भी कुछ और खर्चीला प्रतीत होता है। जिन्हें दयाधर्म से भी धन विशेष प्रिय है ऐसे अमानुषिक मनोवृत्ति वाले जीवों को क्या समझाया जा सकता है? और ऐसी स्वार्थमय मलीन भावना वाले लोग समझ भी क्या सकते हैं।

जुगनू का तिलक—समुद्र तट पर रहने वालों के मच्छीमारों की स्त्रियां जुगनू को पकड़ कर उसे गोंद से अपने ललाट पर चिपकाती है और जुगनू के चमकते हुए प्रकाश से अपने शरीर की शोभा समझती हैं। अज्ञानी स्त्रियों को यदि हम पापी और निर्दयी कहेंगे तो लाखों कीड़ों और पशुओं को मारकर रेशम और चर्बी वाले वस्त्र पहनने वालों, बेचने वालों और सीने वालों को हम क्या कहेंगे?

पापी कौन?—एक मनुष्य दवाई के लिए डाक्टर की सलाह से लाचार होकर काडलिवर-ऑइल और हेमाग्लोबिन जैसे हिंसक पदार्थ काम में लेता है। तब दूसरा मनुष्य शरीर की शोभा और शृंगार के लिए रेशम के वस्त्र या दूध वाले पशुओं की चर्बी से चमकते हुए वस्त्र पहने; तो इन दोनों में पापी कौन?

किसका परिष्कार होगा?—मनुष्य किसको पूछ

की दृष्टि से देखेंगे ? शराब या मांस भक्षी को ? या कोडलीवर और हमोग्लोबीन का उपयोग करने वाले या बेचने वाले को ? दोनों में से किसका बहिष्कार करेंगे ? ज्ञानी और दया धर्मी संघ एकत्र होकर दवाई का उपयोग करने की सलाह देने वाले डाक्टर का तिरस्कार करेंगे, लेकिन शौक, विलास-श्रृङ्गार और शोभा के लिए ऐसे-हिंसक वस्त्र बनाने वाले या बेचने वाले के लिए किसी दया धर्मी को स्वप्न में भी विचार आया है ? या दया आवेगी।

क्या ये धर्म गुरु हैं ?—मोह माया राग और द्वेष बाधने वाले धर्म गुरु अपने आप को महाव्रतधारी, वीतरागी जैसे मान कर वैसे हिंसक वस्त्रों का छडे चौक उपयोग करते हैं और वैसे वस्त्र पहन कर बडे बडे शहरों में अपना जुलूस निकलवा कर या धर्म स्थानक के पाट पर बैठ कर अपने सुन्दर वस्त्रों का प्रदर्शन करते हैं और अहिंसक शुद्धवस्त्रधारियों का चित्त चलित करने का प्रयत्न करते हैं। पापमय वस्त्रों का प्रचार करते हैं। वितरागी वृत्ति के पर्दे की ओट में इस प्रकार के आचार का सेवन करने वाले धर्मगुरु कभी अहिंसा के सूक्ष्मतत्व को समझने का विचार कर सकते हैं ?

किस के भक्त बनेंगे?—जैन मदिरों में घी की बोली बोली जाती है। उसमें ढाई रुपये का मन घी गिना जाता है। कारण पूर्व में घी का भाव सस्ता था। वर्तमान में पशुधन के विनाश के कारण तन मन धन और जन का नाश हो रहा है। कृष्ण को महापुरुष के रूप में जैन और वैष्णव भी मानते हैं इस

लिये कृष्ण के अनुयायियों को दयाधर्म के शुद्ध स्वरूप को समझ कर पाप से बचना चाहिये तभी वे राम और कृष्ण के सच्चे भक्त कहे जा सकते हैं। अन्यथा वे रावण और कंस के भक्त क्यों न समझे जावें।

जिस प्रकार उसके जीवन में केवल पाप वर्धक है उसी प्रकार सम्पत्तिशाली नरसिंह (राजा) की सम्पत्ति और वैभवशाली व्यापारी वाघों का वैभव उन्हे विपत्ति के पापमय पथ पर प्रयाण करवाते हैं।

यन्त्रवाद की भयङ्करता—सिंह और वाघ में इतना बल न हो तो वह महा भयङ्कर पाप किस प्रकार उपार्जन कर सकता है ? सर्प के पास भयङ्कर विष न होता तो मदोन्मत्त मानव को अपनी फू कार मात्र से या दर्शन मात्र से किस प्रकार कम्पित कर सकता ? उसी प्रकार मनुष्यों के पास यदि वैभव और सम्पत्ति न होती तो वह यन्त्रवाद जैसे जीवित राक्षसों को लज्जित कर देने वाले साधन कैसे खड़े कर सकते ? और हजारों अनाथ और निर्धन मनुष्यों की रोटी निर्दयता से किस प्रकार छीन सकते ?

भेदभाव की दिवालें—मनुष्य मनुष्य के बीच छोटे बड़े, भाग्यशाली भाग्य हीन, धनवान निर्धन, सेठ नौकर, सुखी दु खी, पुण्यशाली पापी, इस प्रकार के भेदों की वज्रमय लोहे की दिवालों को भी लज्जित करने वाली अभेद्य दिवालें उत्पन्न करने वाला यह वैभव ही है।

सम्पत्तिशाली भिखारी—जन्म के भिखारी को छोड़ घराटों के लिए सुन्दर वस्त्र, आभूषण, खान-पान गान-तान नाटक, सिनेमा, बाग बगीचे बङ्गले गाड़ी घोड़े और मोटर के साधन वाला बनने का स्वप्न आवे तो उस दशा में वह अपना मिजाज गुमा देते और उसमें अहंता-मदांधता की राक्षसी वृत्ति

प्रवेश करती है तो जन्म से ही जिसको वैभव सम्पत्ति प्राप्त हो, उसकी अहंता मदान्धता-बड़प्पन के पाप का मारा करने के लिये अखिल विश्व का नाप करने वाला गज भी छोटा पड़े। अर्थात् उस पाप का परिमाण नापा नहीं जा सकता है।

क्रूर प्राणियों में भी समानता—पशु, पक्षियों की समान जाति में तो समानता है ही और विजातियों में विषमता दिखती है। सिंह, बाघ, चीते आदि सम जाति के सर्व प्राणियों में प्रकृति ने समान सम्पत्ति दी है। उनका जाति स्वभाव क्रूर होने पर भी उन्हें परस्पर एक दूसरे का भय नहीं है। एक सिंह दूसरे सिंह से नहीं डरता है। यह जङ्गली, हिंसक, क्रूर, निर्दय प्राणी अपनी सम जाति पर हमला नहीं करते हैं, सिर्फ विजातीय प्राणी हिरण खरगोश आदि अपने भक्ष्य पर हमला करते हैं।

मनुष्यों को मनुष्य का भय—सिंह, सर्प, बाघ और हिरन, खरगोश आदि में महान अन्तर है, व विजातीय तो है ही; वैसी भिन्नता मनुष्य मनुष्य के बीच में नहीं है। मनुष्य मात्र को प्रकृति ने शरीर, अङ्गोपाङ्ग, इन्द्रियां तथा आकृति समान दी है तथापि मानव जाति में पारस्परिक महान भय और अशान्ति दिखाई देती है। एक मनुष्य मारे भय के दूसरे से निडरता पूर्वक बोल भी नहीं सकता।

मनुष्य पर मनुष्य की सवारी—युवा और सशक्त सिंह या बाघ किसी निर्बल सिंह या बाघ पर सवारी नहीं करता भयभीत नहीं बनाता, गुलाम या चोर नहीं बनाता; परन्तु एक धनिक या अधिकारी पुरुष अपने निर्धन बन्धुओं को पशु बना कर

१७–मानवता का आदर्श

(कुछ प्रश्न)

श्री भगवतीजी सूत्र में प्रभु महावीर को जयती नामक श्राविका ने प्रश्न पूछे हैं कि " प्रभु ! संसारी जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए ? रोगी भले या निरोगी ? धनवान् अच्छे या निर्धन ? आलसी भले या परिश्रमी ? उसके प्रत्युत्तर में प्रभु ने फरमाया है कि ससारी जीव रोगी, सुषुप्त, निर्धन, निर्बल और आलसी ही अच्छे। क्यों कि वे उस परिस्थिति में पाप प्रवृत्ति विशेष नहीं कर सकेंगे। और यदि वे इससे विपरीत दशा में होंगे तो वे पाप पथ पर ही प्रयाण करेंगे इसोलिए उनके लिए सरोगी और दुर्बल अवस्था ही लाभप्रद है।

शेर और खरगोश—शेर वन का राजा है। तब हिरण और खरगोश तुच्छ प्राणी हैं। सिंह जितना बलवान है, हिरण उतना ही निर्बल ! सिंह श्रीमंत है जब हिरण गरीब । सिंह, गाय, भैंस और हाथी जैसे बड़े प्राणियों को अपना भक्ष्य बना सकता है। तब हिरण सूखा घास भी सुख से नहीं खा सकता। उसके जीवन में अनेक मानव शिकारी और अन्य शिकारी पशुओं का भय निरन्तर बना ही हुआ है। उसे अपना जीवन कोने में छिप कर पूर्ण करना पड़ता है। तब सिंह-वनराज नित्य वन को कम्पित करता है। और हजारों पशु पक्षियों को अपने पद पद पर त्रस्त करता है। उसके रहने के लिए स्वतन्त्र

अनेक वन और अनेक पर्वत हैं कि जिनकी विशालता के सामने राजा महाराजाओं के बाग बगीचे और बंगले परसी के घर और झोंपड़ी वत प्रतीत होते हैं। उसके खानपान के लिए अनेक शुद्ध विशेष सामग्रियाँ और शुद्ध जलवायु कि जिसके दर्शन भी राजा महाराजाओं को दुर्लभ हैं, उसे उपलब्ध हैं।

भाग्यशाली कौन—ऐसे वैभव शाली बाघ और सिंह और दूसरी ओर खरगोश और हिरण, इन दोनों में से विशेष भाग्यशाली कौन ? आप सहज ही समझ गये होंगे कि बाघ का वैभव और सिंह की सम्पत्ति उसके लिये पाप रूप होने के कारण विपत्ति के समान है। और खरगोश व हिरण गरीबी से अपना निर्दोष पापहीन जीवन व्यतीत करते हैं इसलिये वे भाग्यशाली हैं। विशेष में सिंह, सर्प, रींछ और बिल्ली आदि प्राणियों में व कितने ही बाल्यावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। और कितने सौ वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर मरते हैं। इन दोनों में से विशेष भाग्यशाली कौन ? भगवती सूत्र के न्याय से अल्प जीवन वाले अल्प पाप उपार्जन करते हैं और विशेष आयुष्य वाले विशेष पाप का उपार्जन करते हैं। ठीक यही स्थिति मानव संसार की है।

सम्पत्ति या विपत्ति—'राजेश्वरी तो नरकेश्वरी और नरकेश्वरी, राजेश्वरी है' यह प्राचीन उक्ति अति विचारणीय है। पशुओं में सिंह राजा है। और वह विशेष पाप का उपार्जन कर नरक का अधिकारी बनता है। इसी प्रकार मानव प्राणियों में धनिक धन जन और जमीन का स्वामी राजा है और उसके अभाव वाला निर्धन। बाघ का वैभव और सिंह की सम्पत्ति

कैसे समझे जायं ? अपने मानव बन्धु को गधे की तरह ढाई मन बोझ उठाने से गर्दन, कमर और शरीर टूटता देख कर के भी मोटर में बैठ विदा होने वाले—दुखी मानव को आश्रय नहीं देने वाले को किस कोटि का समझा जाय ?

श्मशान यात्रा—अपनी महत्ता के लिए श्रीमन्त लोग अन्य श्रीमन्तों को निमन्त्रण दे कर उन्हें ठोंस ठोंस कर मेवा मिठाई खिलावें और अपनी नजरों के सामने करोड़ों मानवों को बिना अन्न के श्मशान यात्रा करते देखें तो उसे कैसा समझना चाहिये ?

पाषाण हृदय—स्वयं भव्य हवेली में विविध प्रकार के विलास कर रहा है और उसके सन्मुख वर्षा और सर्दी से दुखी अर्धनग्न दशा में मूर्छित करोड़ों मनुष्यों को देख कर या सुन कर जिसका दिल आर्द्र न हो उसे कैसा पाषाण हृदयी पुरुष माना जाय ?

आँख और कान का दुरुपयोग—सतयुगी समानता और कलयुगी के असमानता के लाखों प्रसग आंख वाला नित्य देख सकता है और कान वाला सुन सकता है। आंख और कान मिलने पर भी अपनी समझ और साधना का उपयोग नहीं करने वाले के लिए जीवन के सब प्रसगों की समालोचना करने में अनेक वर्ष व्यतीत हों।

क्रूर पशुओं से भी महाक्रूर—गरीब मनुष्य हिरन बकरे और कबूतर जैसा निर्दोष जीवन बिताने वाला प्राणी है और धन वैभव के पुजारी बाघ सर्प से भी अधिक पापार्जन करने

वाले हैं। इसीलिये शास्त्रकारों ने करोड़ों क्रूर प्राणियों के पापों से भी अधिक पापी मनुष्य का एक घंटे भर के पाप को भयंकर और अधमाधम गति का अधिकारी कहा है। वे क्रूर पशु पापफल भोगने के लिये चौथी नरक तक जाते हैं जबकि मनुष्य अपने पाप फल भोगने के लिए सातवें नरक तक जाते हैं।

साम्राज्यवाद किस को शोभा दे?—बुद्धि और विवेकहीन पशुसंसार में स्वार्थ वृत्ति का साम्राज्य हो सकता है और पशु संसार ही साम्राज्यवाद का पूजक हो सकता है। क्योंकि उसमें हिता-हित विचारने का ज्ञान और बुद्धि नहीं है। मनुष्य मननशील विचारक होने से स्वपर के हित का सूक्ष्मता से अभ्यास करके सब के श्रेय के लिए यत्न कर सकता है, परन्तु वर्तमान में मानव संसार में स्वार्थवाद सत्तावाद साम्राज्यवाद पूंजीवाद इतने बढ़ गये हैं कि पशुओं में से अधम कोटि में आ पहुंचे हैं।

पाप का मूल—हिंसा असत्य, चोरी, व्यभिचार, क्रोध, कपट, गर्व, तृष्णा, द्वेष, ईर्षा, मिथ्या चुगली, क्लेश आदि पाप हैं वैसे धन का ममत्व भी एक पाप है। विशेष विचारक सरलता से समझ सकता है कि करोड़ों पापों का उत्पादक— जन्मदाता एक धन ममत्व ही है।

स्पार्टा देश का भला राजा—धन ममत्व के महापाप को मिटाने के लिए स्पार्टा देश के भले बादशाह ने सोना, चांदी, हीरा, मोती मणि माणिक आदि का नाश किया था और ऐसे मूल्यवान पदार्थ के रखने वाले को अपराधी समझता था। उसके राज्य में लोहे का व्यापार था। सोना चांदी का उपयोग अपराध

पालकी या रिक्शा पर सवारी करता है। अपने मानव वन्धु को सेवक या गुलाम वना कर सेवा ली जाती है। आश्चर्य! महद् आश्चर्य॥

सम्पत्तिशाली की लूट—सम्पत्तिशाली पुरुप खाना पीना, सोना, बैठना, आना, जाना आदि तमाम कार्य अपने धन मद के कारण गरीव मनुष्य को सवारी करके ही करता है। हजारों मजूरों के पास से १) रुपये रोज का काम करा कर बदले में ८ आने देता है आधी वचत के रुपये अपने घर में रख कर गरीबों के हक डुबाता है और खुद श्रीमन्त बनने की लालसा करता है। इस प्रकार गरीवों के हक छीन कर एकत्र की हुई सम्पत्ति को ऐश आराम विलास और गान तान में खर्चता है। इस प्रकार यन्त्र वाद के राक्षसी साधनों से हजारों गरीवों पर नित्य सवारी की जाती है। प्राचीनकालीन असभ्य समाज पशु पर सवारी करता था जब आज की सभ्य समाज उक्त प्रकार गरीब मनुष्यों पर सवारी करने मे अपनी सभ्यता, मर्यादा Position और महिमा मानता है।

मानव यन्त्र का गुलाम—पूर्व काल में जब कि चारों ओर अशिक्षा का प्रचार था, वे जगली मनुष्य निर्बलों को गुलाम बनाते थे। यह प्रथा आज की शिक्षित और सुधारक सरकारको बुरी मालूम होने से गुलाम प्रथा दूर करने का क़ानून किया। उसी सुधारक सरकार ने विज्ञान के युग में मनुष्यों को यंत्र के गुलाम वना कर मनुष्य मे से चेतना और विचार शक्ति का भी नाश कर दिया।

पशु जैसा प्रेम रखो—जिस तरह चींटी जैसे प्राणियों में भी अपने खानदान और जाति की तरफ प्रेम दया और सहिष्णुता है वैसी दया प्रेम और सहिष्णुता समाज जाति मनुष्य के बीच रखी जाय तो पंथवाद शाहीवाद, पूंजीवाद आदि का नाश हो कर सब प्रकृति के गोद में निर्दोष जीवन जीव जीवें और महा पाप की पराकाष्ठा से बच सकें।

सतयुग व कलियुग—प्राकृतिक व्यवस्था की तरह मनुष्य मनुष्य के बीच समानता और सभ्यता साम्यभाव रहे तो सतयुग और सत्तावाद साम्राज्यवाद, पूंजीवाद आदि हो कर विषमभाव का डेरा हो तो कलियुग समझना चाहिये।

सत्तावाद क्या नहीं करेगा?—क्रूर और भयानक पशु प्राणियों में भी खानपान मकान आदि में समानता-साम्यता दिखाई देती है परन्तु एक सौ पचास करोड़ मनुष्यों में अनेक प्रकार की विषमता दीखती है। न मालूम यह सत्तावाद कहाँ जा कर रुकेगा। जब विश्व में से पशुओं का नाश होगा और अन्य कलाओं का नाश हो गा तब सत्तावादी और समाजवादी जल पीने के लिए बर्तनों के अभाव में मनुष्य की खोपड़ी का उपयोग करे तो कौन मना कर सकता है?

निर्दय कौन?—गहरे जल में डूबने वाले को कोई तैराक बाहर न निकाले अथवा सांप बिच्छु काटने वाले को दवाई वाला दवाई न देवे तो समाज उसे निर्दयी और पापी समझता है तो अपने जीवन की सुविधाओं में गरीब मनुष्यों का पशु तुल्य उपयोग करने वाले और असमान वृत्ति में रमण करने वाले श्रीमन्तों को

कारी समझ कर घोर पाप का उपार्जन करता है। धनवान की अपेक्षा भी वह समाज अधिक पापी और समाज-शत्रु है जो धनवान का आदर-सत्कार सिर्फ इसलिये करता है कि वह धनवान है।

पापी को पाप का ज्ञान कराओ—जिस समाज में मद्य-मास भक्षी का सम्मान नहीं किया जाता उस समाज में ऐसा व्यक्ति घृणा की नजरो से देखा जाता है। अपने ऊपर उसकी छाया तक लोग नहीं पडने देते। कोई उसकी सोहबत भी नहीं करते। अतएव ऐसे समाज में शराबी और मास-भक्षी नहीं देखे जाते। ऐसे समाज में कोई व्यक्ति इस प्रकार के कृत्य करने का साहस भी नहीं कर सकते। इसी प्रकार यन्त्रों द्वारा अथवा ऐसे ही और-और उपायों से लाखों आदमियों के मुंह का कौर छीन कर, लाखों झोंपड़ियों का सत्यानाश करके जो व्यक्ति झोंपड़ीवालों को अधनगा या नगा बनाता है और स्वय 'बगला वाला' या वैभवशाली कहलाता है, ऐसे शराबी से भी अधिक उन्माद वाले व्यक्ति का, तथा पशु के मास की अपेक्षा भी अधिक पापपूर्ण, मानव-सहार करके आमोद-प्रमोद करने वाले व्यक्ति का समाज में यदि आदर-सत्कार न किया जाय और उसे यह भान करा दिया जाय कि वह घृणास्पद जीवन विता रहा है, तो उसका अभिमान धूल में मिल सकता है। फिर वह अपनी नशेवाजी को क़ाबू में करले और ऐसा वैभवशाली बनने के लिये कोई स्वप्न में भी इच्छा न करे। वह अपनी दयाजनक स्थिति के लिए आँसू बहावे और उन्हीं आँसुओं की वर्षा में स्नान करके पवित्र बन जाय। जब उसे सुध आएगी तो वह अपनी सम्माननीय स्थिति

के लिए दुःखी मनावेगा और वैभवशाली बनने के पुण्य संकल्प के लिए तीव्र पश्चाताप करेगा।

निर्धन बनने की प्रार्थना—जैन सूत्रों में संन्यस्त राजकुमार, श्रेष्ठिकुमार, राजकुमारियों तथा श्रेष्ठिकुमारियों ने साधु तथा साध्वियों के वेष में प्रभु से प्रार्थना की थी—"हे प्रभु! हम इस जन्म में धनवान बने किन्तु अब आगामी जन्म में यदि हमारे तप और संयम का कुछ फल हो तो यह यही कि धनवान् कुल में हमारा जन्म न हो और ऐसे समस्त निर्धन कुल में जन्म हो जहाँ विश्व बन्धुत्व का सम्बंध स्थिर बना रह सके। यही हमारी विनम्र प्रार्थना है।"

अलौकिक त्यागी राजकुमारों तथा श्रेष्ठिकुमारों ने इस जन्म में धनवान् कुल में जन्मने के उपलक्ष में पश्चाताप किया था और अपने तप और संयम का मूल्य देकर निर्धन कुल में—भाग्यशाली कुल में जन्मने के लिए भावना की थी।

जीवन की सफलता—जिस तपस्या और संयम के फल-स्वरूप उन्हें स्वर्ग और राज्य के सुख सहज ही मिल सकते थे, उस तपस्या और संयम के फल रूप में स्वर्ग, राज्य एवं श्रीमंताई से अधिक श्रेष्ठ निर्धन अवस्था की प्राप्ति के लिए भावना भाकर उन्होंने अपने जीवन की सफलता मानी थी।

पुण्यशाली या पापी?—धनवान् होना पुण्य का उदय है या पाप का? यह विचारणीय प्रश्न है। आज कल धनवान् होना पुण्य का उदय माना जाता है, अतएव यह प्रश्न पाठकों को अजनबी सा मालूम होगा परन्तु विचारक लोग इस

धियों की वेडियों के लिए था। और जवाहरात खूनियों को दु'ख हो इस प्रकार पहना कर फांसी लटकाये जाते थे। वह राजा लकडी के तख्ते पर घास बिछा कर बैठता था। राज्य में लोहे के सिक्के थे जिससे देश का माल देश में रहता और विदेश का कच्चा या पक्का माल आ नहीं सकता था। जो सोने चांदी के सिक्के हों तो विदेशी लोग विलासी सामग्री भेज सकें परन्तु जहां स्वर्ण का अभाव हो तो विदेशी व्यापारी लोहे के सिक्के का क्या करें। इस कारण से उसके राज्य में से हिंसा असत्य, चोरी व्यभिचार, कषाय द्वेष अहता आदि तमाम दोष नष्ट हुए थे।

अपराधों का मूल—गरीबों की अज्ञानता का लाभ लेकर उन्हें लूटे जाते हैं और उनके परिश्रम का योग्य बदला नहीं दिया जाता अत वे चोरी खून आदि करते हैं और समाज की शान्ति का भग करते हैं। उससे उनके लिये कोट किले, पुलिस शस्त्र, तिजोरी ताले आदि उपाधिया और कचहरी क़ैदखाने आदि करने पड़ते हैं। तथापि विश्व-बन्धुत्व कौटुम्बिक वृत्ति समान भाव आदि के अभाव में अनेक उपद्रव नित्य बढ़ते जाते हैं।

पापी को पापी मानो—हत्या, चोरी, असत्य, व्यभिचार, छल-कपट, दग़ाबाजी आदि पाप समझा जाता है और समाज इन्हें घृणा की दृष्टि से देखता है। किसी छोटे गांव में चोर आएगा तो उसे पकड़ने के लिए सारे गाव वाले अधेरी रात में हथियारों से लैस होकर धावा बोल देंगे और चोर की पापमय प्रवृत्ति का विरोध करेंगे, उसे चोरी करने से रोकेंगे। इसी प्रकार कोई साहूकार या श्रीमान् के वेष में, अधिक श्रीमान बनने की

इस में, ऐसी वस्तुओं पर अपना एकाधिपत्य जमाता है, जिनकी प्रत्येक मनुष्य को आवश्यकता है, तो उसका भी विरोध करना चाहिए। ऐसा किये बिना उसकी पापमय प्रवृत्ति अटक नहीं सकती।

विश्वव्यापी लूट अटके कैसे ?—आज से बीस वर्ष पहले रेशम और मलमल के भड़कीले वस्त्र पहनने में गौरव समझा जाता था पर आज शुद्ध खद्दर की टोपी पहनने पर ही कोई विशेष सम्मान का पात्र बन सकता है। रेशम और जरी के वस्त्रों की होली की गई, उन्हें जला कर भस्म किया गया और ऐसा करने के कारण समाज का मोह उन कपड़ों से हट गया और उन्हें पहनने वाले असभ्य गिने जाने लगे। ऐसे कपड़े पहनने में वे लज्जित होने लगे और परिणाम स्वरूप उनका त्याग कर दिया गया। इसी प्रकार यदि श्रीमंताई को अथवा विपुल धन के स्वामित्व को तथा विलासवर्धक-साधनों के स्वामी को समाज आदर की दृष्टि से न देखे वरन् उसे हीन और घृणापात्र समझने लगे तो मानव-जगत में धन के लोभ से जो छोटी-मोटी चोरियाँ लूट-मार और डाकेजनी होती हैं, वह अटक सकती हैं। यही नहीं बल्कि करोड़ों रुपये विशाल भंडार की महान लूट तथा महा-चोरी का धंधा भी इससे रोका जा सकता है।

बड़ा पापी कौन है ?—जो समाज धनवानों का आदर करता है वह समाज धनवानों को और अधिक पाप करने और ज्यादा लूट मचाने की प्रेरणा करता है। यही नहीं, धनवानों की लूट को लूट न मान कर परम पुण्योदय और सा-

है, मानवधर्म को जीवित कर सकता है। धनवान् मानवधर्म को मटियामेट करके स्वयं मुर्दा-जीवन बिताता है। जिसके हृदय में मानव-जाति के प्रति सहिष्णुता, दया, करुणा और समानता की मैत्रीभावना है वही जीवित है। जिसमें इन गुणों का वास नहीं वह जीवित होते हुए भी मुर्दा-जीवन बिता रहा है।

असंतोष वृत्तिः—विश्व के समस्त जीवधारियों के प्रति जो साम्य भावना है वही मानव भावना है। विश्व में जितने भी अनिवार्य और आवश्यक साधन हैं उन्हें प्रकृति ने मनुष्य को समान रूप में प्रदान किया है। शरीर, अंगोपांग, इन्द्रिय, अवयव हवा, पानी, चन्द्र सूर्य का प्रकाश, ऋतुओं का लाभ, नदी, तालाव सरोवर, समुद्र, पृथ्वी, आकाश, आदि अनमोल तत्त्वों का प्रकृति ने मनुष्य के लिए समान भाग में ही बटवारा कर दिया है। गर्भ से लगाकर मृत्यु पर्यंत के तमाम साधन क्या राजा, क्या रंक, सब के लिए प्रकृति ने समान निर्माण किये हैं। सवा नौ महीने का गर्भवास, उसके लिए दूध, माता का दूध बन्द कर देने पर दांतों का आना, चलना-बोलना सीखना, बुद्धि का विकास, बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि जीवन के सब प्रसंग और तत्व राजा-प्रजा, सधन-निर्धन, सब के लिए समान हैं। प्रकृति के शासन में लेशमात्र भी पक्षपात नहीं है पर मनुष्यों में क्रूरता के कारण बलात्कार के घातक भाव उत्पन्न हुए और जब हिंसक पशु दूसरे प्राणियों पर अपनी भूख शान्त करने के लिए हमला करता है तब मनुष्य के पास लाखों-करोड़ों की संपत्ति होने पर भी वह हिंसक पशु के बराबर संतोष वृत्ति न रखते हुए अपने

बन्धु समाज पर आक्रमण करके जैसे बिल्ली चूहे का शिकार कर लेती है इसी प्रकार आज मनुष्य मनुष्य को निगल जाने के लिए सदैव अपने बुद्धि वैभव तथा यंत्रपाशात्मक यंत्रों का उपयोग करता है।

मानवधर्म की रक्षा—प्रकृति मनुष्य को सिखाती है कि—'जैसे खान-पान के सब पदार्थ एक ही पेट में डाले जाते हैं फिर भी तमाम अवयवों को मैं समान भाग में बांट देती हूं उसी प्रकार तुझे भी संपूर्ण मानव समाज को अपने शरीर का अंग मान कर उसके लिए तमाम साधन यथोचित रूप में बांट देने चाहिये। प्रकृति यदि ऐसा बंटवारा न करे तो अन्य अंगोपांग खुराक के अभाव में निस्तेज और निर्बल हो जायें और पेट फूलने लगे, उसमें कीड़े पड़ जायें, वह फूल जाये और उस हालत में पेट दुश्मन से भी ज्यादा दुखदायी प्रतीत होने लगे

जो मनुष्य अपने साधनों का उपयोग अपने बन्धु समाज के लिए नहीं करता उसकी हालत पेट के फूलने, भारी होने और कीड़े पड़ने जैसी हो जाती है। उसमें मानव बंधु के प्रति तुच्छता, घृणा और तिरस्कार के कीड़े उत्पन्न होते हैं और बन्धु समाज रूप अन्य अंग निस्तेज हो जाते हैं। समान बटवारा करने से अपने मानव धर्म की रक्षा होती है और अपने अंगों की-मानवों की-भी रक्षा होती है।

पेट की, कुटुम्ब की तथा जाति की चिंता तो हिंसक पशु भी करते हैं पर तू तो मानव का लाल इनके अतिरिक्त चन्द्र-सूर्यवत् अभेद भाव से मानव समाज की, विश्व की, सेवा करता है वही सच्चा मनुष्य है।

सरलता से समझ सकते हैं। छोटे और बड़े जन्तुओं में जो निर्धन हैं वे सुखी हैं—पुण्यशाली हैं और जो धनवान् हैं वे दुःखी और पापी हैं।

धनी और निर्धन—कंकर और हीरा, धूल और नमक खारा पानी और मीठा पानी, घास की अग्नि और लकड़ी की अग्नि, पाखाने की हवा और बगीचे की हवा, गुवार और गेहूँ, बांस और गन्ना, तिनका और तिल, धतूरे के फूल और गुलाब के फूल, इन सब में हीरा, मीठा पानी, तिल और गुलाब के फूल आदि धनवान् हैं जिससे उन्हें अधिक घिसना, छिदना, भिदना, पिसना और कुचलना पड़ता है, जब कि गरीब वर्ग के तत्त्व अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

मामूली मक्खी और शहद की मक्खी, साधारण भौंरा और शहद का भौंरा, साधारण कीड़ा और रेशम का कीड़ा, मामूली मच्छी और मोती वाली मच्छी, साधारण मृग और कस्तूरी वाला मृग, इनमें से जो शहद, रेशम, मोती, कस्तूरी आदि सपत्ति वाले प्राणी हैं उन्हें मारणान्तिक कष्ट भुगतने पड़ते हैं।

सुन्दर पंख वाले और गाने वाले पक्षियों को कैद भोगनी पड़ती है, उनके प्राण भी ले लिये जाते हैं। गधी और गाय, भैंस और शूकरी के बालकों में से गधी और शूकरी के बच्चे आनद से अपनी माता का दूध पीते हैं तब गाय-भैंस के बच्चों को कोई शान्ति से दूध नहीं पीने देता है।

हाथी, ऊँट, बैल, घोड़ा, और गधा आदि जानवरों को अपनी मोटाई के कारण मनुष्यों का तथा अन्य प्रकार का बोझा

लाञ्छना पड़ता है तब जंगल के अनगिनत प्राणी स्वतंत्रता के साथ सैर करते हैं ।

प्रकृति के धनवान् और निर्धन के नियम से उपर्युक्त पशु संसार भी नहीं बच पाया है तो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध मनुष्य किस प्रकार सुखी रह सकता है ? यह बात प्रकृति के नियमों का अभ्यास करने से सहज ही समझ में आ सकती है।

'राजेश्वरी सो नरकेश्वरी' यह पुराने जमाने से चली आने वाली कहावत में अक्षर-अक्षर सत्य है। सिंह, सर्प, बाघ आदि में यदि इतना शारीरिक बल का धन न होता तो वे अपरिमित पाप क्योंकर कर सकते ? लाखों करोड़ों हिरन और खरगोश मिल कर भला कितना पाप कर सकते हैं ? वे कितने जीवों को दुःख दे सकते हैं ? इनकी अपेक्षा एक ही दुर्बल सिंह या बाघ अधिक हिंसक और संहारक बन सकता है।

जोखिम और मुक्त—भिखारी और राजा तथा सधन और निर्धन की सिंह और हिरन के साथ तुलना की जा सकती है। सिंह अधिक शक्तिशाली होने से अधिक पाप उपार्जन करता है तब हिरन अपना जीवन निर्दोष बिताता है। इसी प्रकार धनवान् अपनी सत्ता के मद में अपने को मानव समाज से बड़ा अर्थात् भिन्न अनुभव करता है। उसके हृदय से प्रत्येक पल मानवता का पूर दूर होता चला जाता है। तब निर्धन, जन-समुदाय के साथ अपनी एकता का अनुभव करता हुआ जीवन यापन करता है और समाज के सुख दुःख में अपना सुख-दुःख समझता है। वह विश्व के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता

मानव की घातकता:—सिंह जैसे क्रूर प्राणी में भी संग्रह तथा संचय की वृत्ति नहीं है तब मनुष्य में करोड़ों हिंसक पशुओं से भी ज्यादह संचय-वृत्ति पायी जाती है और जो कहीं मनुष्य में सिंह, बाघ जितना बल होता तो वह सारे संसार में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए करोड़ों बन्धुओं के नाश के लिए तैयारी करता। वर्तमान में युद्ध की जो झनकार हो रही है, जहरीली गैस और बम तथा अन्य संहारक साधनों की जो नित्य नयी तैयारी हो रही है, उससे अधिक मानव-स्वभाव की घातकता के लिए और क्या प्रमाण चाहिए?

मानवता की दुर्लभता:—पशु-पक्षियों की कुटुम्ब तथा जाति पर्यंत हित कामना सीमित है तब स्वार्थान्ध मानव अपने पेट के सिवाय दूसरे की चिंता शायद ही कोई करता है! भले ही कोई अपने स्वार्थ के लिए स्त्री, पुत्र, माता पिता की सेवा करेगा किन्तु मनुष्य की हैसियत से मनुष्यता की योग्यता प्राप्त करने के लिये अभेद भाव से मानव समाज की सेवा करने वाले,साम्य भावना के पुजारी, भारत के पैंतीस करोड़ लोगों में से पचीस भी गाधी और जवाहरलाल मिलना मुश्किल है।

पेट में जाने वाले खानपान के पदार्थों का तत्व प्रकृति तमाम अवयवों को समान भाव में बाट देती है, उसी प्रकार मानव को चाहिये कि वह विश्व के जीवधारियों को अपना ही अंग मानकर उनके श्रेय के हेतु अपनी सम्पत्ति का उपयोग करे।

सिर और पैर—पैर नीचे रहतेहैं, सिर ऊँचा रहता है। फिर भी यदि पैर सड़ जाएँ तो मस्तक भी जमीन पर पड़े विना नहीं

रह सकता। मस्तक पैरों की शक्ति के सहारे ही ऊँचा रहता है। मस्तक की शोभा पग के कारण है। निर्धन वर्ग को पैर के समान मान लें और धनवानों को मस्तक समान मान लें तो धनवान् निर्धनों का भाग लेकर ही बने हैं। धनवान के जीवन की रक्षा निर्धन की सहायता से ही होती है। अतएव जितनी रक्षा मस्तक की जाती है उतनी ही रक्षा और सन्मान पैर का भी करना चाहिए। कोई मस्तक का बोझ नहीं उठाता, वरन् पैर को ही बोझ ढोना पड़ता है। इससे यह कल्पना नहीं की जा सकती कि मस्तक की अपेक्षा पैर कम उपयोगी हैं।

सब को अपना मानो'—प्राचीन राजा अपनी प्रजा अपने अंगोपांग के समान समझते थे और घोर अंधकार में रात्रि के समय गलियों में चक्कर काटते थे और अपने प्रजाजन के सुख दुःख की बात सुनते थे, उनका दुःख दूर करते थे। राज्य की सम्पत्ति प्रजा की सम्पत्ति मानी जाती थी। राजा उसका केवल रक्षक सेवक गिना जाता था। औरंगजेब, नादिरशाह, जहांगीर, आदि राजा भी कुरान लिख कर या टोपियां बना कर अपना गुजर चलाते थे, तो अन्य महान् आदर्श राजाओं का जीवन कितना पवित्र होगा? उनमें कितनी पवित्र भावना होगी? यह सहज ही समझा जा सकता है।

स्वार्थ लोलुपता और सत्तामद के कारण चोरी, लूट और खून आदि पाप बढ़ गये हैं। समानवाद विश्व में शान्ति फैलाने वाला एक व्यवहारवाद है।

शान्ति के नाम पर अशान्ति—ऊँचा पास-कूद से

अग्नि को दबा देना असंभव है। यही नही वरन् ऐसा करने से वह और अधिक प्रचण्ड रूप धारण करेगी। इसी प्रकार राज्य में शान्ति की स्थापना के लिए कचहरियां, क़ैदखाने, वकील, न्यायाधीश, बैरिस्टर, सिपाही आदि ज्यों-ज्यों बढ़तेजाते हैं त्यों-त्यों अपराध भी बढ़ते जाते हैं और बढ़ते ही जाएँगे। जब तक यन्त्र द्वारा या बुद्धि द्वारा होने वाली लूटखसोट बन्द नहीं होती तब तक शान्ति की आशा करना ही अनुचित है।

मन में स्वार्थ का विचार आने के साथ ही साथ मानवता का नाश होता है। और जहाँ मानवता का नाश वहाँ पाशविकता की विजय, अशान्ति का साम्राज्य हो। यह स्वाभाविक है।

शुप से अधिक पामर जीवन—रोगी, दुर्लभ, जख्मी, मरणासन्न या मरे हुये जानवर का मास कौए और गिद्ध चोंचों से नोंच कर प्रसन्न होते हैं अथवा चोंचों में भरकर अपने बाल बच्चों को खिला कर खुश होते हैं। पक्षियों के बच्चों को नहीं मालूम कि यह दो चार तोला मास का टुकड़ा जिसे वे प्रसन्नता पूर्वक खाते हैं—मरने की तैयारी करने वाले पशु को कितनी यातना देकर प्राप्त किया गया है? मानव-जगत् की भी यही हालत जान पड़ती है। कौआ और गिद्ध तो मरणासन्न या मरे हुये पशु का मास खाते हैं पर आज का स्वार्थ लोलुप मानव अपने या अपने दो-चार कुटुम्बियों का पेट भरने के खातिर नित्य सैकड़ों मनुष्यों के जीवन धन से भी अधिक मूल्यवान पैसे को लूटता है और उसी पैसे से वह मेवा-मिष्टान्न खाकर गुलछर्रे उड़ाता है। और सगे संबन्धियों को दावतें देकर अपना अहो भाग्य मानता है।

खाने वालों को आनन्द आजाता है, पर उन्हें क्या पता कि वह भी खंड, मलाई पूड़ी का भोजन कितने भयंकर पापों के फल स्वरूप तैयार किया गया है ! कितने हजार दीनों के शाप के बिंदुओं से यह पूड़ी का एक कौर या दूध पाक का एक घूंट बना है ! विवेक और विचार शक्ति प्राप्त होने पर भी उसका उपयोग न करके मनुष्य अविवेकी या विचार शून्य पशुसे भी अधिक पामर जीवन बिता रहा है।

शोषण वृत्ति का मूल—चील आकाश में चाहे जितनी ऊँची उड़े, पर उसकी दृष्टि तो जमीन पर पड़े हुए मांस के टुकड़ों पर ही लगी रहती है। इसी प्रकार बुद्धिबल से मनुष्य चाहे जो उच्च दार्शनिक विचार करे, लेख लिखे या उपदेश सुने, फिर भी जब तक उसके दिल में सत्ता और बड़ाई की भावना दूर नहीं होती तब तक उसका मन केवल स्वार्थ भावना का पोषण करने वाले पापमय पतित विचारों में ही वायुवेग से चक्कर लगाता रहता है।

आस्तिक और नास्तिक—जो परमेश्वर को मानता है, जो अपने मान का बलिदान करके प्रभु क[illegible] है, जो अपने सर्वस्व का भोग देकर [illegible] की सेवा के [illegible] तत्पर रहता है वह सच्चा [illegible]
का नाश नहीं यह ना[illegible]

समाज की सेवा करने वाले को परोपकारी कैसे माना जा सकता है ? जो अपने मन में परमार्थ-परोपकार करने का विचार तक नहीं करता है वह सत्तावादी है—नास्तिक के समान है।

जमीन, नदी, तालाब, हवा अग्नि और पृथ्वी की सेवा अपार है। यह सब अपार सेवा करते हैं फिर भी उन्हें अपनी सेवा का भान तक नहीं है। तो साधारण सेवा करके मनुष्य कैसे फूल सकता है ? उल्लिखीत निर्मोल्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य में अनंत शक्ति है। अतएव मनुष्य से अनत गुनी अधिक सेवा की आशा रखनी चाहिये। पर अनत वें भाग भी मनुष्य की सेवा नहीं मालूम होती।

जंगली कौन ?—पूर्वज जंगली असभ्य और अशिक्षित थे या वर्तमान में समझा जाने वाला सभ्य, शिक्षित और विज्ञानी मानव ससार, पशुओं को भी लज्जित करने वाला जगली असभ्य, क्रूर और घातक है।

आजकल का सुधार—हमारे पूर्वजों में सेवा भावकी प्रधानता थी, आज कल के मनुष्य में स्वार्थ की प्रधानता है। पूर्वजों का जीवन सादगी और सेवा से ओतप्रोत था, आज के स्वार्थी और विलास की सड़न में सड़ने वाले मानव-संसार ने स्वार्थ भावना को पुष्ट करने के लिए यंत्रों का अन्वेषण किया है ,जिससे ऐसी भयकर लूट मची है कि कोई राक्षस भी इतनी लूट नहीं करा सकता। क्या इस संहारक लूट की कला को ही विज्ञान या सुधार कहते हैं ? एक भी ऐसा गरीब, अनाथ और निराधार मनुष्य विश्व में न बच पाया होगा जो थोड़े

बहुत अंश में यंत्रों के सांचे में ढेल गन्ना या अलसी की नाईं पीला न गया हो अथवा बेल की तरह पक्क न गया हो, खेती की मासि लेकर न गया हो और दानों की तरह पला फूला न गया हो।

जंगली वृत्ति—चरखा चलाने वाले, बुनने वाले, कातने वाले, पीसने वाले, धोने सीने वाले, खोदन वाले, पानी भरने वाले, घास बेचने वाले, तिल पीलने वाले, आदि आदि दरजी, तेली, लुहार, सुनार, लकड़हारा, मजूर आदि के धंधों को आज के जंगली और विनाशी विज्ञान ने लूट कर लाखों की बलि लेकर एक दो को पोषण करने वाली प्रवृत्ति पैदा की है।

सेवाधर्म—पूर्वज, बिल्ली की तरह ताक कर निर्दोष चूहे का शिकार करके, उसके लोहू से अपने दांत रंग कर, अपनी शोभा नहीं समझते थे। उन्होंने सेवाधर्म का आदर्श पाठ सीखा था Love thyself last तू अपने आपकी चिन्ता सबके पीछे कर। पहिले विश्व के जीवमात्र की दया कर। उनकी सेवा करने के बाद जो शेष बचे उससे अपने जीवन के लिए संतोष मान। Service of poor is the service of god अर्थात् गरीबों की सेवा ईश्वर की सेवा है। वे इस आदर्श पाठ के पुजारी थे। मगर आज के वैज्ञानिक अधिक से अधिक धन किस प्रकार हो सकती है, इसीलिये रातदिन विनाश के पथ का विचार कर रहे हैं। उन्हें इसके सिवाय और कुछ भान नहीं है।

राम के अनुयायी या रावण के!—इनसे कोई

राम कहे तो तुम प्रसन्न होते हो और रावण कहे तो दुखी होते हो, पर जरा अपने अन्त.करण को तो टटोलो कि तुम्हारी प्रवृत्ति कैसी है। राम जैसी या रावण जैसी ? यदि राम का अनुयायी बनना चाहते हो तो राम जैसी सात्विक वृत्ति धारण करो और तामसी रावण की वृत्ति का त्याग करो। रावण के काम करके राम के अनुयायी बनने की आशा तो न रखनी चाहिए।

देवों और ऋषियों के वंशज होकर पशु और राक्षस जिस सत्ता स्वार्थ और लूट मार से शर्मा जाय ऐसी लूटमार और स्वार्थ भावना रखना यह एक अच्छे नागरिक को शोभा नहीं देती।

मनुष्य का जीवन आदर्श आकाश दीप के समान होना चाहिए उसका जीवन विश्व के जीवों के लिए पथदर्शक होना चाहिए।

मनुष्य कब ?—अपनी स्वार्थ वृत्ति, द्वेश आदि को विषैली वृत्ति उपशान्त करने की पशुओं में बुद्धि नहीं है, मनुष्य में है। यही मानव की विशेषता है। अन्यथा स्वार्थ और सत्ता का लोलुपी मानव, मानव कहलाने योग्य नही है।

विश्वशान्ति—सत्ता, स्वार्थ बड़प्पन और विलास का नाश होगा तभी मनुष्य समानता और विकाश के पथ पर विचर सकेगा और विश्वव्यापी शान्ति का प्रसार कर सकेगा।

१८-विज्ञान विकाश के पथ पर या विनाश के ?

विज्ञान के द्वारा मानव भूमि रही या पाशवभूमि ? अग्नि नाज (धान्य) पका सकती है और जला भी सकती है। वैसे वैज्ञानिक साधन मनुष्यों का विकास कर सकता है और विनाश भी। वैज्ञानिक साधन जनसमुदाय के श्रेय के लिए काम में लाये जायें तो मानव भूमि स्वर्ग भूमि बनें, परन्तु वर्तमान में वैज्ञानिक साधनों द्वारा सिर्फ लूट खसोट और स्वार्थ वृत्ति पुष्ट होती है अतः मानव भूमि पाशव भूमि या नारकीय भूमि हो रही है। जो साधन मानवों के श्रेय के लिये थे, वे स्वार्थ भावना के कारण से विनाश के निमित्त बन रहे हैं।

सुधारा या कुधारा ?—वर्तमान में न्यायालयों ने अन्यायों (वैर-विरोध) का स्वरूप धारण किया है। कानून, कोर्टें, भारी शास्त्र वकील, सिपाही आदि दल बढ़ रहा है त्यों त्यों जुर्म बढ़ते जा रहे हैं।

डाक्टर, दवाखाने और दवाइयाँ बढ़ रही हैं, त्यों त्यों भयंकर रोगों की उत्पत्ति व संख्या बढ़ रही है।

साहित्य लेखक, वक्ता और उपदेशक बढ़ रहे हैं, त्यों त्यों मानवों में अज्ञान, अनीति, द्वेष, ईर्षा आदि पाशव वृत्तियों में वृद्धि हो रही है।

मनुष्यों में वस्त्र पहिनने की मर्यादा सभ्यता बढ़ रही है, त्यों त्यों अंतः करण की असभ्यता और मलीनता बढ़ रही है।

म्युनिसिपालिटियाँ, मेम्बर्स आदि बढा कर रास्ते, सड़कें, व मकानों की स्वच्छता बढ़ रही है, त्यों त्यों सड़कों के नीचे गटरों की दुर्गन्ध और मलीनता बढ़ती जाती है। जमीन मे एकत्रित होने वाली मलीनता कब मूर्त स्वरूप धारण करेगी ? यह विचारणीय है।

गृहउद्योग किस लिए ?—वैज्ञानिक वेग बढ़ रहा है इतना ही उद्वेग बढ रहा है। वैज्ञानिक साधनो की बाहरी चटक मटक व सुन्दरता में रही हुई आतरिक दुर्गन्धि-मलिनता-स्वार्थ वृत्ति लुट खोरी एवं राक्षसी वृत्ति के दर्शन विवेक चक्षु वालों को होने लगे हैं। जिससे गृह उद्योगका वातावरण पुनः फैल रहा है।

रक्षक या भक्षक ?—समस्त भूमंडल मे चराचर अनंत प्राणी हैं। बडे प्राणियों को छोटे प्राणियों की रक्षा करना उनका नैतिक कर्तव्य है, तथापि उसको भूल कर बड़े प्राणी छोटे प्राणियों का भक्षण करने का अपना अनादि अधिकार समझते हैं और तदनुसार जीवन बिताते हैं।

पक्षियों में कवे, गीद्ध, चील आदि चिड़िया कबूतर वगैरह के अडे खा कर अपना पेट भरते हैं। समुद्र के मच्छ, मछलियों को खा कर पेट भरते हैं। जगल के प्राणी सिंह वाघादि हिरण, खरगोश आदि से पेट भरते हैं। वे प्राणी अबोध हैं, समझ नहीं सकते। न अपन उन्हें समझा सकते हैं। अत उनका अपराध क्षन्तव्य समझना चाहिए।

राक्षसों का विनाश—पूर्व काल में राक्षस मनुष्यों को मार कर खा जाते थे। वैसे नराधमों का नाश करने का राजाओं ने अपना कर्तव्य समझा था और उसकी परम्परा से आज खून (हत्या) करने वालों को फांसी दी जाती है। खून करने के इरादे वाले को, खून करने में मदद देने वाले को, और षड्यन्त्र करने वाले को भी फांसी दी जाती है, उसमें प्रजा की शान्ति मानी जाती है।

अपराधों के प्रकार—रातदिन चोरी करने वाले, कराने वाले तथा उस धन्धे को अच्छा मानने वाले को भी शिक्षा दी जाती है। व्यभिचार का प्रचार करने वाले व वैसे पुस्तक व चित्र बेचने वाले भी अपराधी माने जाते हैं। किसी लेखक की पुस्तक, कविता या लेख छपा कर उसकी आजीविका तोड़ने वाले को भी शिक्षापात्र दंडयोग माना जाता है। लेखक और आविष्कारक लोग भी अपने लेख और आविष्कारों के लिये कॉपी राइट लेते हैं पेटेंट कराते हैं।

श्री ज्ञानेश्वरचन्द्रजी मेधावी की दीन कविता का बिना आज्ञा के फोनोग्राफ की रेकार्ड कंपनी ने रेकार्ड में दी। जिसके नुकसान बदल १०००) रुपये कोर्ट ने दिलवाये और रेकार्डों का नाश करने का हुक्म मिला।

नरोत्तम भाउ और नेशनल बैंक की सोने की थप्पी (लगडी) पर N.B मार्क समान होने से कायदेसर व्यवस्था करनी पड़ी थी।

कोई दुकानदार किसी प्रसिद्ध दुकानदार का नाम या बोर्ड अपनी दुकान या ऑफिस पर रख नहीं सकता। किसी को भी

किसी के सम्पत्ति धन को नुकसान पहुँचाने का हक नहीं है। तो जीवन धन के नाश करने का अधिकार हो ही कैसे ?

विज्ञान के विनाशक आविष्कार—पूर्व के रण संग्राम में तलवार भाला, बरछी या बन्दूक आदि का उपयोग होता था, जिससे अल्प मनुष्यों का सहार होता था, परन्तु आज का विज्ञानी युग २४ घण्टे में अपने विषैले गैस द्वारा भूमण्डल के १५० क्रोड मनुष्यों का सहार करके ससार को श्मशान समान बना सकता है।

विज्ञान युग की परिभाषा—वर्तमान वैज्ञानिक युग की परिभाषा यही है, कि वैज्ञानिक सहायता द्वारा समस्त मनुष्यों की मानसिक, वाचिक, कायिक एव आर्थिक शक्तिरूप सम्पत्ति के बदौलत सौ, दो सौ श्रीमन्तों का विशेप सम्पत्तिवान होना।

मकड़ी और मक्खी—वैज्ञानिकों या श्रीमन्तोकी दृष्टि में अज्ञानी व निर्धनों की स्थिति मकड़ी के जाल में फसी हुई मक्खी जैसी है। मकड़ी निर्माल्य और शक्तिहीन होती है। दिवार पर चढते २ अनेक बार गिर जाती है और एकाधवार सफल होती है, जब ऊंचे चढ़कर आकाश में जाल बिछाती है, उस जाल को आकाश में उड़ते छोटे जन्तु विश्रामस्थान समझ कर बैठने जाते हैं तो फस जाते हैं, मकड़ी के लक्ष्य हो जाते हैं। मकड़ी मक्खी आदि का सत्व चूसकर कलेवर (मृतदेह) छोड़ देती है। इस प्रकार एक २ मकड़ी प्रतिदिन अनेक जंतुओं का सत्व चूस कर अपना पेट भरती हैं।

मकड़ी की जाल और वैज्ञानिकवाद—मकड़ी

अपनी जाल में चुपचाप छिप कर और जाल के आश्रय का प्रलो भन देकर अपनी कूट नीति से निर्दोष और प्राकृतिक जीवन वाले प्राणियों का जीवन संहार करती है। ठीक इसी प्रकार प्राकृतिक जीवन जीने वाले धार्मिक भावना वाले निर्दोष आत्माओं के रक्त को वैज्ञानिक विज्ञान व धन के बल पर चूसकर अपना पेट भरते हैं, समृद्ध बनते हैं, विलास करते हैं और इसी में जीवन की सफलता मानते हैं।

छोटे और बड़े जुआरी—पाई पैसे की हारजीत खेलने वाले, कौंफर्क की कौड़ी हारजीत करने वालों को सरकार अपराधी समझ कर दंड देती है। दूसरी तरफ करोड़ों का सट्टा खेलने वाले और घुड़दौड़ (races) में हजारों की हारजीत करने वालों को साहूकार समझ कर मानपत्र इन्हें राय बहादुर, राजा बहादुर, दीवान बहादुर, सर, जे पी०, नाइट आदि प्रदान किये जाते हैं।

छोटे और बड़े चोर—किसी की कविता लेख या पुस्तक का नाम या भावों चोरनेवाले को, खेत से सेर दो सेर धान्य चोरने वाले को, किसी की गाय बकरी का दूध चोरनेवाले को, रास्ते में गंदगी करने वाले को, असभ्य पेम्फलेट बाँटने वाले और छापने वाले को अपराधी माने जाते हैं और कड़ी सजा दी जाती है, किन्तु विश्वव्यापी चमत्कार, लूंटमार, मिथ्या प्रलोभन, विषय विलास अनेक विनाशक साधन्स पैदा करने वाले और प्रचार करने वाले को अपराधी मानने का कानून नहीं है। कैसा विचित्र न्याय कानून है!

अनार्य प्रजा का देश कौनसा ?—तुर्किस्तान, अफ-गानिस्तान और ईरान जैसे राज्य अपने राज्य में पशु धन की प्रति पालना करते हैं। जर्मनी ने डाक्टरी प्रयोग के लिए भी पशु-वध न करने का फरमान निकाला है। शाह अमानुल्ला खां जब भारत आये थे, तब आने के पहिले ही उन्होंने जाहिर किया था कि, मेरे लिए एक भी गाय आदि पशु धन का नाश किया जायगा तो मुझे काफी दुःख होगा और पीछा लौट जाऊँगा। दूसरी ओर भारत में प्रति वर्ष ४० लाख पशु कटते हैं ? विचारिये कि अनार्य प्रजा का देश कौनसा ?

पशु वध के टेक्स (Tax) का उपयोग—पशु धन की रक्षा के लिए मांसाहारी प्रजा जागृत हुई है। परन्तु धर्म प्रधान भारत में चर्बी वाले कपड़े के लिए, चमड़े, लोहू व मांस के लिए आदि अनेक कारणों से अगण्य पशुओं का वध होता है। पशुवध की आज्ञा म्युनिसिपैलिटी के दया धर्मी सभ्यों को तथा प्रमुखों को नियत संख्या में देनी पड़ती है। पशु वध की आज्ञा बदल म्युनिसिपैलिटी एक भैंस के रु० १५) और गाय का रु० ११) टेक्स लेती है। ऐसे Tax पर शहर सुधराई निभती है। इस धन से शहर की सुधराई, स्कूलें और सफाखाने चलते हैं। और इन संस्थाओं का लाभ जीवदया प्रतिपाल समाज सहर्ष लेता है। स्कूल, सफाखाने, सुधराई आदि सस्थाओं में पशु वध का टेक्स जमा होता है, ऐसा शायद कइयों को मालूम भी नहीं होगा। कल्पना भी यहीं आती होगी।

आर्य व अनार्य देशका पशुधन—ऑस्टेलिया जैसे

अनार्य देश में चार लाख की जन संख्या है। और गाय जैसे बड़े पशु १२ करोड़ हैं। भारत जैसे ३५ करोड़ की जन संख्या वाले देश में सिर्फ चार करोड़ पशु है। आस्ट्रेलिया में भारत में ७५ वें हिस्से की जन संख्या है और पशु धन भारत से तीन गुना अधिक है। आस्ट्रेलिया में भारत से हजारों गुणा अधिक पशु धन है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत पशु धन में अत्यधिक दरिद्र है और इस दरिद्रता में प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है।

पशुवध के अंक— भारत में प्रतिवर्ष ४० लाख पशु कटते हैं। जिसमें १ लाख पशुओं का मांस भारत के काम में आता है और ३८ लाख पशुओं का मांस विदेश जाता है। भारत में ३॥ लाख कसाई जाते हैं और विज्ञान के प्रताप से बेकारी बढ़ने के कारण कसरतकारी और धान्य की न्यूनता से व धान्य की महँगाई के कारण भारत के बीस करोड़ मनुष्य मांसाहारी बने हैं। इसके अतिरिक्त पिछले वर्षों से बीस लाख पशु विदेश में कटने के लिए भेजे गए थे। वैज्ञानिक यन्त्रों से पशु कटते हैं। उनका मांस सुखाया जाता है और विदेशमें भेजा जाता है। इस प्रकार विज्ञान ने भारत के पतन के लिये ही अनेक विधियों से यत्न किये हैं।

विनाश के पथ पर विज्ञान—पशुवध रोकने के लिए अनेक उपाय करने पर भी निष्फलता हुई है। वर्तमान राज्य शासन और श्रीमन्त लोग पशुवध के हित के लिए कुछ भी न कर सके तो भी अपना नैतिक कर्तव्य के तौर पर मानव समुदाय के हित के लिए विचार करना आवश्यक है। इस प्रकार

सम्पत्ति धन और जीवन धन की लूट खसोट विज्ञान करता रहेगा तो अन्त में विज्ञान का ही नाश होगा।

एक गडरिया गाय भैंस बकरी से दूध निकाल देने के बाद उनके लोही मांस हड्डियां चूसना प्रारम्भ करे और गायों का जीवन विच्छेद करे वह उसकी अज्ञानता मात्र है। इस प्रकार करने वाला अपने पैर पर कुल्हाडी मारने की धृष्टता कर रहा है। वैसी स्थिति वर्तमान में श्रीमन्तों की और विज्ञानियों की है।

महालूट—विज्ञान पूजक श्रीमन्तोंकी ऐक्यता (Companies) आज के युग में चोर लुटेरे और खूनियों की ऐक्यता से अधिक भयंकर है। बाबर देवा और बावला आदि केलूट और हत्या की मर्यादा थी, परन्तु वर्तमानके वैज्ञानिक लूटेरों की लूट अमर्याद है।

मुहम्मद गजनी, सिकन्दर, औरङ्गजेब आदि की लूट त्रास, बलात्कार और मानव सहार की अपेक्षा विज्ञान की लूट त्रास और सहार विशेष भयंकर और विश्व व्यापी है।

विज्ञान की चक्की में पिसाते मनुष्य—भारत के ७ लाख ग्रामों में और ३५ करोड़ मनुष्यों पर उसकी एक सी असर होती दीखती है। विज्ञान की राक्षसी चक्की में भारतीय ३५ करोड़ की जनता नाज की तरह निर्दयता पूर्वक पीसी जा रही है। इनके रक्त से कुछ दिन के बाद ही अच्छे लाल शरीर और इनके मांस से अपने शरीर को पुष्ट और मजबूत बना कर ३५ करोड़ के भूख मरे से वे वैज्ञानिक श्रीमतों के नित्य नये पक्वान्न, बाग, बंगले, गाड़ी, वाड़ी व लाड़ी की मौज कर रहे हैं।

विज्ञान के पहले का जमाना—विज्ञान युग के पहले,

प्रभु महावीर के युग में भारत में गाय के दस, बकरे के चार, बैल के ६ और भैंस के आठ पैसे कीमत थी। उस वक्त १ पैसे १५ मन दूध और पैसे का चार सेर घी मिलता था। राजा चन्द्रगुप्त के जमाने में १ पैसे का २५ सेर दूध और २ सेर घी मिलता था। ये भाव वैज्ञानिक पाठकों को लेखक की मनोकल्पना मानकर हास्य करावेगा। और विचारकों के नेत्र में से अश्रुधारा बहावेगा। जैनों के मंदिरों में घी की बोली बुलाई जाती है। उसमें भी ४॥ रुपये मन का भाव गिना जाता है। मुगल जमाने में २॥ रुपये मन का भाव था। यह इतिहास प्रसिद्ध है।

जिस भारत में घी और दूध बेचना पाप माना जाता था। उस देश की वर्तमान स्थिति विचित्र होगई है।

विज्ञान का प्रताप—पूर्व काल में जिस भाव से घी मिलता था उस भाव का दूध, दूध के भाव की छाछ, गुड़ के भाव शक्कर, शक्कर के भाव के नमक और अनाज के भाव का घास घास नहीं मिलता है। यह किसका प्रताप ? मात्र विज्ञान युग का।

भारत का आध्यात्मिक और नैतिकपतन—विज्ञान प्रतिदिन बढ़ रहा है। जिसके प्रताप से भारत भूखमरा, असत्य, अन्याय, ईर्ष्या, निन्दा और कलहमयी जीवन जीकर मरण संख्या बढ़ा रहा हैं। भारत का मरण प्रमाण देखने से २१ वर्ष की औसत आती है।

विज्ञान जल, स्थल, आकाश के मार्ग में अपने राक्षसी पंखों के द्वारा कत्लेआम करता हुआ आगे बढ़ रहा है।

वैज्ञानिक क्रूर और त्रास—पानी निकालना, पीस ने

खांडना पकाना, धोना, सीना, कातना, बुनना, लकड़ी पत्थर और घास काटना, उठाना, आदि गरीब स्त्री पुरुषों के मजदूरी के धन्धों को विज्ञान ने छीन लिया है। जिससे गरीबों को वेकारी से मरना पड़ता है। इस त्रास को जुल्म या बलात्कार समझने की बुद्धि भी मानवों में नहीं रही है।

दर्जी, धोबी, तेली, सुनार, लुहार, कुम्हार, नाई, धोबी, खाती, चमार आदि कारीगरों के धन्धे भी यन्त्रों ने वैज्ञानिक कारखाने करके छीन लिये हैं। बड़े शहरों में भिष्टा उठाने का मेहतरों का रोजगार भी वैज्ञानिक यन्त्रो ने छीन लिया है। जिससे वे लोग मारे भूख के आर्य धर्म से भृष्ट होकर अनार्य और मांसाहारी बन रहे हैं। पीसने और दलने की मिलों ने लाखो अनाथ भाइयों की तथा विधवा बहनों की रोटी छीनली है। इस प्रकार हजारों और लाखों की रोटी छीन कर थोड़े श्रीमन्त और कारखाने वालों का सीरा पुड़ी का भोजन होता है।

निःसत्व पदार्थ—घी, मक्खन आदि पदार्थ अमृत तुल्य हैं। किन्तु उसका विशेष मन्थन किया जाय तो विष बनता है। रोटी या घास को अग्नि पर मर्यादा से पकाया जाय तो वे खाद्य पदार्थ होते हैं अन्यथा अखाद्य (फैकने योग्य) बनते हैं। पहले जब से भारत में दूध में से मक्खन निकालने के यन्त्र आये हैं तभी से Separate (बचा हुआ नि सत्व दूध) को फैंका जाता था परन्तु आज उस नि सत्व दूध से खीर, रबड़ी, श्रीखड, दही आदि बनाकर जनता को खिलाया जाता है। उसी प्रकार जो पदार्थ प्राकृतिक साधनों के स्थान पर यान्त्रिक साधनों से खांडने, पीसने

खाने, सुनने में आते हैं। इन से पदार्थों की सात्विकता नष्ट होती जिससे आटा दाल चावल कपड़ा आदि Separate दूध की तरह बिना सत्व के हो जाते हैं और ऐसे निःसत्व खान पान से पशु और मनुष्य पोषक तत्व के अभाव से निःसत्व होते जाते हैं।

भारत की अज्ञानता-स्वास्थ्य तथा धर्म का नाश चीन देश पाकशास्त्र में अधिक चतुर है। वहां के पाकशास्त्री रसोइयों को यहां धारा शास्त्री जितना बारह वर्ष तक अभ्यास करना पड़ता है। बाद में उन्हें पाकशास्त्री का प्रमाण पत्र मिलता है। चीन में चांवल का पानी (ओसामण मांड) का उपयोग राजा व श्रीमन्तों में होता है और निःसत्व चांवल घास रूप में गरीबों को या पशुओं को दिये जाते हैं अथवा फैंके जाते हैं। कवि सम्राट टागोर ने चीन की सफर में मांडके बाद चांवल मांगे, तब उस देश में मांड निकाले चावलों को बेकदर समझकर उन्हें आश्चर्य हुआ। भारत में तो मांड निकाले हुए चावल खाने का ही रिवाज हो गया है जो प्राय निःसत्व होगये होते हैं। मांड निकाले हुये सुखे हुये चांवल खाने में श्रीमन्ताई व स्वाद विशेष समझी जाती है। मूल स कोई बहिन चांवल का मांड न निकाल कर पकावे तो उसे रसोई बनाना न आने का प्रमाणपत्र मिल जाता है। सद्भाग्य से महात्मा गांधी ने गृह उद्योग का विषय उठाया है और इस पर विचार हो रहा है। इसमे कुछ लोग हाथ स कूटे हुए चांवल और हाथचक्की स पीसे आटे की कदर करने लगे हैं। मशीनों से काम कराने में कम खर्च होता है और हाथों स अधिक खर्च होने की मान्यता भी मिथ्याभ्रम है।

मशीन में पीसाने पर आटा उड़ जाता है। फी मन ढाई सेर ी घट लगती है। दूसरे के ककर अपने आटे मे आते हैं। मांसा ारी आदि के अशुद्ध वर्तनों का नाज अपने धान्य के साथ मिलता है। जन्तु वाला नाज भी उस ी मे पीसा जाता है और विटामिन (सात्विक तत्वों) का नाश होने से आटा नि सत्व हो जाता है, जिसको खाने से अनेक प्रकार के रोग भी होते हैं। रोग होने से नौकरी धन्धे छोडने पडते हैं, आय घट होती है, डाक्टरों के या वैद्यों के विल चढते हैं, खुशामद करनी पड़ती है, धर्म भ्रष्ट करने की औषधियाँ लेनी पडती है। पीसने खाडने के व्यायाम के अभाव से स्त्रियों की निर्माल्यता वढ कर अनेक प्रकार की वीमारियाँ वढती हैं। हिस्टीरिया आदि भी स्थान स्थान पर बढ गये हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक शास्त्रों को स्नेहि (सुभीते के) समझकर सत्कार किया जाता है, उतना ही भारत की तन, मन, धन जनकी आध्यात्मिक और बौद्धिक शक्ति का नाश होता है।

विज्ञान द्वारा व्यापक लूट—घास, लकड़ी वेचने का धंधा श्रीमन्तो ने अपने हाथों लेकर लाखों घास वेचने वाले और लकड़ी वेचने वालों का धन्धा छीन लिया है और इससे प्रसन्न होते हैं।

हेअरकटिंग सैलूनों और वासिंग कम्पनियों ने और होटलो ने लाखों नाई, धोबी और हलवाइयो के धधे छीन कर चोरी करना सिखाया है।

ऑइल मीलों ने लाखों तेलियों को वेकार वना कर रुलाये हैं। कपड़े के मिल मालिकों ने करोडों धुनकने वाले, कातने वाले, बुनने वालों को वेकार बनाया है।

कुम्हारों का रोजगार भी पोटेरी फु (?)ने छीन लिया है। विज्ञान पूर्वक जीवजन्तुओं के त्रासरूप, निर्दयता का क्रूरता का पापकृत्य का वर्णन कहाँ तक करें? 'आकाश फटे वहाँ कारी कहाँ लगावें समुद्र में आग लगे तो कैसे बुझावे? एक-एक यंत्र लाखों मानवों के विनाश और संहार का शस्त्र है तो सैकड़ों प्रकार के यंत्रों का और करोड़ों मनुष्यों की पीड़ा का वर्णन कैसे संक्षेप में किया जाय?

यह तो सिन्धु में एक बिन्दुरूप विज्ञान पूर्वक जीवजन्तुओं के त्रास का नमूना मात्र बताया है।

कारखाना या कसाई खाना—विज्ञान पूर्वक बनाई जीवजन्तु कम चींटी आदि की दया पालते हैं, चींटी नारे आटा, घी, शक्कर से भरते हैं और मनुष्य के मुख की सूखी रोटी छीनकर यंत्रालयों में काम करा कर यंत्रों की रज से मानवों के फेफड़ों को बिगाड़ कर अकाल मृत्यु कराते हैं। रात दिन यंत्र चलाकर चाय कॉफी, बीड़ी आदि पदार्थों का सेवन करना पड़ता है। मिलों में स्त्री-पुरुष एक साथ काम करने से व्यभिचार आदि अनेक जीवन विनाशक दोष उत्पन्न होते हैं।

दूध के स्थान पर दारू—पहिले गरीब वर्ग गायें पालता था, अब मांस भक्षण के लिए मुर्गे बकरें पाली जाती हैं। दूध के स्थान पर दारू पीते हैं। मंदिरों में जाने की बजाय विलास व विकारवर्धक नाटक, सिनेमा में जाते हैं। ऐसा जीवन बिताकर अपने वंश में से मानवता और आर्यता के तत्वों का नाश करते हैं।

पाप के पांतिदार—इस महाभारत पाप का पाविदार प्रत्येक भारती है, कि जो विज्ञान का पूजक है। चोरी करे, चोर को सहायता दे, चोर को उत्तेजन देवे, चोर को सत्कार करे, चोर की वस्तु खरीदे, चोर को घर में रक्खे, चोर का बचाव करे, और चोर के यशोगान करे, सो चोर समझा जाता है। इसी तरह विज्ञान पूजक धन के महा लोभी श्रीमत जो कि भारत की बेकारी के जन्मदाता तथा उत्पादक हैं। वे क्रोडो निराधाप अनाथ दुःखी मनुष्यों के मुख क सूखी रोटी छीन लेते है। उनमें से दया के अंकुर सर्वथा नष्ट हुए हैं। उनके मानव शरीर में पशुता का रक्त बह रहा है। पशु के माँस के स्थान में मानव की कठोर हड्डियाँ है। उनका प्रत्येक कवल गरीबा के जीवन धन का बना हुआ है। उनके महल, निवास और यन्त्रालयों में इटों के स्थान पर मनुष्य की हड्डियाँ चूने की स्थान में मानव के मांस पिंड और पानी के स्थान मानव का रक्त लगा है। किंबहुना।

यंत्रालयों की आवाज सुनो—बंबई, अहमदाबाद, और करांची के भव्य भवन और विशाल यन्त्रालयों में से निकलती आवाज सुनने के लिए जिसको कान है, देखने के लिये आँख है, सूंघने के लिये नाक है, स्पर्श करने के लिये त्वचा है वे अपने अंगों पाग द्वारा करोड़ों मनुष्यों के हाय रुदन और आक्रन्दन सुन सकेंगे, देख सकेंगे, छू सकेंगे। जो बिना चैतन्य के जड़वादि विज्ञान पूजक है, उन्हे सिवाय जड़ता के अन्य क्या भाव हो सके? उनसे क्या शुभाशा रखी जासके।

सत्य दया—गौशाला, पिंजरापोल, अनाथालय आदि के

दयालु देव ? कीड़े मकोड़े का पालने वाला ? आपकी धर्म भावना तभी श्रेष्ठ मानी जायेगी जबकि आप करोड़ों मनुष्यों को विज्ञान के कत्ल खाने से उन्हें बचायेंगे। उनके लिए पूर्ववत् पशुशाला के स्थान पर गृह उद्योग रूप मानव शाला, अनाथाश्रम के स्थान पर आर्यालय खोलकर विज्ञान के कत्ल खाने से मनुष्य को बचाओ। तब ही आपके जीवन की और आपके जीव दया की सार्थकता होगी।

धर्मोपदेशक छोटे जीवों की दया का उपदेश देते हैं किन्तु उसके साथ रातदिन चलने वाली कपड़े की तेल की, आटे की, चावल की, दाल की, बर्तनों की, मानव संहारक मीलें बनाकर पाप के विशेष भागीदार न बनें। महारम्भ और महा परिग्रह रूप मार कीय स्थान का सेवन न करें। इसके लिए उपदेश द्वारा मनुष्यों की तन मन और धन की सम्पत्ति में वृद्धि हो ऐसे कल्याणकारी गृह उद्योग में अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करावें तो लाखों और करोड़ों मनुष्य अकाल मृत्यु से बचे। आप न बनावें मांस हारी नहीं। इस प्रकार उपदेश दाता और श्रोताओं को कितना महान् लाभ हो सके।

आशा है कि जीव दया के प्रचारक उपदेशक और श्रोतागण अपने उपदेश तथा प्रवृति का प्रवाह बदलेंगे तो उनके मुख के मेघ के साथ लाखों और करोड़ों मनुष्यों का क्षेम हो सकेगा और जीवन सफल होगा।

ॐ शान्ति

श्री [illegible] जैन ग्रन्थमाला का पुष्प नं० ५

जैन तत्त्व का नूतन निरूपण

लेखक—

प्र० वक्ता आत्मार्थी मोहनऋषिजी महाराज

जैन तत्त्व का नूतन निरुपण

सम्पादक और अनुवादक—
धीरजलाल के० तुरखिया
ऑ. अधिष्ठाता, जैन गुरुकुल ब्यावर.

प्रकाशक—
श्री पुँगलिया सरदार जैन ग्रन्थमाला
इतवारी बाज़ार, नागपुर.

प्रथमावृत्ति
प्रति १०००

वीर सवत् २४६४
विक्रम स० १९९४

समर्पण

आचार्य श्री होते हुए जो विनय-विभूति है ।
पूज्य श्री होते हुए जो प्रभुता से पर है ॥
शिरोमणी होते हुए जो संत के सेवक हैं ।
गुरुवर्य होते हुए जो शिष्य के भी शिष्य हैं ॥
ज्ञान मूर्ति होते हुए जो नम्रता की मूर्ति है ।
तपो मूर्ति होते हुए जो क्षमा के अवतार हैं ॥

ऐसे

परम करुणासागर, दयालुदेव, जैनाचार्य, तपोधनी, तपस्वीदेव, तपोमूर्ति

पूज्य श्री १०८ श्री देवजी ऋषिजी महाराज श्रीजी की

पुनीत सेवा में त्रिकाल वंदन !

श्रीजी के प्रभावक प्रवचन से पुनीत, पुन्य प्रभावक,

श्रावक शिरोमणी, साधुभक्त,

दानवीर श्री सरदारमलजी पुँगलिया (नागपुर) की प्रेरणा से

श्रीजी की छत्र छाया में

प्रथित आगम-वाटिका के पुष्पों की माला स्वरूप

यह सेवक की पामर सेवा रूप लघु पुस्तिका

सविनय समर्पण

महावीर भवन, नागपुर] —लेखक

रुपया सवा लाख जितना दान करने वाले
दानवीर सेठ सरदारमलजी साहब पुङ्गलिया (नागपुर)

आपने श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर को 'देवभवन' निर्माण हेतु १८०००) रुपये की उदार भेंट जाहिर की है।

F A P Press Ajmer

दानवीर

श्रीमान् सेठ नेमीचंदजी सरदारमलजी पुँगलिया

की

अ० सौ० धर्मप्रेमी श्रीमती मगनदेवी की तरफ से

अपनी स्वर्गीया पुत्री

श्री जमनाबाई की पुण्य स्मृति में

सादर सप्रेम भेंट।

रुपया सवा लाख जितना दान करने वाले
दानवीर सेठ सरदारमलजी साहब पुङ्गलिया (नागपुर)

आपने श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर को 'देवभवन' निर्माण हेतु
१८०००) रुपये की उदार भेंट जाहिर की है।

दानवीर श्रीमान्

सेठ श्री सरदारमलजी पुंगलिया

का

संक्षिप्त परिचय

विश्व असीम और अनादि है। उसमें अनगिनते मनुष्य प्राणी समय २ पर जन्म धारण करते रहते हैं, मगर बहुत कम को छोड कर अधिकांश मनुष्य प्राप्त हुए सर्वोत्कृष्ट मानव जीवन को उस जीवन की रक्षा में ही व्यतीत कर देते हैं। वे जीवन रूपी पूंजी को जरा भी नहीं बढाते, बल्कि उस पूंजी का उपयोग कर के अगले जीवन को और अधिक दरिद्र बना लेते हैं। कई प्राणी अपनी दिव्य शक्तियों का उलटा उपयोग कर के सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन को सर्व निकृष्ट जीवन बना डालते हैं। इनके जीवन का मुख्य ध्येय सासारिक आमोद प्रमोदों को अधिक से अधिक प्राप्त करना होता है। और वे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ती में ही सलग्न रहते हैं। ऐसे मनुष्यों का जीवन या तो निष्फल हो जाता है या विपरीत फलदायी सिद्ध होता है। समाज देश या संसार की उपयोगीता की दृष्टि से उनका अस्तित्व नहीं के समान है।

इससे विपरीत कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो परलोक से एक अच्छी पूंजी लेकर आते हैं, और इस लोक में अपने सदनुष्टानों के द्वारा धर्म और समाज की बहुमूल्य सेवा कर के परोपकार में अपनी समस्त शक्तियों का व्यय कर के, सब प्रकार से अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से विमुख होकर समाज और धर्म की आवश्यकताओं की पूर्ती को ही सदा सन्मुख

सकता है। ऐसे महानुभावों का जीवन वास्तव अपना सार्थक होता है और वे प्राप्त पूंजी अधिक बढ़ाते हैं।

इन पंक्तियों में जिनके जीवन की रूप रेखा अंकित करने का प्रयत्न किया जा रहा है वे दूसरी श्रेणी के महानुभावों में असामान्य धर्मपरायण पुरुष हैं। जैन समाज में और विशेषतया स्थानकवासी समाज में जैन धर्म-परायणता की पुण्य क्रिया से कौन अपरिचित है? सेठ साहब का अच्छा अध्ययन आत्मिक का तरह विशाल, जिनकी शान्ति स्वच्छ और मनुष्य-प्रेम की भाई उदार हैं। आपके विद्या प्रेम के अनवरत प्रमाण स्थानकवासी सम्प्रदाय में पग पग सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे विचारशील और दानवीर सज्जन का जीवन चरित्र श्रीमानों के लिये एक उत्तम आदर्श है और इसलिये उसे यहाँ अंकित करने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे चरित्र नायक के पूर्वजों का मूल निवास स्थान बीकानेर है। बीकानेर में आपके पूर्वजों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपका परिवार वहाँ के उंगलियों पर गिने जाने वाले प्रतिष्ठित परिवारों में से एक था। सुनते हैं बीकानेर शहर में जब अनेक धन कुबेरों के होते हुए भी किसी के यहाँ भी सोगा न था तब उसके प्रथम आपके पूर्वजों ने ठहरा अथवा मुसाफिरों की सुविधा का मार्ग उनके सामने प्रगट किया था। बीकानेर में आज भी उंगलियों का विशाल प्रासाद अपना मस्तक ऊँचा किये खड़ा है और आपके परिवार की कीर्ति का परिचय करा रहा है। परन्तु व्यापारिक कारणों से आपके पूर्वज मध्य प्रान्त के मुख्य नगर नागपुर में आ बसे और वहीं हमारे चरित्रनायकजी का जन्म हुआ। आपका जन्म दिवस भी वही है, जो कि जैन गुरुकुल ब्यावर के प्रथम वार्षिक महोत्सव का जिसके आप माननीय प्रमुख निर्वाचित किये गये थे। आपके पधारने की पूर्ण अभिलाषा होने पर भी दुर्भाग्य से आपकी सुपुत्री का अवसान होजाने से वहाँ पधार सके। विक्रम सम्वत् १९७७ की मार्गशीर्ष शुक्ला १ को आपने अपने पुण्य जन्म से अपने कुटुम्ब को आमोदित किया था।

आरम्भ से ही आप कुशाग्र बुद्धि थे। तत्कालीन वातावरण के अनुसार आपकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई और तदन्तर आपने अपना परम्परागत व्यवसाय में पड जाने पर भी अन्य क्षेत्रों से सर्वथा उदासीन न रहे और सच्चे श्रावक की भांति अपना जीवन यापन कर रहे हैं। ऐसे सच्चे जैन श्रावक का यह कर्तव्य होता है, कि वह परस्पर विरुद्ध रूप से धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थ का सेवन करे। जो इस प्रकार का अपना जीवन बना लेता है, वह क्रमश चतुर्थ पुरुषार्थ (मोक्ष) को भी प्राप्त कर लेता है। श्री पुँगलियाजी में यह वास्तविकता भली भांति देखी जाती है। वे धनोपार्जन करते अवश्य है, पर शुद्ध संग्रह शील नहीं। दान देने में उनका हाथ कभी कुंठित नहीं होता। दीन-हीन की सेवा, समाज की विधवा बहिनों की शुद्ध सहायता, शिक्षा-संस्था और साहित्य प्रकाशन के लिये दान देना आपका व्यसन सा होगया है। आप द्वारा दान दी गई रकम का ठीक ठीक पता नहीं लग सकता। आपका दान कीर्ति की कामना से नहीं, बल्कि शुद्ध कर्तव्य पालन के उद्देश्य से होता है। अतएव आप बहुतसी रकमें गुप्त रूप से ही प्रदान करते हैं। उन रकमों का पता पुँगलियाजी के समीपवर्ती उनके प्रायवेट सेक्रेटरी तक को नहीं है। ऐसी हालत में उनके दान का ठीक अंदाज ही नहीं लगाया जा सकता।

स्थानकवासी सम्प्रदाय का पूर्ण आधार मुनिराज है। वही सम्प्रदाय के रक्षक, विकासक और धर्मोपदेशक हैं। मुनिराजों की शिक्षा पर समस्त सम्प्रदाय की शिक्षा निर्भर है। अतएव मुनिराजों को उच्चातिउच्च शिक्षा का साज देना मानों वृक्षों के मूल को सींचना है। मूल को सींचने से सारा दरख्त आप ही आप सिंच जाता है, इसी प्रकार मुनिराजों की शिक्षा से सारा सम्प्रदाय सुशिक्षित होता है। इस तथ्य को श्री पुगलिया जी भली भांति समझते हैं और इसी कारण आप मुनिराजों की शिक्षा पर खासी रकम खरचते हैं।

साधर्मी भाइयों के प्रति आपका अनुपम वत्सलभाव है। उन्हें हर

कर्त्तव्यनिष्ठ दानवीर सज्जन बहुत नहीं है। आपका दान विवेकयुक्त और समयानुकूल होता है। शिक्षा प्रेम आपकी नस-नस में कूट कूट कर भरा हुआ है। हमें ऐसे धर्मपरायण पुरुष रत्न पर पूर्ण गौरव है। और शासन देव से प्रार्थना है, कि यह अभिमान चिरकाल तक इसी प्रकार कायम रहे।

आपकी धर्म भावना, उदारता, सरलता, निरभिमानता, स्वधर्म सेवा एवं दानवीरता खानदेश, विरार सी० पी० आदि प्रान्तों में प्रसिद्ध है। नागपुर में मुनिवरों के चातुर्मास होने में आपकी दृढ भावना और मुनि भक्ति प्रधान है। नागपुर क्षेत्र आपकी धर्म भावना के कारण ही सविशेष प्रसिद्ध हुआ है। आप में ऐसे बाल्यवय के सुसस्कार परम प्रतापी, तपोधनी तपस्वी देव पूज्य श्री १००८ श्री देवजी ऋषीजी म० सा० के धर्मोपदेश व परिचय से सुदृढ हुए है। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सब जैन समाज आपको सन्मान दृष्टि से देखती है। आपकी लोकप्रियता नागपुर में ही नहीं, परन्तु पवनवेग से दूर दूर फैल रही है। जैन ससार में इतनी लोकप्रियता प्राप्त करने वाले बहुत कम होंगे।

— — —

प्रकार से सहायता पहुंचाना आप अपना कर्तव्य समझते हैं। स्वधर्मी भाइयों को आपने अपनी उदारता का परिचय दिया है। जिनके मकान न थे उन्हें मकान दान दिया। जो अर्थाभाव के कारण अपनी संतान का विवाह न कर सकते थे उन्हें यथोचित सहायता पहुंचाई। नागपुर जैन विद्यालय में भी आपने अच्छी रकम प्रदान की है।

आपने आमगांव में, डोंगरगढ़ में रामटेक (बीस चौक तथा साहू बाजार) के दो स्थानक आदि का जीर्णोद्धार कराया तथा धर्म स्थानक के लिए नये मकान दिलाए। नागपुर इतवारी का विशाल धर्म स्थानक और व्याख्यानशाला बनवाने में भी आपका बड़ा हिस्सा है। प्रायः भारत की कोई भी जैन संस्था ऐसी न होगी, जिसमें श्री पुगलियाजी का दान न पहुंचा हो। आपका प्रकट दान जितना ज्ञात हो सकता है उससे मालूम होता है कि आपने एक लाख रुपयों से भी अधिक दान दिया है।

साहित्य प्रकाशन के लिये आपने रुपये १) निकाले हैं जिसमें से श्री सरदार ग्रंथमाला चल रही है। इसी समय आपने अपने [illegible] के नाम से जैन भवन निर्माण करने के लिए भी जैन गुरुकुल ब्यावर को १८) रुपये की उदार रकम प्रदान की है।

आपके गुप्त दान की तो कोई गिनती ही नहीं है।

आपकी दानशीलता का प्रभाव आपके सारे कुटुम्ब पर पड़ा है। यही कारण है कि आपकी धर्मपत्नी भी दान देने में उदार है। ब्यावर गुरुकुल को दी हुई १८) की रकम आप ही की है। इसके अतिरिक्त बहुत सा गुप्त दान दिया है। आपकी सुपुत्री सौ० मूलीबाई ने भी रु० ५) धर्मार्थ प्रदान किये हैं। अभी ही आपने रु० १५) की कीमत का मकान अपनी सौ० पुत्री कमलाबाई के नाम पर नागपुर श्री संघ को अर्पण किया है।

सच तो यह है कि स्थानकवासी सम्प्रदाय में आपकी कोटि के उदार

स्वर्गीया जमनाबाई, नागपुर

प्राइवेट सेक्रेटरी श्री० मूलजीभाई शाह

श्री० दानवीर पुंगलियाजी की सुपुत्री

श्री० पुंगलियाजी के नेक सलाहकार

स्वर्गीया जमनाबाई, नागपुर

प्राइवेट सेक्रेटरी श्री० मूलजीभाई शाह

संसार-स्वरूप

तत्त्व-विभाग

जैनतत्त्व का नूतन निरूपण

धर्म-विभाग

१—धर्म

इस शरीर को निभाने में जिस प्रकार अन्न, जल एवं प्राण-वायु की आवश्यकता उत्तरोत्तर अधिक रूप से होती है उसी प्रकार प्राणवायु से भी अनंत गुण अधिक आवश्यकता धर्मतत्त्व की है। धर्म की अनुपस्थिति मे समय मात्र भी शरीर का जीवित रहना सर्वथा असम्भव है। आत्म-रहित शरीर द्रव्य मुर्दा है व धर्म रहित शरीर भाव मुर्दा है द्रव्य मुर्दे की अपेक्षा भाव मुर्दा विशेष भय-कर है। द्रव्य मुर्दा द्रव्य अग्नि से जलता है और भाव मुर्दा भाव अग्नि से। (रात्रि दिवस रूप अग्नि है) द्रव्य मुर्दे से द्रव्य दुर्गंध निकलती है उसी प्रकार धर्म रहित भाव मुर्दे से विषय कषाय रूप भाव दुर्गंध निकलती है। द्रव्य मुर्दे मे द्रव्य कीडे उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार भाव मुर्दे मे भाव कीडे—ईर्षा, निन्दा, द्वेष, कलह, घृणा, मत्सर, अहभाव, तृष्णा एवं ममत्व रूप कीट भाव मुर्दे में प्रति समय उत्पन्न होते रहते हैं।

विषय सूची

धर्म-विभाग

मार्गानुसारी-विभाग

श्री० पुंगलियाजी की स्मृति की अमर यादगार

श्री० जमनाबाई पुंगलिया भवन, नागपुर

प्रस्तावना

जैनाचार्य आगमोद्धारक पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० कृत 'जैन तत्व प्रकाश' के गुजराती अनुवाद के लिये मौलिक विज्ञान की दृष्टि से उस ग्रन्थ में के तत्त्वों का नोट रूप में कुछ सग्रह किया था, किन्तु गुजराती मे उस ग्रन्थ का अनुवाद न हो सकने से उस ग्रन्थ के लिये लिखी हुई तात्त्विक नोटस् जैन प्रकाश को दी गई। प्रकाश पत्र ने उस तात्त्विक विभाग को प्रकाशित किया। उस विभाग को पुस्तकाकार रूप में देखने की गुजराती और हिंदी पाठकों की भावना जागृत होने से जैन समाज के दानवीर श्रीमान् सरदारमलजी पुगलिया की आर्थिक सहायता से यह पुस्तक हिंदी में आपके सामने उपस्थित हो सकी है।

यह सग्रह अनेक महापुरुषों के आदर्श ग्रथ रत्नों के सार रूप है। इसमे जो अच्छापन प्रतीत हो उसके यश और पुण्य के भागीदार मूल ग्रथ के लेखक और प्रकाशक महात्मन् और महाशय है। त्रुटियों के लिये सग्राहक शुद्धि के पात्र है। तदपि आशा है कि वक्ता, लेखक, विद्यार्थीगण और जिज्ञासु भव्य आत्माओं की यह पुस्तक किंचित् सेवा कर सकेगा। ऐसा अन्तर विश्वास होने से सग्राहक को सन्तोष है। ॥ ॐ शान्ति शान्ति ॥

ता० १-८-३७
रविप्रभात ७-३०

श्री महावीर भुवन, नागपुर

जैनतत्त्व का नूतन निरूपण

धर्म-विभाग

१—धर्म

इस शरीर को निभाने में जिस प्रकार अन्न, जल एवं प्राण-वायु की आवश्यकता उत्तरोत्तर अधिक रूप से होती है उसी प्रकार प्राणवायु से भी अनंत गुण अधिक आवश्यकता धर्मतत्त्व की है। धर्म की अनुपस्थिति में समय मात्र भी शरीर का जीवित रहना सर्वथा असम्भव है। आत्म-रहित शरीर द्रव्य मुर्दा है व धर्म रहित शरीर भाव मुर्दा है द्रव्य मुर्दे की अपेक्षा भाव मुर्दा विशेष भय-कर है। द्रव्य मुर्दा द्रव्य अग्नि से जलता है और भाव मुर्दा भाव अग्नि से। (रात्रि दिवस रूप अग्नि है) द्रव्य मुर्दे से द्रव्य दुर्गंध निकलती है उसी प्रकार धर्म रहित भाव मुर्दे से विषय कषाय रूप भाव दुर्गंध निकलती है। द्रव्य मुर्दे मे द्रव्य कीड़े उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार भाव मुर्दे मे भाव कीड़े—ईर्षा, निन्दा, द्वेष, कलह, घृणा, मत्सर, अहभाव, तृष्णा एवं ममत्व रूप कीट भाव मुर्दे में प्रति समय उत्पन्न होते रहते हैं।

संसार-स्वरूप

तत्त्व-विभाग

कचहरियो के द्वारों को आप खटखटाते है कि अन्य ?

धन-लोभ से प्रेरित होकर समुद्र पार के देशो मे आप घूमते हैं कि अन्य ?

सत्य, नीति एव न्याय आप मे है कि अन्य में ?

धार्मिक नियमों का पालन आप अधिक करते हैं कि अन्य ?

धार्मिक पर्व एव धर्म गुरुओं को विशेष आदर आप देते हैं कि अन्य ?

धार्मिक मर्यादा में रहने वाले आप हैं कि अन्य ?

धार्मिक बखेडे (साम्प्रदायिक कलह) आप में अधिक है कि अन्य मे ?

उपर्युक्त प्रश्नों के सन्तोष जनक प्रत्युत्तर देने मे समर्थ समाज के मनुष्यों मे ही धर्मतत्त्व की उपस्थिति है। फिर चाहे वे मनुष्य किसी भी जाति के या किसी भी देश के हों। और अपने धर्म का नाम भी चाहे सो रखते हों। वास्तव में वे ही शुद्ध धार्मिक आर्य एव आस्तिक हैं मोक्ष के पथ मे स्थित हैं। इससे अतिरिक्त समाज पवित्र देश जाति व धर्म की बाह्य छाप लगाये हुए भी अधार्मिक अनार्य एव नास्तिक है।

जाति भोज के समय पर मिष्टान्न उडाने का व मनोहर वस्त्रा भूषणों को परिधान करने का तीव्र भाव उत्पन्न होता है वैसा ही तीव्र भाव धर्म क्रिया मे कभी प्रादुर्भूत होता है क्या ?

तीव्र जिज्ञासा के बिना धन भी नहीं मिलता है तो फिर धर्म जैसी अमूल्य चीज कैसे मिले ?

समस्त विश्व, धर्म के ऊपर ही अवलम्बित है। पशुओं में संततिरक्षा का धर्म है पक्षी व विकलेन्द्रिय में अण्डों की रक्षा का धर्म है। जंगली मनुष्यों में कुटुम्ब रक्षा रूप धर्म है। राज्य समाज एवं जाति का नियमन भी धर्म पर निर्भर है। धर्म के अभाव से सर्व व्यवस्था नष्ट होकर मानव संसार पशु संसार से भी अधिक बदतर क्षुद्र एवं भयप्रद बनजाता है। अतएव विश्व के समस्त व्यवहार में धर्म ही ओत प्रोत हो रहा है।

पवित्र आचार, पवित्र विचार एवं पवित्र अंतःकरण रूप त्रिवेणी के संगम होने से धर्म तीर्थ की प्राप्ति हो सकती है।

धर्म की परीक्षा

समस्त समाज के मनुष्य निज २ को धर्मात्मा कहलाने में गौरव लेते हैं उन महानुभावों को निम्न प्रश्नों का विचार कर उत्तर देना चाहिये।

परोपकारिणी संस्थाऐं आपके समाज में है कि अन्यधर्मियों में?

दान का सद्गुण आप में अधिक है कि अन्यधर्मियों में?

फिजूलखर्ची एवं विलास के साधनों की विपुलता आप में है कि अन्यधर्मियों में?

महारम्भी धंधावाले व्यापारों को उत्तेजन देने वाले आप है कि अन्य?

हिंसक पदार्थों का व्योपार व व्यवहार आप में विशेष है कि अन्य में?

वस्त्राभूषण व बाह्याडम्बर का मोह आप में अधिक है कि अन्यमें?

धन के अभाव मे इस जीव ने रो २ कर इतने अश्रु गिराये हैं कि जिस अश्रुणोदधि मे खुद आप ही अनन्तपार बह गया किन्तु धर्मतत्व के लिये अमृत तुल्य एक भी अश्रुविन्दु कभी गिराया है क्या ? स्त्री पुत्र एव धन के लिये मनुष्य अश्रुपात करता है तो भी निराशा मिलती है तो जरा विचारिए, कि धर्म के लिये कितने हार्दिक अश्रुवर्षण की आवश्यकता है ? धन प्राप्ति के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है उससे क्रोडगुणा अधिक पुरुषार्थ करने से ही धर्म प्राप्ति हो सकती है। रोटी के टुकडे के लिये रात दिन अविश्रांत परिश्रम करने पर भी पूर्ण प्राप्ति नहीं होती, तो कम पुरुषार्थ से धर्म प्राप्ति कैसे हो सकती है ? नादान लडका जिस तरह खिलौने के लिए लाख रुपयों का हीरा दे देता है वैसे ही अज्ञानी जीव विषय विलास के साधनों की प्राप्ति के हेतु धर्मरूप हीरा व मानव भवरूप चिंतामणी रत्न वेच डालता है।

धन के लिये जितनी व्याकुलता है उतनी ही व्याकुलता धर्म के लिये जागृत होवे तभी धर्म की प्राप्ति होती है। धार्मिक जीवन व्यवहार मे कथानकरूप होना चाहिये।

वायु बह रहा हो तो फिर पखे की कौन परवाह करे ? सिर्फ रोगी। वैसे ही सुख के अभाव से रोग के समय मे ही धर्म भावना के लिये धूमधाम मचाई जाती है।

स्वय धर्म आराधना करे सो उत्तम।
प्रेरणा से करे सो मध्यम।
प्रेरणा से भी न करे सो अधम।

विषय कषाय की प्रवृत्ति ही धर्म से पराङ्मुख होने मे कारण भूत होती है। धर्म के अभाव मे ही मनुष्य मे पाशविकता प्रकटती

व्यापार करने का मुनाफा व घाटा व्यापक हृदय पर हुए विषाद का जो असर उपजाता है वही असर आस्तिकों को धर्म के संयोग वियोग से होता है। किन्तु वर्तमान मानव समाज ने तो विषय कषाय के साथ पाणिग्रहण कर लिया है और धर्म तत्त्व के विषय में विपरीतावस्था में है। मनुष्यों का मनुष्यत्व धर्म तत्त्व में रहा हुआ है।

जंगली प्रदेश में जवाहिरात का मूल्य नहीं है वैसे ही जड़वाद के जमाने में धर्म तत्त्व का मूल्य नहीं हो सकता। मनुष्य सुख की इच्छा करते हैं परंतु सुख के संपादन कारण रूप धर्म की अवहेलना करते हैं। कैसी आश्चर्य जनक घटना है!!

बिना स्वार्थत्याग के धर्म की आराधना कभी नहीं हो सकती। संसार में अपना सर्वस्व देकर धर्म आराधना करने वाला सुसाध्य रोगी है। अनुकूलतानुसार धर्माराधन करने वाला कष्टसाध्य रोगी है और लोक व्यवहार से धर्म आराधना करने वाला असाध्य रोगी है।

धर्म के अभाव से मोहरूप उन्माद का रोग, रागरूप ज्वरका रोग, द्वेषरूप शूलरोग, विषयकषायरूप खुजली का रोग, ईर्षा व निन्दारूप रक्तपात का रोग, अज्ञान रूप अंधत्व और प्रमादरूप जलोदर रोग इत्यादिक नानाविध रोग उत्पन्न होते हैं।

अगर धर्म के लिए प्राण जाने को तत्पर हो तो बीज बोने में भी तत्पर हो जाओगे। धन की अपेक्षा धर्म को विशेष आदर देते रहो। धर्म के सत्यरूप समाज की सेवा करो।

समुद्र में रहा हुआ पत्थर ज्यों पानी से मृदु नहीं होता है वैसे आरम्भ परिग्रह में आसक्त जीव धर्मोपदेश से मृदु नहीं होता' ऐसा श्री स्थानांग सूत्र में चतुर्थ का स्पष्ट कथन है।

नाम धर्म। धार्मिक जीवन ही नैसर्गिक जीवन है। शेष जीवन एव निरर्थक है।

पशुगण अपने जीवन मे शरमिंदा नहीं होता वैसे ही धर्म रहित मनुष्य भी अपने जीवन से नहीं शरमाते। धर्मरहित मनुष्य केवल पशु भूमि की शोभारूप है। अगर यों कहा जाय कि धर्महित मनुष्यों का अधिकाश भाग पशुभूमि को भी लज्जित कर रहा है तो भी अत्युक्ति न होगी। मनुष्य जितने अश से पशु कोटि मे है उतने अंशों मे वह विषयकषाय की प्रवृत्तियो से लज्जित नहीं होता। जितने अश मे पाशविकता का अभाव है उतने अश मे अपने अधर्म मय जीवन के लिये लज्जाव पश्चात्ताप है।

जड एञ्जिन मे जिस प्रकार अग्नि एव पानी की शक्ति काम कर रही है, उसी प्रकार जड शरीर मे शक्ति रूप धर्म व पुण्य है। धर्म को आदर देवे या नहीं किन्तु वह हमारे हर एक श्वासोच्छ्वास मे सहायक है। विना धर्म के मनुष्य का मूल्य मांस के पिण्ड से अधिक नहीं है। धर्म के ही प्रभाव मे मांस का यह लोचा पृथ्वी पर गिर पडेगा।

धर्मतत्त्व पशुओं में नहीं हैं। फिर भी जो मनुष्य प्राप्त शक्ति का सदुपयोग नहीं करता है वह पशु से भी निकृष्ट क्यों न कहा जाय? धर्म के शरण विना लेश मात्र भी सुख नहीं मिल सकता। धर्म कोई कटु औषधि नहीं है कि जिसका सहारा सिर्फ दुःख मे ही लिया जावें। धर्म यह कोई आभूषण नहीं है कि जो मात्र पर्व दिनों में ही पहिना जाय।

अधर्म राय की सवारी पधारे तब उस के निमित्त अच्छी सड़क (Road) बनाई जावे उस पर मखमल बिछाया जावे और

है। धर्म का नियमन काल्पनिक नहीं किन्तु शाश्वत है। धर्मसार यह पूर्वाचार्यों का किया हुआ अद्भुत आविष्कार है। जितने अंशों में धार्मिकता का अभाव उतने ही अंशों में पापात्मिकता का प्राकट्य। जितने अंशों में धर्म भावना उतने ही अंशों में चैतन्य-सत्व। पुण्यानुबन्धीपुण्य के उदय से ही धर्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

धर्म के बिना पुण्य नहीं और पुण्य के बिना शाता नहीं। समस्त सुखों का धाम व सुख की जड़ धर्म और सर्व दुःखों का धाम अधर्म है।

समुद्र को पार करने के लिये नौका का आविष्कार किया गया है उसी तरह संसार समुद्र में गिरने के लिये ज्ञानी पुरुषों ने धर्म रूप प्रवहण (नाव) का आविष्कार किया है। शुद्ध हवा के अभाव से रोग बढ़ता है वैसे ही धर्म के अभाव से आत्मा में पापरूप रोग बढ़ता है। निरक्षरों (अनपढ़) के ज्ञान पोथी में लकीरें दिखाई देती है वैसे ही हीनपुण्य जीवों को धर्मतत्त्व निर्माल्य सा मालूम होता है।

धर्मतत्त्व के लिये देव भी साध करते हैं, किन्तु अज्ञानी धर्म भावना का उपहास करते हैं।

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्तियाँ—व्योपार,गुमास्ती दलाली आदि मे केवल धन कमाने का ध्येय रहता है वैसे ही मनुष्यों की समस्त प्रवृत्तियों में धर्म का ध्येय होना चाहिए। अन्यथा बिना माल के थैले (बारदान) के समान मनुष्य की निमाल्य स्थिति समझना चाहिये। मनुष्यों के चारित्र का विकास करने की कला उसी का

यह नींव है और धर्म दीवार है नींव के बिना दीवार नहीं टिकती।

धन के अभाव से नहीं किन्तु धर्म के अभाव से शर्मिंदा होना चाहिये। अधोगति के कारणों को नष्ट कर दे उसी का नाम धर्म धार्मिकता के लक्षण शान्त स्वभाव एव निरभिमानता है। धर्म बुद्धिग्राह्य नहीं किन्तु हृदयग्राह्य है। पवित्र विचार एव पवित्र आचार यही धार्मिक जीवन है।

धर्म-रहित भिक्षुक।

धर्म धन के विना आत्मा अनत काल से भिक्षुक (मँगता) बना हुआ है। अनत काल से भीख माँगते २ पुरुषार्थ हीन और रोगी बना हुआ है। (जिस भाव रोग के सम्बन्धमे आप पहिले पढ चुके हैं)। ऐसे धर्म रहित भिक्षुक महा-पुरुषों के लिये दया पात्र हैं, धर्मांध जीवों के लिए हास्यास्पद हैं और विषय-कषायी जीवों के लिए क्रीडा स्थान है।

ऐसे धर्म-हीन भिक्षुक जीव की तृष्णारूपी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती। अतः वह सर्वथा अनाथ है। पापरूपी भूमि पर शयन करने से ऐसे भिक्षुक की हड्डियाँ व शरीर घिस गए हैं, कर्म-रूप धूलि से अति मलीन होगया है, एव विषय-कषाय की भिक्षा सदा माँगते रहने से चौदह राज-लोक में भटक रहा है। उसके पास भीख मांगने के लिए आयु कर्म-रूपी फूटी हण्डी है। 'स्वर्ग नहीं है, नरक नहीं है, पुण्य नहीं है' ऐसी २ मिथ्या कल्पना रूपी बालक इस भिक्षुकको सताते हैं और उससे पाप-वृत्ति करा कर नरकादि नीच गति में भेजते हैं।

धर्मात्मा को अपमानित कर दूर दूर किया जाय यह कैसी घोरतम अज्ञानता !! धर्मतत्त्व की अवहेलना से ही अधर्म में प्रवेश होता है। धर्म की अवहेलना ही दुःख एवं दारिद्र्य का मूल है। धर्म रहित जीवन सब पर उभय के लिये नितान्त भयप्रद है। इन बातों पर विचार करते हुए निर्णय करो कि धर्मस्थान ही हमारी रक्षा के लिये किले के सदृश है समस्त जाति समाज व देश को एक सूत्र में पिरोने वाला एक धर्म ही है। मानवसमाज में से धर्मतत्त्व यदि निकल जाय तो समझ लो कि मनुष्य जंगली पशुओं से भी विशेष भयंकर हो जाय।

साम्प्रत समय का जड़वादी समाज ऐसा पामर बन गया है कि धन के समान प्रत्यक्ष लाभ का अनुभव न हो तो धर्म की आराधना नहीं करता उदर निर्वाह के लिये आवश्यक भी कमाई के वास्ते दासत्व करता है। धर्म एवं धर्मात्मा के स्थान पर धन व धनवानों की पूजा हो रही है। ज्ञान व क्रिया के स्थान में सोना व चांदी में ही धर्म माना जाता है। परन्तु स्मरण रहे कि, विश्व में सुख शान्ति का आधार स्तम्भ केवल एक धर्म ही है। यदि धर्म का अभाव हो तो सारा संसार नष्ट हो जाय।

धर्म स्थान पवित्र है तो धर्म करने वालों में पवित्रता आनी चाहिए। धर्म की जिज्ञासा रखने वालों को चाहिये कि वे अपने को रजकण से भी लघु समझें। जिस में लघुता का भाव नहीं वह धर्म का अधिकारी भी नहीं। बाजार में गरीबों के साथ ठगाई करना और धर्मस्थान में ज्ञान ध्यान की बातें बनाना यह तो बाजारू ठगाई से भी अधिक भयंकर है।

योग्य कार्य ही धर्म और अयोग्य कार्य ही अधर्म है। मनुष्य का हित करना इसमें सर्व गुणों का समावेश हो जाता है। नीति

का भागी बनता है। सत्य-चारित्र आदि पथ्य भोजन जो कि रोगों का नाश करने वाला है उस पर उदासीनता प्रकट करता है। माता, पिता, बन्धु, मित्र, पुत्र, पुत्री, देव, गुरु, राजा और सब परिवार एक धर्म ही है। धर्म-रूप कर्णेन्द्रिय के द्वारा तमाम शास्त्रों का अर्थ सुनना सुलभ होता है। धर्म तीनों लोकों को हस्तामलकवत् दिखाने में समर्थ–कल्याणदर्शी नेत्रों के समान है। धर्म को रत्न-राशि की उपमा दी जाती है। अतः विश्व भर मे सर्वोत्कृष्ट स्थान केवल धर्म का ही है।

जब परोपकारी महात्मा भिक्षुक को सदुपदेश देते हैं तब वह पुण्यहीन पामर आत्मा विपरीत विचार करता है, कि मुनिराज अपने आत्म ध्यान से च्युत होकर मेरी इच्छा न होने पर बलात् मुझको व्याख्यानादि श्रवण करने के लिये क्यों नियम आदि कराते हैं ? क्या उपदेश के द्वारा व मुझको जाल में फँसाना चाहते हैं ? ऐसे भ्रम में पडकर वह गुरु को अपमानित करता है। इससे गुरु विशेष रूप से आत्म ध्यान में लीन हो जाते है। ऐसे भ्रम एवं अज्ञान को देखकर महात्माओं को महद् आश्चर्य होता है।

शब्द, रूप गन्ध रस व स्पर्श आदि तुच्छ इन्द्रियग्राह्य इस भिक्षुक आत्मा को अधिक प्रिय है। यह भिक्षुक अपनी भिक्षा का अन्न अन्य कोई न छीन ले इस लिए सदा भयभीत एवं सावधान रहता है। यह विषय-कषाय का मलिन भोजन करने से बुद्धिहीन होगया है, जिससे सम्यक् विचार भी नहीं कर सकता। विषय-कुपथ्य भोजन से उसके शरीर में अष्टरूप कर्म उदय का रोग पैदा होगया है। और उस अजीर्ण-जन्य शूल रोग की भांति नरक व तिर्यंच गति की पीड़ाएँ सहता है। महा मोह निद्रा से उसके विवेक चक्षु बंद होगए हैं। विषय कषाय के कुपथ्य भोजन से उसको चारित्ररूप पथ्य भोजन रुचिकर नहीं मालूम होता। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग व द्वेष के प्रहार से यह भिखारी पीड़ित हो रहा है, भान भूल गया है। ऐसी निराश्रित दशा में भी स्त्री पुत्र व धन मिल जाय तो परम सन्तोष मानने की तृष्णा करता है। अपनी रक्षा के लिये दास-दासी रखता है। इसके अलावा यह भिक्षुक उपकारी ज्ञानी पुरुषों से भी सदा भय-भीत रहता है। यह सोच कर कि, शायद उनके उपदेशों से या लोक लज्जा से दानादि शुभ कार्यों में द्रव्य व्यय न करना पड़े। इस भय से सत्पुरुषों का समागम भी नहीं हो सकता। धन का भिक्षुक वह धनिक धन के बंधन में यहां तक फँस जाता है कि स्त्री धन पुत्रादि का मोह कभी नहीं छोड़ सकता। धन का भिक्षुक धन को परमात्मा की मूर्ति मान कर स्वयं धन का उपासक योगी बनकर उसकी आराधना करता है। ऐसा भिक्षुक चौदह राजलोक के कोने २ में भिक्षा के लिए चक्कर लगा कर अष्ट कर्म रूप पाथेय (भाता) को जो कि भव रोग का मूल है, अपने भिक्षा पात्र में भरता है। इसमें उसको परमानंद की प्राप्ति होती है। कर्म रूप पाथेय यद्यपि उसके रोगों की वृद्धि करता है तो भी अज्ञानतावश पुनः वैसा ही कारक रोग एवं दुःख

हुई कृषि एव बोये हुये बीजों के फल प्राप्ति करने का यह समय है। अन्य योनि के अनन्त जीवों से भी मानव भव सर्वोत्कृष्ट एव प्रधान है, अतः इस भव मे कार्य भी उत्कृष्ट एवं प्रधान करने चाहिए।

उछाला हुआ पत्थर आकाश मे रहे इतनी स्थिति मनुष्य भव की, और फिर जमीन पर पत्थर के रहने की स्थिति के बराबर स्थावर व अन्य जीवायोनि की स्थिति समझनी चाहिये। मानव भूमि यह मोक्ष भूमि है। आत्मगुण के विकाश की परीक्षा देने की भूमि है। मानव भव जीव और शिव के बीच का पुल है। मानव भवरूप कल्पवृक्ष मिलने से मनोवांछित फल मिलते हैं। कोई स्वर्ग मांगते हैं कोई नर्क। सब अपनी २ योग्यता के अनुसार ही मांगते हैं। तदनुसार ही गति होती है।

धर्माराधन मनुष्य भव मे ही हो सकती है। इसके विना जीव अनेक योनियों में अपने पापो के फलों को भोगते हैं। बछड़ों को बाल्यावस्था में माता का दूध नहीं मिलता है, युवावस्था मे जननेन्द्रिय काटी जाती है। उन्हें क्षुधा तृषा से पीड़ित होकर भी गाडी का भार वहन करना पडता है। उन की कोमल नाक को छेद कर उसमें नाथ डाली जाती है। जीवन पर्यंत बेचारों को असह्य मार सहनी पडती है। मृत्यु के बाद भी उनकी आंतों के रुइ धुनने के लिए तार बनाये जाते है। उनके चमडे की अनेक चीजें बनाई जाती हैं, उनको कत्ल किया जाता है। इस प्रकार से अनेक प्रकार से यातनाए दी जाती हैं। तात्पर्य यह है कि अधम जीवायोनि में उत्पन्न होने वाले जीवों को जीवन भर दुख भोगना पडता है। और मृत्यु के अनन्तर भी उनके शरीर के तत्वों की दुर्दशा की जाती है। बछड़ों के सदृश निर्दोष एव अत्युपयोगी जीवों की जब

मानव-भव ।

ज्ञानी पुरुष समुद्र को रत्नों की निधि समझता है किन्तु अज्ञानी उसे केवल नमक को देने वाला मानता है । इसी तरह ज्ञानी पुरुष मनुष्य जन्म को मोक्ष का साधन भूत और अज्ञानी विषय भोग का साधन भूत समझते हैं । देवों को भी दुर्लभ मनुष्य-भव यदि धर्म रहित है तो देवों को तो क्या ? किन्तु नारकी के लिए भी अनिन्दनीय व अधम बन जाता है । पशुओं में विषय कषायों पर अंकुश रखने की शक्ति नहीं है किन्तु मनुष्य में है । यही मनुष्य की विशेषता है । यह विशेषता न हो तो मनुष्य पशु के समान ही है । मनुष्य अपना मस्तक ऊंचा रख के चलता है किन्तु पशु नीचा करके । उन्नत मस्तक वाले मनुष्य का स्वभाव स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करने का है । मनुष्य देह से बढ़कर कोई शरीर तीन लोक में नहीं है ।

पवित्र विचारों से ब्राह्मण, आश्रितों को सहायता देने से क्षत्रिय परोपकारार्थ धन संचय करने से वैश्य और विश्व की सेवा करने से शूद्र ये मनुष्य समाज के चार अंग हैं । इसी तरह मनुष्य के शरीर में भी परोपकार मय जीवन के सूचक चार अंग हैं मस्तिष्क, भुजा पेट और पैर ये चारों अवयव परोपकार मय जीवन बिताने की प्रेरणा करते हैं ।

मनुष्य-देह भव-सागर से तिरने के लिए नाव के समान है । मानव-भूमि देव भूमि से भी उत्तम है । क्योंकि मनुष्य अपना भविष्य इच्छानुसार बना सकता है । यह शक्ति देवों में तो क्या अन्य किसी भी जीव योनि में नहीं है । मनुष्य भव से अधिक महत्व किसी देव का भी तीन लोक में नहीं है । अनेक भवों में की

भगाता है, एव वापिस न आवे इस हेतु से मार २ कर उस को निःसत्व बना देता है। सहपत्नीवत् प्रथम कुटुम्ब के साथ दूसरा व तीसरा कुटुम्ब द्वेष व ईर्षा करते हैं। तीसरे नम्बर के अज्ञान कुटुम्ब का पहिले की साथ अनादि काल से वैर है। दूसरे व तीसरे नम्बर वालों की आकर्षण शक्ति अधिक है अत उनका सम्मान होता है और पहिले नम्बर के कुटुम्ब को आकर्षण रहित एव निर्धन समझ कर उसे तिरस्कृत कर भगा देते हैं। दूसरे नम्बर का कुटुम्ब परलोक में साथ रहता है। जीव अज्ञान के वश सुखदायी कुटुम्ब का तिरस्कार और दुःखदायी कुटुम्ब का बहुमान करता है और उसकी रक्षा व सेवा के लिये मनुष्य अपनी तमाम आयु बिता देता है।

५—मनुष्यत्व।

वकील, बैरिस्टर, सॉलीसीटर, डॉक्टर, वैद्य आदि अनेक विषयों की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाले हजारों लोग प्रति वर्ष दिखाई देते हैं। परन्तु मनुष्यत्व की परीक्षा लेने देने वाला या इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होने वाला एक भी मनुष्य नजर नहीं आता। मनुष्यत्व की सच्ची शिक्षा देने वाले स्कूल, कॉलेज एव अध्यापक व पाठ्य पुस्तकें आदि भी दृष्टि गोचर नहीं होतीं। समस्त परीक्षाए व पदवियों की अपेक्षा मनुष्यत्व की परीक्षा एवं पदवी महान् है। इस पदवी को प्राप्त करने वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। मनुष्याकृति मे घूमते फिरते करोड़ों मनुष्य दृष्टि गोचर होते हैं। किन्तु आकृति के अनुरूप हृदय वाले, मनुष्यत्व सम्पन्न—मानवता के गुणों से अलकृत प्राणियों के दर्शन अति दुर्लभ है। समस्त शिक्षाए वाचन, मनन, लेखन, चिन्तन, ये सब एक मात्र मनुष्यत्व प्राप्त

इस प्रकार दुर्दशा की जाती है तो पाप मय जीवन बिताने वा
मनुष्यों की दुर्दशा इससे भी अधिक होनी चाहिये यह निर्विवा
सिद्ध बात है। शान्त स्वभाव, परोपकारी जीवन एवं सद्गुणों की
प्राप्ति ही मनुष्य भव में उत्तम वस्तुएँ हैं। जब समुद्र में स्थि
सर्वक्षाइट का छोटा सा दीपक भी लाखों मनुष्यों की जान बचाता
है तो मनुष्य जैसे उत्तम भव में परमार्थ करना चाहिये। इस सर्व
समझा जा सकता है।

मनुष्य के तीन प्रकार के कुटुम्ब होते हैं।

१ देव गुरु, धर्म क्षमा नम्रता सरलता, सन्तोष ज्ञान, दर्शन, चारित्र, दान शील तप भावना आदि

२ क्रोध मान माया लोभ, राग द्वेष ईर्षा और अज्ञान आदि।

३ माता पिता भाई, बहिन पुत्र पुत्री स्त्री, सास ससुर आदि।

पहिले का कुटुम्ब मनुष्य के हित की चिन्ता करता है। दूसरा अहित का चिंतक और तीसरा कुटुम्ब अल्पकाल के लिए मिलता है। वह अल्पकाल के लिए ही रहता है।

मृत्यु के बाद अल्प काल के लिए प्राप्त होने वाला कुटुम्ब नहीं छूट जाता है। एवं दूसरे नम्बर के कुटुम्ब को बढ़ाने में सहायता करता है। इतना ही नहीं किन्तु पहिले नम्बर के कुटुम्ब का अपमान करा तीव्र विरोध करता है। मनुष्य प्रथम नम्बर के कुटुम्ब के साथ प्रेम करे तो तीसरे नम्बर का कुटुम्ब दूसरे की सहायता से उस मार

को चाहिये। वे समस्त विश्व की सेवा अभेद भाव से करे "वसुधैव कुटुम्बकम्" इस सूत्र को सदैव स्मरण मे रक्खें। इस विशाल भावना मे जितनी सकुचितता रहेगी, उतने अशों में मनुष्यत्व मे भी अपूर्णता रह जायगी।

भद्रता, विनय, दया और निरभिमानता ये चारों सद्गुण मनुष्य के स्वभाव में होने चाहिये। इन सद्गुणों विना यह अपूर्ण है। ऐसे मनुष्यों को शास्त्रकारों ने भाव से नरक तथा पशुयोनिके जीव कहे हैं।

८-सत्य श्रीमन्ताई

हीरे व सोने में सच्चा खजाना नहीं है, पर सच्चा खजाना तो अपनी आत्मा में है। जो कम से कम सम्पत्ति से सन्तोष मान ले वह बड़े से भी बड़ा श्रीमन्त है। निर्धनता में भी हृदय की विशालता ही सच्ची धनिक-वृत्ति है। अपना राज मुकुट अपने ही अन्तःकरण में है। उस मुकुट को हीरे मोती के शृगार की आवश्यकता नहीं होती। ऐसा मुकुट शायद ही किसी राजा के भाग्य मे होगा। उस मुकुट का नाम है सन्तोष व चारित्र। सदाचार ही सब से बड़ा धन है। शरीर की सुदृढ हड्डियां हीरे से भी अधिक मूल्यवान् हैं। सदाचार, पवित्रता, नम्रता व परोपकार ये सत्य, द्रव्य हैं। लोभ-असन्तोष उत्तरोत्तर बढ़ने वाला राक्षस है। चारित्र की वृद्धि से ही श्रीमताई की वृद्धि होती है। ससार के धनी मृत्यु के समय सब कुछ छोड कर मृत्यु को प्राप्त होता है।

सद्गुणों की वृद्धि एव कमी के प्रमाण में ही श्रीमन्ताई या दीनता का नाप है। क्षमा, विनय, सरलता, सन्तोष व

करने के लिये ही है। सूर्योदय से समग्र अन्धकार का नाश होता है, इसी तरह मनुष्यत्व की प्राप्ति से सर्व दोषों का नाश हो जाता है। मनुष्यत्व जीवन का सर्वोच्च स्थान है। मनुष्यत्व रहित जीवन नीचातिनीच पशु पक्षियों से व नारकी से भी निकृष्ट है। मनुष्यत्व की प्राप्ति होने से उसमें सब प्रकार के सद्गुणों के बीज बोये जाते हैं। शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा से मनुष्यत्व की रक्षा अधिक करनी चाहिये। मनुष्यत्व ही सच्ची स्वस्थ दशा है।

भिन्न २ आकृतियों के अनेक मनुष्यों को देख २ कर अच्छा चित्रकार उनमें से सर्व सुन्दर अवयव एक ही चित्र में अंकित करता है इसी तरह भिन्न २ मनुष्यों के सद्गुणों का समुदाय एक ही व्यक्ति में प्रादुर्भूत होना चाहिये।

वृक्ष की लकड़ी से समुद्र तिरने की नौका बनती है, वैसे ही मानव वृक्ष की सद्गुण रूप लकड़ी में से संसार समुद्र को पार कराने वाली जीवन नौका बनानी चाहिये।

पृथ्वी पानी अग्नि, वायु और वनस्पति रूप स्थावर जीवों का जीवन मनुष्य जीवन के लिये अति उपयोगी है तो मानवजीवन समस्त विश्व के लिये विशेषतः उपयोगी होना ही चाहिये।

पशु पक्षी अपना अपनी सन्तान का एवं अपनी जाति का श्रेय अपने सर्वस्व का भोग दे कर भी करते हैं। मनुष्य जहाँ तक स्वकुटुम्ब व स्वजाति का श्रेय करे वहाँ तक तो उसको पशु जीवन के समान ही मानना चाहिए।

जिस प्रकार चन्द्र सूर्य अभेद भाव से प्रकाश देकर विश्व की सेवा कर रहे हैं उसी प्रकार मनुष्यत्व की प्राप्ति के इच्छुक मनुष्य

७—दान ।

तीर्थंकर भगवान के हृदय में जब आत्म कल्याण की भावना जागृत होती है, तब वे संसार का मार्ग-दर्शन करने के लिये सर्व प्रथम दान देना आरंभ करते हैं। इस प्रकार वे मोक्ष के चार मार्ग (दान, शील, तप और भावना) में से सर्व प्रथम दान धर्म की स्थापना करते हैं।

दान का अर्थ है तन, मन और धन को परोपकार के लिये अर्पण करना।

इस प्रकार की परोपकार वृत्ति ही "शील" है। दान के गुणों से असद्गुणों का नाश होना ही 'तप' है।

दान देने का पवित्र विचार ही 'भावना' है। इस प्रकार दान के सद्गुणों से मोक्ष मार्ग के चारों गुणों की आराधना होती है। शरीर में घाव लगने से निकले हुये रक्त की पूर्ति स्वयं हो जाती है इसी प्रकार दान देने से किसी प्रकार भी सम्पत्ति मे कमी नहीं होती। वृक्ष अपने पत्तों का त्याग करता है, तो प्रकृति उसे नूतन पल्लवों से विभूषित कर देती है। उसी प्रकार वे व्यक्ति जो धन का सदुपयोग करते हैं उन्हें लक्ष्मी स्वतः प्राप्त हो जाती है। अपनी धन गंगा से सर्वतोन्मुख परोपकार रूप नहरें निकाल कर संसार रूप क्षेत्र का सींचन करते हैं। इस उदारता से हृदय विकसित होता है और उसके अभाव से संकुचित होता है।

दान परोपकार नहीं है किन्तु आत्मोपकार है। श्रीमानों का उद्धार करने के लिये ही गरीब प्रजा का आविर्भाव होता है। उनकी सहायता से ही तुम्हारा कल्याण निश्चित है। यदि गरीब

सहिष्णुता ये सद्गुण कुबेर के भण्डार से भी अधिक मूल्यवान होते हैं। सुवर्ण मोहरों का संग्रह करने के बजाय गुणरूप मणि विचारों का संग्रह करना विशेष हितकर है। इससे शाश्वत एवं सच्चे सुख की प्राप्ति होगी। धन से रहित मनुष्य दीन है मगर जिसके पास पैसे के सिवा और कुछ भी (चरित्र) नहीं वह तो महा दीन है। गुण दृष्टि यह महान् सम्पत्ति है। दोष दृष्टि में महान् दारिद्र्य भरा हुआ है। जो समस्त पृथ्वी को जीतने वाला चक्रवर्ती राजा हो जाय, किंवा समस्त जगत् की धन सम्पत्ति प्राप्त कर ले तो भी यदि उसके पास चारित्र रूप आत्मिक लक्ष्मी न हो तो उस का धन धूल के समान है। धन रहित होने पर भी चारित्र धन का श्रीमन्त बनना चाहिये। लक्ष्मी तृष्णा की फांसी है।

करोड़ों रुपयों का ढेर होने पर भी मनुष्य कंगाल होता है। सदाचार रूप धन के सामने हीरे मोती व माणिक का मूल्य कंकर से अधिक नहीं होता। चारित्र को ही निजी सम्पत्ति बना लो, फिर निर्धनता का स्पर्श भी न होगा। सद्गुण रूप दिव्य सम्पत्ति को अपने हृदय की तिजोरी में भर लो। यह चारित्र धन कभी नष्ट न होगा। यह सम्पत्ति हृदय बैंक में जमा रखने से सूद भी सब से अधिक मिलेगा। राज मुकुट धारण करने वालों की अपेक्षा सदाचारी विशेष सत्तावान् है। रूप गुण की अपेक्षा भी सदाचार सर्वतो भावेन श्रेष्ठ है।

है। दान स्वाभाविक होना चाहिये। उस कार्य से गुणवान होने का घमण्ड रखना यह लज्जास्पद है। तेल एवं बत्ती के नष्ट होने से ही प्रकाश का आविर्भाव और तिमिर का नाश होता है। वैसे ही धन के सद्-व्यय से (दान से) आत्मा में सत्य धर्म का प्रकाश प्रकट होता है। वर्तमान युग में दान ही सर्व श्रेष्ट धर्म है। कलि-युग का महा धर्म दान ही है।

गरीबों का आदर करके उनके उद्धार के लिये दान करते रहो, क्यों कि दान ही सच्चा आत्मोपकारक है। किसान अपने खेत मे धान्य बोता है, व्यापारी व्यापार मे धन लगाता है या बैंक मे जमा करता है उसमे जिस प्रकार स्वार्थ है, उसी प्रकार दान में भी अपना ही परम स्वार्थ है। दान यह अपने सद्गुणों का विकास करने की कसरत है। लाखों रुपयों का दान करना सहज है, किन्तु दान से मिलते हुए मान का दान करना मुश्किल है। योग्य क्षेत्र में दान देकर तुम्हारा भव का पाथेय (भाता) उन दान के अधिकारियों को उठाने के लिये सुपुर्द कर दो। पर भव में वह तुम को सुरक्षित स्थिति में निःसन्देह मिल जायगा।

पानी में डूबते हुए को शक्ति होने पर भी न बचा लेना घातकीपन है। इसी तरह सयोग मिलने पर योग्य पात्र को दान न देना भी घातकीपन है। भोग का परिणाम विनाश और दान का परिणाम अमरत्व है। अपनी समस्त समृद्धि, कलाए व चातुर्य का सद्व्यय दान मे करना चाहिये। दाहिने हाथ से किये हुए दान का पता बांये हाथ को भी न लगाना चाहिये। दान धर्म मर्यादातीत है। जगत् में प्रकाश का श्रेय सूर्य को है। आत्मा में प्रकाश का श्रेय दान धर्म को है।

प्रजा न हो तो तुम्हारी लक्ष्मी का सदुपयोग कैसे हो सकता है ? जो सम्पत्ति भोग विलासों में व्यय होने वाली थी और जिससे दुर्गति मिलने वाली थी उसी सम्पत्ति का दान देने से (दीन हीन प्रजा के लिये उपयोग में आने से) पुण्य बंध होता है और सद् गति की प्राप्ति होती है। आपको गरीब प्रजा की सहायता के लिए उचित क्षेत्र मिला है इसके लिए अपने आपको कृतार्थ समझिये और उस क्षेत्र में कूद पड़िए। वर्तमान में दान का क्षेत्र इतना संकुचित हो गया है कि दानवीर कहलाने वाले अपने आप को इस नाम से ही कृतार्थ समझ लेते हैं। और करोड़ों की सम्पत्ति के मा लिक होते हुए भी अपनी कीर्ति की लालसा से मात्र कुछ हजार रुपयों का दान देकर अनंत कीर्ति बटोरना चाहते हैं। यह लालसा जनित दान सच्चा दान नहीं कहा जा सकता। जलाशय का प्रति बद्ध जल गन्दा हो जाता है किन्तु सतत बहने वाली सरिता का जल विशुद्ध रहता है। इसी प्रकार कृपण व्यक्ति का धन जलाशय के जल के समान एवं उदार व्यक्तियों का धन नदी के निर्मल जल के समान होता है।

कोयले पर किसी प्रकार का रंग नहीं चढ़ता। इसी प्रकार कंजूस कोयले के समान है और उदार व्यक्ति श्वेत हीरे के समान है। यह उदार व्यक्ति अपनी दान की प्रभा से चमक उठता है। दान ही सच्ची कमाई का एक साधन है और बिना जोखम का व्यौपार है। जैसे कार्य का फल कार्य ही देता है वैसे ही दान स्वतः अपना बदला चुकाता है। महान पूजा की लालसा से दान करना महती नीचता है।

परोपकार का अर्थ पर-उपकार नहीं किन्तु अपने आत्म वि- कास का सोपान (सीढ़ी) है। पर-हित भावना ही आत्म स्वास्थ्य

और सुकाल में अन्न क्षेत्र खोलने की अपेक्षा उष्णकाल में प्याऊ और दुष्काल मे अन्नक्षेत्र को स्थापित करना विशेष आवश्यक है। इसी तरह वर्तमान अज्ञानांधकार मय ज़माने मे ज्ञान की प्याऊ-सम्यग्ज्ञान प्रचारक संस्थाओ की परम आवश्यकता है। ज्ञान दान करने वाला तीन लोक की लक्ष्मी का दान करता है। ज्ञान प्राप्ति से तीन लोक के एव मोक्ष के सुख प्राप्त किये जा सकते हैं। ज्ञान दान मोक्ष दान है। ज्ञानदान में समस्त दान समा जाते हैं। ज्ञानदान के मिष्ट फलों की महिमा अकथ्य है। ज्ञानदान के प्रदाता जैनशासन का उद्धारक बनता है। ज्ञान दान ही सुखों का परम निधान है। ज्ञानदान उत्तमोत्तम गति को प्राप्त कराता है। ज्ञान सर्वोत्कृष्ट विभूति है। ज्ञानालंकार से विभूषित व्यक्ति सारे संसार के लिये पूजनीय है। पापात्माओं का उद्धार ज्ञानदान से ही हो सकता है। ज्ञानदान स्व-पर के लिये संसार तारक जहाज़ है।

६—परोपकार।

आत्मिक गुण या दोषों की संख्या इस प्रकार बढ़ती जाती है: १+१ = ११+१ = १११+१ = ११११। अतः इस विषय मे सावधान रहने की परम आवश्यकता है। दान को ग्रहण करने वाला नहीं किन्तु देने वाला कर्जदार है। क्योंकि दया, दान, धर्म एव परोपकार वृत्ति की परीक्षा करने का अवसर उसने दिया है। अतएव उसका परम उपकार मानना चाहिये। "मैंने उस पर उपकार किया है" ऐसा विचार करना भी अपराध है। दान लेने वाले से आभार किंवा प्रत्युपकार की प्रतीक्षा न करते हुए उलटा उस का आभार मानना चाहिये। "मैं किसी का श्रेय कर रहा हू" यह विचार करना भी अभिमान है। दान के पात्रों का

८—ज्ञान-दान

जिस प्रकार सूर्य में सब प्रकाश समाविष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार विश्व के करोड़ों दानों का समावेश एक ज्ञान-दान में होता है। ज्ञान दान सूर्य-प्रकाश के समान है इतर सभी दान दीपक के प्रकाश समान हैं। अन्नदान, वस्त्रदान, पात्रदान, औषधदान व जीवनदान ये सब तो कुछ दिन मास या वर्षों के लिये शान्ति देने वाले दान हैं, और ज्ञानदान शाश्वत सुखों को देने वाला परमोत्तम दान है। अज्ञान के योग से वर्तमान में इस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान दान को लोग भूल गये हैं।

ज्ञान दान का दाता अनन्त काल के लिये आशीर्वाद को प्राप्त करता है। ज्ञानदान अनन्त काल के लिए शाश्वत-प्रभु का दान है। ज्ञानदान बड़े से बड़ा सच्चा एवं सर्वोत्तम सुखों का दान है। विश्व में स्थान २ पर ज्ञान की प्याऊ एवं प्रभावना संस्थापित कर के शाश्वत सुखों की प्राप्ति करें व करावें।

कोट्यावधि पारमार्थिक संस्थाएँ (जिन में कि विश्व की तमाम संस्थाओं का समावेश किया जाय तब सर्व) से अधिक उपकारक सिर्फ एक ही ज्ञान संस्था होती है। अन्य क्षेत्रों में करोड़ रुपये का दान देने की अपेक्षा ज्ञान दान में दी हुई एक कौड़ी भी विशेष मूल्यवान् है। २५०० वर्ष से प्रभु महावीर का शासन चल रहा है और १८५०० वर्ष पर्यन्त चलता रहेगा, यह केवल ज्ञान दान का ही प्रभाव है। भगवान् ऋषभदेव व महावीर प्रभु तथा अन्य तीर्थंकर एवं ज्ञानी पुरुषों का महत्व अद्यावधि अखण्ड एवं सुरक्षित रहा है यह ज्ञानदान का ही प्रभाव है। ज्ञानदान का प्रवाह अनन्त काल के लिये शाश्वत बह रहा है। ग्रीष्मऋतु में प्याऊ लगाने

१०—भावना ।

वाणी की अपेक्षा विचार विशेप सूक्ष्म होने से शुभा-शुभ प्रेरणाओं का विशेप रूप से प्रेरक होता है । इस लिये वचन से भी विशेष अकुश विचारों पर रखने मे सावधान रहो । वाणी, पानी के समान है और विचार बाष्प और विदूयुत के समान है । वाष्प एव विदूयुत् से भी मन की शक्ति अनन्त गुणा अधिक है । वाफ और विजली सारे शहर को प्रकाश व तमाम यन्त्रों को गति देते है । इस तरह विचार समग्र विश्व को प्रकाश व गति देता है । वाफ और विदूयुत् के ऊपर धनिकों का स्वामीत्व है, किंतु विचार के ऊपर धनी एव निर्धनी दोनों का समान स्वामीत्व है । पत्थर के डालने से उत्पन्न हुआ समुद्र का तरग समस्त समुद्र मे फैल जाता है, शर्दी, गर्मी और वर्पा की हवा सर्वत्र फैलती है, इसी प्रकार विचार भी तमाम विश्व में अति सरलता एवं शीघ्रता पूर्वक फैलते हैं । अच्छे विचार स्व-पर का हित साधक एव बूरे विचार उभय को अहितकारी होता हैं । विचार सूक्ष्म शरीर है, उसकी शक्ति स्थूल शरीर से भी अधिक है । इस लिये महापुरुपों ने शत्रु-ओं का भी हित चिंतन करने का सदुपदेश दिया है। शुभ विचार से शुभ और अशुभ विचार से अशुभ पुद्गल समूह आत्मा ग्रहण करती है । किसी के लिये बुरा विचार करना यह उसके सर पर तलवार उठाने के समान अपराध (पाप) है । समस्त जीवन व्य-वहार का प्रेरक एव उद्गम स्थान अपने अन्दर हैं । प्रथम विचार उठता है बाद हाथ उठते हैं । बुरा विचार अपनी अनेक सतति उत्पन्न करता है । और उन सब का निवास स्थान अपना शरीर होता है ।

गुप्त विचारों का भी अच्छा या बुरा असर अवश्य पडता है । अत· हर एक गुप्त से गुप्त विचारों को भी पवित्र रखना चाहिये ।

पुण्य उदय होगा अप उनकी सेवा करने का अपने हृदय में भाव प्रकट होगा। अतएव अपनी सेवा की प्रधानता नहीं किन्तु पात्र के पुण्योदय की है।

परोपकार को परोपकार मानना अहंबुद्धि है। परोपकार में ही आत्मोपकार मानने से किसी कृतघ्नी की ओर से भलाई का बुरा बदला मिलने पर भी उसके प्रति दुर्भाव न होगा।

स्वशरीर की सेवा को परोपकार मानने वाले उपहास के पात्र है। इस प्रकार से समस्त विश्व रूप शरीर की सेवा को परोपकार मानने वाले को कितना अधिक उपहास का पात्र समझना चाहिये? कुटुम्ब सेवा में सर्वस्व का भोग देते हुए भी वह परोपकार नहीं समझा जाता तो फिर अपनी अनुकूलतानुसार सामान्यरूप स जो किञ्च सेवा की जाती है उसको परोपकार किस तरह समझें?

हम किसी की सेवा करते हैं उस समय उस के पुण्य हमको उसका वाहन बनाता है उसमें परोपकार मानना भयंकर पतन है।

हम पुण्यशाली जीवों के मजदूर हैं, और निमी धन, वैभवादि को उठाने वाले मजदूर भी हम हैं। अतः समझना चाहिये कि हम पुण्यशालियों के मजदूर मात्र हैं। इससे अधिक कोई विशेषता हममें नहीं है।

रात्रि के समय 'ओस' चुपचाप वनस्पति की सेवा करता है और प्रातःकाल में मनुष्य जागृत होते हैं तब अदृश्य हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक परोपकारी प्रवृत्ति गुप्त रीति स करनी चाहिये। ओसबिन्दु की गुप्त सेवा के समान आदर्श परोपकार वांछनीय है।

दान (परोपकार) कर के मौन रहे वह उत्तम।

दान करके दूसरों से कहने वाला मध्यम।

दान देने के पहले ही उसके लिए ढोंडी पीटने वाला अधम।

समय वरसते हैं उसी प्रकार आत्मा में विचारों के शुभा शुभ परमाणु एकत्रित होकर स्वयं अपने भाव प्रकट करते है। विचार अन्तःकरण मे चाहे जितने ही गहरे दवे हो तो भी अकूर की तरह वाहर निकल आते हैं। बुरे विचार निकाल दिये जायें तो उसके स्थान पर अच्छे विचार प्रवेश करेंगे। विचारो मे अनन्त सामर्थ्य है अतः इन्हें पवित्र रक्खें। अपने भविष्य को वनाने वाले भाव ही हैं। अच्छी भावना सूद सहित लाभ देती है। त्यागी, योगी, सती, वेश्या, परमार्थी और कसाई, सब अपने २ विचारों से वने हैं और वनते हैं। वचन और विचार दूसरों के सामने मूर्ति मन्त खडे होते हैं। निन्दा, लघुता, तिरस्कार, आदि अशुभ विचार अशुभ आकृति रूप होकर दूसरे पर असर करता है। तालाव के निकट ठडाई के और भट्टी के निकट उष्णता के परमाणु प्रतीत होते हैं वैसे ही पवित्र विचार वाले के पास से पवित्र परमाणु मिलते है और अपवित्र विचार वालों से अपवित्र। माता और वेश्या दोनों स्त्री जाति होने पर भी दोनों से भिन्न प्रकार के परमाणु मिलते हैं। इसी प्रकार अच्छे और बुरे विचार वालों के परमाणुओं का असर होता है। अपनी विचार शक्ति का अच्छे से अच्छा उपयोग करें। अपने विचार ही अपना, भविष्य वनाता है। हम ही हमारा भविष्य घडने वाले हैं।

विचारों को शब्द द्वारा व्यक्त करे या नहीं, मगर उसका प्रभाव तो अवश्य ही दूसरों पर पड़ता है। तुम्हारे विचारों के तरंग विश्व में घूम कर फिर तुम्हारे ही पास लौट आता है। अन्य के लिये छिपे हुए अच्छे या बुरे विचारों से दूसरों पर असर चाहे हो या न भी हो, पर स्वयं अपने पर तो उसका अच्छा बुरा असर अवश्य होता है।

अच्छे विचार शरीर में आरोग्य व बल को बढ़ाते हैं और बुरे विचार रोग व मृत्यु को। अच्छे विचारों का बदला शुभ तरंगों के रूप में विश्व की ओर से मिलता है और वे शुभ तरंग हमको स्वाधीन एवं अत्युत्तम बनाते हैं। बुरे विचार का परिणाम इससे विपरीत होता है। प्रतिक्षण विचारों के द्वारा ही शरीर और मन की रचना होती है। अतः विचारों पर पूर्ण रूप से अंकुश होना चाहिये। अपनी वर्तमान स्थिति अपने विचारों का ही परिणाम है। बैलों के पीछे २ ज्यों गाड़ी खिंचाया करती है इसी तरह शुभा शुभ विचारों के पीछे २ सुख दुःख भी आया करते हैं। शरीर की छायावत् सुख-दुःख भी विचारों के अनुगामी हैं।

पवित्र विचार प्रभु समान हैं और अपवित्र विचार पिशाच के समान हैं। विचार का रंग मनुष्य के चारित्र पर लग जाता है। तुम विचार को भले ही भूल जाओ किन्तु विचार तुमको भूलने वाला नहीं। उसकी नींव शाश्वत है। अपवित्र विचार अपवित्र कार्य के समान भयंकर है। बुरा विचार सिंह की तरह आत्मा पर झपट पड़ता है। करोड़ों रुपों से भी पवित्र विचार की सेवा आत्मा के लिये अधिक उपयोगी है। करोड़ों दुरमन शत्रुओं से भी तुम्हारा एक अपवित्र विचार अनन्त काल के लिये अधिक अहित करेगा। जिस प्रकार जल के परमाणु मेघ में एकत्रित होकर यथा

समय बरसते हैं उसी प्रकार आत्मा मे विचारों के शुभा शुभ पर-माणु एकत्रित होकर स्वय अपने भाव प्रकट करते है। विचार अन्तः करण मे चाहे जितने ही गहरे दबे हो तो भी अकुर की तरह बाहर निकल आते हैं। बुरे विचार निकाल दिये जायँ तो उसके स्थान पर अच्छे विचार प्रवेश करेंगे। विचारों मे अनन्त सामर्थ्य है अतः इन्हें पवित्र रक्खें। अपने भविष्य को बनाने वाले भाव ही हैं। अच्छी भावना सूद सहित लाभ देती है। त्यागी, योगी, सती, वेश्या, परमार्थी और कसाई, सब अपने २ विचारों से बने हैं और बनते हैं। वचन और विचार दूसरों के सामने मूर्ति मन्त खडे होते हैं। निन्दा, लघुता, तिरस्कार, आदि अशुभ विचार अशुभ आकृति रूप होकर दूसरे पर असर करता है। तालाब के निकट ठडाई के और भट्टी के निकट उष्णता के परमाणु प्रतीत होते हैं वैसे ही पवित्र विचार वाले के पास से पवित्र परमाणु मिलते है और अपवित्र विचार वालों से अपवित्र। माता और वेश्या दोनों स्त्री जाति होने पर भी दोनों से भिन्न प्रकार के परमाणु मिलते हैं। इसी प्रकार अच्छे और बुरे विचार वालों के परमाणुओं का असर होता है। अपनी विचार शक्ति का अच्छे से अच्छा उपयोग करें। अपने विचार ही अपना, भविष्य बनाता है। हम ही हमारा भविष्य घडने वाले हैं।

११—भोग।

सर्वोत्तम पक्वान्न की विष्टा भी ग्रहण करने योग्य नहीं है वैसे ही उत्तमोत्तम भोग भी उपादेय नहीं है। क्यों कि वह अनन्त जीवों की विष्टा है। चलते समय दाहिने पैर की साथ बांया पैर उठता है वैसे भोग के साथ रोग अवश्य भावी है। भोग भाव रोग है और यह द्रव्य रोग (बीमारी) से अधिक भयंकर है। भोग के समय भोग्य पुद्गलों का आदि अन्त विचार कर जिसको त्याग भावना जागृत होती है वही सच्चा त्यागी है।

इन्द्रियों के भोग भोगना यह सांप को पकड़ कर उसके दांत से खाज खुजाने तुल्य है। ज्ञानियों को भोगी जीवों पर करुणा आती है कि ये पामर जीव भोग के कटु फल नरक और निगोद को कैसे सहेंगे? भोग से इस भव में ही अनेक रोग होते हैं। तो परलोक में अनन्त दुःख होना स्वाभाविक है। भोगासक्त जीव इस लोक के रोगों से डरता नहीं है। तो परलोक का भय कहां से रक्खे?

भोग विलास आशी मस्तकधारी दृष्टि विष सर्प तुल्य है। भोगी मनुष्य मृत्यु समय पीड़ित और दुःखित होकर, भोगों को छोड़ कर म्लान मुख से भोगों की शिक्षा भोगने परलोक में जाता है। भोग सामग्री एकत्र करने में ताप (कष्ट) है। भोगने में अधिक ताप है। और फलतः परलोक में महा ताप है।

१२-रोग ।

रोग काले पर्दे में छिपकर आता है, पर उसमे आत्म-जागृति के चन्द्र का प्रकाश चमकता रहता है। रोग ही समझाता है कि, संसार असार है और शरीर क्षणिक है। रोग भूतकाल की मलीनता का विशोधन है, भविष्य काल के लिये आत्मोन्नति का अरुणोदय है। रोग बडे से बडी सेवा बजाता है। काश्तकारी की प्रगति के लिये खाद उपयोगी है, वैसे मानव की प्रगति के लिये रोग उपकारक है। रोग ससार स्वप्न का नाशकरने वाला परमोपकारी है। ससारी जीवों को ससार काराग्रह से तथा मोह से मुक्त करने रोग और दुःख लत्ता प्रहार कर चेताते हैं।

अय रोग! तुमको नमस्कार हो। तू जागृति मे साधक है। 'हित करने वाला शत्रु भी मित्र है और अहित कर्ता मित्र भी शत्रु तुल्य हैं। जैसे अपने ही शरीर मे उत्पन्न होने वाले रोग शत्रु तुल्य बाधक हैं और जगल मे रही हुई हवा मित्र तुल्य साधक है। सुवर्ण की 'शुद्धता मे अग्नि आवश्यकीय है वैसे प्रगति के लिये रोग आवश्यक है। जगत् में दुःख, शोक और क्लेप न होते तो प्रगति भी न होती। ससार के विविध दुःख मनुष्यों को अधोगति में जाने से रोकते हैं, क्यों कि कुदरत द्वारा दुःख क्लेष, रोगादि होना यह जाग्रति के लिये उपकारक चेतावनी है।

अपनी नहीं तो परकी दया के खातिर भी खान पान मे अकुश रखो, मिताहारी बनो, जिससे रोगी नहीं बनोगे और आपके अशुभ परमाणुओं का असर दूसरों को न होगा। यदि नरक द्वारा भी सत्य के प्रदेश मे आना सुशक्य हो तो उसके लिये भी कटि बद्ध बनो। श्रेणिक राजा जैसे नरक से नहीं घभराते, जब कि वह भावी

विकास में साधक है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी अशुभ विचार रोग है और शुभ विचार आरोग्य है।

इसी प्रकार नियम से दिव्य भोग शाता का राग है और नारक माग अशाता का रोग है। मकान मेंसे कचरा दूर करने के लिये बुहारी उपकारक है, वैसे ही शरीर का कचरा दूर करने के लिये रोग उपकारक है। शस्त्रों से रक्षा भी होती है और नाश भी। उपयोग करने वाला चाहिये। इसी तरह रोग के समय घमरा कर दुर्ध्यान ध्याने वाला स्वयं दुःखी हो कर दुर्गति का बन्ध करता है और आत्म-ज्ञानी सतर्क होता है, अपनी प्रगति करता है। जैसे अनाथी मुनि, नमिराय राजर्षि।

११–उपवास।

उपवास (अनशन) करने से जठराग्नि रोगों को भस्म करती है। ऐसा कोई भी रोग नहीं है जो उपवास द्वारा दूर न हो सके। उपवास से मगज शक्ति घटने की मान्यता गलत है। रोग के समय उपवास करने से रोग का विष जल जाता है और उपवास न कर ने से विष शरीर में फैल जाता है। अधिक खानपान से होने वाली मृत्यु संख्या दुष्काल की मृत्यु संख्या से अधिक गिनी गई है। रोग यह चेतवनी है कि, शरीर में नया खानपान का कचरा भरना बंद करके उपवास करो। उपवास के द्वारा रोगी नब्बे फी सैकड़ा निरोग होते हैं और दवाइयों से नब्बे फी सैकड़ा रोगियों के रोग बढ़ते हैं। दवाइयों से देह में नये २ रोग उत्पन्न होते हैं और उपवास से रोग भस्मीभूत होते हैं। जुलाब लेने से भी शरीर में कुछ कचरा रह जाता है, परन्तु उपवास से रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं।

उपवास करने वाले की जबान जब स्पष्टतया स्वाद ले सकती है तब समझना चाहिए कि रोग नष्ट हो गए और आरोग्य प्राप्त हुआ। रोगी को दवाई न देकर उपवास (लंघन) कराना ही अधिक उपकारक है। रोगी के शरीर में अन्न न डालने से बिचारा रोग स्वय नष्ट हो जाता है। हाथ, पैर, शरीर आदि को जैसे आराम दिया जाता है, वैसे ही उपवास करके जठराग्नि को भी विश्राम देना जरूरी है। प्रति दिन चलने वाले इञ्जिन को जैसे प्रति सप्ताह एक दिन बन्द करके साफ किया जाता है, उसी तरह उपवास भी आवश्यक-परमावश्यक है।

शरीर के घाव उपवास से भर जाते हैं। टूटी हुई हड्डियाँ संध जाती है। पशु पक्षी भी रोग होने पर खाना पीना छोडते हैं, जिस से वे बिना दवाई के शीघ्र निरोगी होते जाते हैं। सात दिन के उपवास से वात (वायु) का, दस उपवास से पित्त का, और बारह उपवास से कफ का रोग नष्ट होता है। पक्षघात (लकवा) जैसे भयकर रोग भी उपवास से दूर होते हैं। गर्मी की मौसम में तीन दिन उपवास से जो लाभ होता है वह शरदी की मौसम में दो उपवास से हो जाता है।

अमेरिका में उपवास द्वारा रोग मिटाने के उपचार चल रहे हैं और सफल भी हुए हैं। अनेक प्रकार की दवाइयों की चिकित्सा से जो सन्तोष और सफलता नहीं मिली थी, सो उपवास चिकित्सा से मिल रही है।

१४—धर्मोपदेश

मानुषिक अशुचिमय भोगों में अज्ञानी मनुष्य इतना आसक्त (गृद्ध) हो गया है कि स्वर्ग और मोक्ष के सुख की भी परवा नहीं करता है तुच्छ समझता है इस से अधिक आश्चर्य अन्य क्या हो सकता है ?

जग जीवों से वैर और शत्रुता का त्याग न कर सको तो कम से कम आप अपने स्वयं वैरी तो न बनें । मानवता की सत्य समझ सद्गुरु समागम और सत्य धर्म प्राप्ति से होती है । उक्त समागम और सत्य धर्म का संयोग मिलने से आत्मा की साक्षात् प्रतीति होती है तथापि अनात्म दशा-जड़ दशावत् जीवन जीना शोभा नहीं देता । यह तो सद्गुरु और सत्य धर्म का उपहास करने या कलंक देने समान है । यदि विचार शक्ति है तो सत्यासत्य को विचारें । अकल्याण कर्ता विश्व के अन्य जीवों से भी वे अधिक दयापात्र हैं जो सुसंयोग मिलने पर भी उस की उपेक्षा करता है । पूर्व पुन्य-पुरुषार्थ से प्राप्त उत्तम संयोगों का सदुपयोग करें । दुर्गति के दातार विषय भोगों का तिरस्कार न करके परम कल्याणकारी जिनवाणी-सद्धर्म का तिरस्कार अथवा उपेक्षा करना-महद् आश्चर्य है ।

दुर्गति नगरी में-लेजाने वाले विषय और कषाय का त्याग करना चाहिए ।

अज्ञानी पामर जीव सद्-गुरु को भी स्पष्ट सुना देता है कि चाहे जो हो पर मृत्यु के पहिले स्त्री धन, विषय, कषायादि का त्याग मेरे से नहीं होगा । अज्ञानी जीव स्वर्ग व मोक्ष के सुखों को कल्पनावत् निरर्थक समझ कर उपेक्षा करता है और भोग के दुःखमय

फलों का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी ज्ञानी पुरुषों के वचनों का अनादर करता है, ज्ञानी के ज्ञान प्रति वैर वृत्ति पोषने के लिए विषय-भोगों को भोग कर दुर्गति को आमंत्रण देता है।

निद्राधीन जीव चाहे कैसा सुन्दर बोध या सुन्दर दृश्य पर ध्यान नहीं दे सकता, वैसे ही मोह-निद्राधीनजीव ज्ञानियों के वचन न सुनता है, न समझ सकता है। मनुष्य के धन, सुख, वैभव में नित्य प्रति वृद्धि होती है, वह कमाई मनुष्य की कुशलता या कुशाग्र बुद्धि का प्रताप से नहीं होती, परन्तु पूर्व जन्म के पुन्य प्रताप से प्राप्त होती है, अतः सुख वृद्धि का आदि बीज-धर्म तत्व-की उत्कृष्ट पुरुषार्थ से रक्षा करें। धर्म के शुभ फल साक्षात् प्रतीत होने पर भी उस का इतना अनादर किया जाय तो इससे बढकर अन्य क्या अन्याय हो सकता है ?

पुन्य-पाप का प्रत्यक्ष स्वरूप जानते हुए अनजान, नास्तिकवत् जीवन विताया जाय इससे विशेष लज्जा अन्य क्या हो सके ?

उक्त बातों को जानकर, समझ कर, जीवन मे उतार कर धर्म तत्त्व का आराधन-आचरण करना चाहिए, धर्म ही आत्म श्रेय का प्रधान पथ हैं।

मार्गानुसारी विभाग

१—गुणदृष्टि

धर्म मार्ग को अनुसरने वाले में प्रथम गुण दृष्टि-गुणग्राहक वृत्ति-होना आवश्यक है। जगत् का प्रत्येक पदार्थ गुणों से भरा है। कस्तूरी की मेंगणी में गुलाब पुष्प की सुगन्ध के पोषक तत्व हैं, गोबर और कूड़े कचरे के खाद में गन्ने के रस पोषक तत्व हैं और कोयले में शक्कर के तत्व होते हैं तो दोष कहां से ढूंढे? समस्त जड़ तथा चैतन्य तत्व गुणों के निधान रूप हैं। वैज्ञानिकों ने पत्थर के कोयलों में से सामान्य शक्कर से ८०० गुणी अधिक मीठी शक्कर निकाल ली है। शिल्प शास्त्री पत्थर के टुकड़ों में देव-देवी राजा-रानी की आकृतियाँ देखते हैं। मधुमक्षिका विष्ठा में से मधु के तत्व खींच सकती है। गुणी जनों को सर्वत्र गुण और दोषियों को सर्वत्र दोष ही दोष दिखते हैं। गुणग्राहकता समुद्र समान है, उस में सर्व प्रकार की गुण-नदियाँ आ मिलती हैं। वह अपने गाम्भीर्य में सब को स्थान देता है।

आप अपने को पवित्र बनाना चाहते हों तो दूसरों को भी पवित्र मानें। दूसरें को अपवित्र मानने वाला स्वयं अपवित्र है। मानव की आंतरिक गहराई में से स्वभाव (प्रकृति) की परीक्षा बिना किये बाह्य दृष्टि से उसके लिए कल्पना पापप्रवृत्ति है। बीमार को बीमारी के अपराध से मारना नहीं चाहिए। बीमार हालत में उसके दोष देखे नहीं जाते परन्तु उपचारक प्रयत्न करके उसे बीमारी मुक्त किया जाता है। बीमार हालत में उसके दोष देखे नहीं जाते, इसी तरह मानसिक बीमार (दोषी अपराधी) उस के

दोषों के लिए दूषित समझ जाना नहीं चाहिए। शारीरिक बीमार की अपेक्षा मानसिक बीमार विशेष दयापात्र और सेवा पात्र है।

सांसारिक अज्ञान युक्त स्वार्थ, व्यवहार न रखकर अपनी खानदानी के अनुसार व्यवहार रक्खें। पशुओं से भिन्न उच्च प्रकार की अपनी खानदानी मनुष्य को विचारना चाहिए। गुणियों के गुणों को तो पशु भी ग्रहण करते है, पर दोषितों से गुण ग्रहण करना मानवता है। मनुष्य चाहे तो उल्टे प्रसग को सुलट सकता है। गुण दृष्टि की ज्वाला मे समस्त दोष भस्मी भूत होते हैं। दूसरों को पवित्र रूप से देखने कीवृत्ति से बढ कर कोई दया, दान या अहोभाग्य नहीं हो सकता। दूसरों मे कौन २ से गुण छिपे हैं सो ढूंढक बुद्धि से ढूंढो। हम दूसरों के गुण देखेंगे तो दुनिया हम को गुणी बनाने में सहायक होगी। मानव जीवन के विकासकी कुञ्जी 'गुण दृष्टि' है। दैवी और शाश्वत नियमों का अनुसरण गुण दृष्टि है और राक्षसी वृत्तिका अनुसरण दोष दृष्टि।

गुण दृष्टि के अभाव मे दुःख, व्याधि आदि का आक्रमण होना और दोष दृष्टि के अभाव मे सुख सम्पत्ति की वृद्धि होना प्राकृतिक नियम सा है। फलत गुण दृष्टि परमात्मपद आत्मपद के सम्मुख ले जाती है।

जहां चैतन्यवाद है वहां आस्तिकता और गुण दृष्टि है और जड वाद है वहां नास्तिकता और दोष दृष्टि होती है। गुण दर्शी के प्रति तीनों ही काल मे अनन्त जीव गुण दृष्टि रखते हैं और दोष दर्शी के प्रति अनंत जीव दोष दृष्टि रखते है। दृष्टि बदलने मात्र से नारकीय प्रसग स्वर्गीय प्रतीत होता है। दोषी के दोष देखना छोड़ कर उसमें रही हुई दिव्यता देखे। अपनी निजात्मा की दया

के खातिर भी किसी के दोष न देखें। दोषों में से गुण देखने का प्रयत्न करना ही सत्पुरुषार्थ है। अपने दोष सुधार ने के पहिले दूसरों के दोष देखने का अपना क्या अधिकार है? जहाँ तक हम सबमें गुण नहीं देखते वहां तक हम दोष के भण्डार हैं। सद्गुण के भण्डारी को सर्वत्र गुण ही गुण दीखें।

सब के प्रति परमात्मा समान सम्मान रखना ही सत्य शिक्षण है। शब्द रूप ईंट कूड़े की तरफ नजर नहीं देकर वक्ता के आशय को देखना चाहिए। दोषी को बिना गुण का अनाथ समझ कर उसे अपने गुण देकर सनाथ बनावें, तो हम अनाथ के नाथ बन जावेंगे। हम मनुष्य मनुष्यों में गुण न देख सकें तो अन्य किस तत्त्व में गुण देख सकेंगे? दूसरों के दोष रूप कांटे अपने में चुभाकर निरर्थक दुःखी क्यों होना चाहिए? विश्व की पवित्र मानव भूमि, जो कि मोक्ष भूमि है, उसमें दोष दृष्टि के बीज बोकर मोक्षभूमि को निरर्थक नर्क भूमि क्यों बनायी जाय? किसी के विषय में बुरा अभिप्राय बांधना अपने पैरों पर कुल्हाड़ा मारने समान है।

गुण दृष्टि समृद्धि है और दोष दृष्टि कंगालियत। गुणदर्शी का जीवन सुखों की माला समान है। गुण दृष्टि परमात्मा का निवास स्थान है। गुण दृष्टा के चारों ओर प्रेम प्रवाह और दोष दृष्टा की आस पास द्वेष का प्रवाह नित्य बहता है। गुण दृष्टा चोर कसाई और शराबी में भी परमात्म पद की सत्ता समझ कर सम्मान रखता है। सूर्य को अपने भ्रमण में सिवाय प्रकाश के अन्य कुछ नहीं दिखता वैसे गुणदृष्टि वाले को भ्रमण में अनुभव में, विचार में वचन में वर्तन में प्रेम का प्रकाश झलकता है। गुण दृष्टि समभावी दृष्टि है और स्वर्ग तथा मोक्ष के साक्षात्कार समान है। बिना गुण दृष्टि का जीवन नरक या पशु तुल्य नीच कोटिका जीवन है। पवित्र पुरुष ही गुण दृष्टि पालन कर सकता है।

गुण दर्शी सदा प्रसन्न होता है और दोष दर्शी सदा द्वेषाग्नि से दुःखित होता है। गुण दृष्टि ही साधुता और सत्य धर्म है। गुणदृष्टि वाला आत्म पथ पर चलता है। अशक्त और दुर्वल बालक पर दया भाव से माता का प्रेम विशेष होता है, वैसे दोषी मानव को विशेष दयापात्र समझ कर उसकी विशेष दया, सेवा और सहाय्य करना चाहिए। गुणीजनों को सब सहायता करते ही हैं परन्तु दोषितों की सेवा करने मे ही महत्त्व है।

'गुण दृष्टि रक्खो और दोष दावानल को भस्म करो' यही सब शास्त्रों का सार है। गुण दृष्टि सुख का समुद्र है और दोष दृष्टि दुःख का सागर है। गुण दृष्टि का कांटा नित्य नजर के सामने रखना चाहिए। गुण दृष्टि से युक्त होने पर अनन्त जीवों से वैर विरोध मिट जाता है।

महात्माओं की पवित्रता का मूल्य पापात्मा देते हैं। पापात्माओं की कसौटी द्वारा महात्मा का मूल्य मालूम होता है। जैसे श्रीमन्तों को विलास के साधन गरीबों द्वारा मिलते हैं। वैसे ही पवित्रात्माओ को पवित्रता के साधन पापियों से प्राप्त होते हैं। इस लिए गुण दृष्टि से पवित्रात्मा पापियों का आभार मानते हैं। चोर, हिंसक और पापात्मा न होते तो साहूकार, दयालु और धर्मात्मा का भेद कैसे होता ? उनको बहुमान कौन देते ? मूल्य का महत्त्व इसी से तो है।

अपना सर्वस्व देकर दोषी की सेवा करना ही गुण दृष्टि है। सहायय दें, किन्तु सहार न करें। दोषी के दोष सुधार ने में उसे सहायता दें। परतु उसे अधिक बिगाड तिरस्कार न करें। प्रत्येक निराधार वस्तुओं को पृथ्वी आधार देती है, वैसे ही सबको आश्रय

देखकर पृथ्वी जैसी महान् दृष्टि मानव नहीं रखे तो अन्य कौन रखेगा ? गुण दृष्टि ही आत्म-प्रगति के लिये परम सुवर्णावसर है।

हिन्दु बालक को चाहे कितना भी लालच देने पर वह किसी पशु-पक्षी का घात नहीं करेगा। जब मुसलमान का बच्चा अकारण ही चाहे कैसे भी निर्दोष प्राणी को हँसते २ मार डालेगा। कारण यही है कि हिन्दु बालकों में अहिंसा का तत्त्व और मुसलमान के खून में हिंसा का तत्त्व ओत प्रोत है। इसी प्रकार आर्य सदा गुण दृष्टि रखता है क्यों कि उसकी प्रकृति में वैसे तत्त्व हैं जब कि अनार्य की प्रकृति में दोष दृष्टि के तत्त्व भरे पड़े हैं। आर्यत्व का दावा करने वाले को समस्त संयोगों में गुण दृष्टि का शरण ग्रहण करना चाहिये।

गुण ग्राहकता भवाब्धितारक नौका तुल्य है। दोष दृष्टि पत्थर की नाव तुल्य है। देवाधिदेव की प्रभुता जैसा गुण ग्राहकता का गुण है। दोष दृष्टि के मैल को अग्नि में जलाने से गुण दृष्टि प्राप्त होगी। गुण दृष्टि उदार आत्मा की लक्ष्मी सम्पत्ति और वैभव है। गुण दृष्टि ही आत्म आराधक दृष्टि है। अन्यथा विनाशक दृष्टि है। क्रोधी को क्षमा का मानी को विनय का मायी (कपटी) को सरलता का और लोभी को सन्तोष का दान देना ही गुण दृष्टि है।

वृक्ष की जड़ में पानी का सींचन होने से वृक्ष पत्र, पुष्प, फलादि समस्त विभागों को पोषण मिलता है वैसे गुण दृष्टि का सिंचन करने से आत्मा में अखिल गुण प्रकट होते हैं। हम जैसे बनना चाहें बन सकते हैं। बिल्ली उन्हीं दांतों से अपना बच्चा और चूहे को पकड़ती है, एक में प्रेम और दूसरे में द्वेष है। इसी प्रकार जीव की दृष्टि में गुण ग्राहकता और दोष ग्राहकता हो सकती है।

सहन करने का गुण सबसे बड़ा है। वर्णमाला मे सब एक २ प्रकार के अक्षर हैं जब कि 'श' तीन प्रकार के (श, ष, स) हैं। और अन्त में 'ह' आता है, अर्थात् शह, षह, सह होता है। जिस प्रकार सह में वर्णमाला समाप्त होती है उसी प्रकार सर्व गुण सहनशीलता में समाप्त होते हैं। सोमल, सूरिकँता, पालक, स्कंदक, कमठ और चण्ड सर्प जैसे को भी प्रभु ने उपकारक समझे तो दोष किस के देखे ? लाखों की बक्षिस मिलने से जो आनन्द होता है इससे अत्यधिक आनन्द गुण दृष्टि में है। और लाखों के नुकसान मे जो खेद होता है, उससे भी अधिक खेद दोष दृष्टि में है। अपने शरीर पर क्रोध करने से जब वह नहीं सुधर सकता है तो अन्य के ऊपर दोष दृष्टि से क्रोध करने से वह कैसे सुधर सकता है ? दोष दृष्टि से शत्रुता पैदा करने में नुकसान है, मगर गुण दृष्टि से मित्रता प्राप्त करने मे कौनसा नुकसान है ? मनुष्य अपनी भूल शायद ही कबूल करता है। अन्य को शिक्षा देने के बजाय जिन २ के ससर्ग में अपन आवें उन २ से शिक्षाएँ ग्रहण करना चाहिये। गुण दृष्टि यह भविष्य में महान् पुरुष होने का शुभ चिह्न है। अगर आप परोपकार अथवा धर्माराधन विशेष रूप से नहीं कर सकते हों तो सब से गुणों को ही ग्रहण करते रहो। दोष दोषी का नहीं किन्तु उसके अज्ञान का है। गुण दृष्टि वाला मनुष्य दूसरों के दोष देखने सुनने और कहने मे अन्ध, बधिर व गूगा है। पशुओं से भी मनुष्य विशेष अनुकम्पा पात्र है, क्यों कि उनमें हिताहित का ज्ञान होने पर भी तीव्र मोहोदय से ऐसे दोषों का सेवन करते हैं। दृष्टि को ऐसी निर्मल बना दो कि जिसमे अपना सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष भी नेत्र में गिरे हुए रजकण के समान मालूम हो जाय और उसे अप्रमत्त हो शीघ्र निकाल दिया जाय।

२—लघुता ।

अपने दोषों की जांच दूसरों के दोषों की जांच के समान हो तब सब दोषों का नाश होता है। स्वमुख से अपनी प्रशंसा करना अथवा अन्य की ओर से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना उसका नाम है लघुता (तुच्छवृत्ति)।

अपनी भूल का स्वीकार करने से तुम्हारी भूलों का अभाव हो कर तुम स्वयं गुणों का भण्डार बन जाओगे। अपनी राई जितनी भूल को मेरू के समान मानो। अपने एक दोष को दूसरों के सहस्र दोषों से भी अधिक भयंकर समझो। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी सरीखा मैं भी दोष पात्र हूँ ऐसी मान्यता अपने विषय में रक्खो। भूल को स्वीकृत करने की वृत्ति बुहारी (सावरणी) के समान है। बुहारी कचरे को निकालती है और मकान को स्वच्छ रखती है। अतः भूल के स्वीकारने में लघुता नहीं किन्तु आत्मा की पवित्रता ही समझनी चाहिये। निरभिमान वृत्ति किसी पर अपना स्वामित्व नहीं रखती। छुद्र को छोटे से छोटा मानने में शर्म नहीं है, किन्तु सच्चा सम्मान है। अपनी भूल स्वीकार कर लघुता का स्वीकार करने में बड़ा गौरव है। लघुता करना कर्मों से लघु (हल्के) होने के समान है मोक्षमार्ग समान है और गुरुता इच्छना कर्मों से गुरु (भारी) होकर अनन्त संसार बढ़ाने तुल्य है। (शक्कर और रेत मिली हुई होने पर भी चिंटी शक्कर का स्वाद ले सकती है पर हाथी स्वाद नहीं ले सकता। वैसे लघुवृत्ति (नम्रता) सत्य वस्तु प्राप्त कर सकती है वस्तु ग्रहण कर सकती है। पर की लघुता और स्व की गुरुता करने की भूल करने वाली जिह्वा न हो तो भी उत्तम है। जिसमें शिष्य होने की योग्यता नहीं वह गुरु होने

योग्य नहीं हो सकते। कोई भी व्यक्ति किसी के मस्तक का स्पर्श, उसके प्रति पूज्य भाव दिखाने के लिये नही करता है, अपितु उसके चरणों में अपना मस्तक झुकाता है। पैर मे लघुता होती है और वही समस्त शरीर का कार्य करता है। इसीलिये इसके प्रति पूज्य-भाव प्रदर्शित करने के लिये चरणों का उपयोग होता है। द्वितीया के चन्द्रमा की पूजा होती है। न कि पूर्णिमा के चन्द्र की। राजा अपराधी का नाक कटवाता है, पैर नहीं, क्यों कि नाक गुरुता का सूचक है और पैर लघुता का। जहां पर लघुता है वहीं सम्मान और गौरव है।

३—गुरुता।

वृक्ष के मूल को खुल्ले रखने से जैसे उसका पतन और विनाश होता है उसी प्रकार अपनी योग्यता एवं गुरुत्व प्रकट करने से मनुष्य का पतन होता है। वृक्ष की जड पर हजारों मन मिट्टी डाल कर उसको ढक दिया जाय तो वह प्रगति कर सकती है, उसी प्रकार मनुष्य अपनी योग्यता को अपने में ही अन्तर्भूत करता है तो उसका उत्थान एव विकास होता है। उच्च कोटि के फल अपने रस तथा तत्त्व को ढक कर रखते हैं, किन्तु नीच कोटि के फल अपने सत्व को ऊपर रखते हैं।

अपने आपको उत्तम मानने वाला अपनी उत्कृष्टता का नाश करता और कराता है। अपने मुँह अपनी बडाई करना अपना घोर अपमान है। गरिष्ट पदार्थ नहीं पचता है तो फिर ये गरिष्ट विशेषण कैसे पच सके ? गरिष्ट पदार्थों का अजीर्ण कितना भयकर होगा ? गरिष्ट पदार्थों को पचाने के लिये योग्यता आवश्यक होती है उसी प्रकार गरिष्ट विशेषणों को पचाने के लिये भी

७—लघुता ।

अपने दोषों की जांच दूसरों के दोषों की जांच के समान हो तब सब दोषों का नाश होता है। स्वमुख से अपनी प्रशंसा करना अथवा अन्य की ओर से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना उसका नाम है लघुता (तुच्छवृत्ति)।

अपनी भूल का स्वीकार करने से तुम्हारी भूलों का अभाव हो कर तुम स्वयं गुणों का भण्डार बन जाओगे। अपनी राई जितनी भूल को मेरू के समान मानो। अपने एक दोष को दूसरों के सहस्र दोषों से भी अधिक भयंकर समझो। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी सरीखा मैं भी दोष पात्र हूं ऐसी मान्यता अपने विषय में रक्खो। भूल को स्वीकृत करने की वृत्ति बुहारी (सावरणी) के समान है। बुहारी कचरे को निकालती है और मकान का स्वच्छ रखती है। अतः भूल के स्वीकारने में लघुता नहीं किन्तु आत्मा की पवित्रता ही समझनी चाहिये। निरभिमान वृत्ति किसी पर अपना स्वामित्व नहीं रखती। खुद को छोटे से छोटा मानने में शर्म नहीं है, किन्तु सच्चा सम्मान है। अपनी भूल स्वीकार कर लघुता का स्वीकार करने में बड़ा गौरव है। लघुता करना कर्मों से लघु (हल्के) होने के समान है, मोक्षमार्ग समान है और गुरुता दुष्टता कर्मों से गुरु (भारी) होकर अनन्त संसार बढ़ाने तुल्य है (शक्कर और रेत मिली हुई होने पर भी चिंटी शक्कर का स्वाद ले सकती है पर हाथी स्वाद नहीं ले सकता। वैसे लघुवृत्ति (आत्मता) सत्य तत्त्व प्राप्त कर सकती है तत्त्व ग्रहण कर सकती है। पर की लघुता और स्व की गुरुता कहने की भूल करने वाली जिह्वा न हो तो भी उत्तम है। जिसमें शिष्य होने की योग्यता नहीं वह गुरु होने

का नाश होता है। निन्दा करना आत्मि की आध्यात्मिक तन्दु-रुस्ती नाश करना है। दूसरों की निन्दा करना अपने मुँह से अपनी अपात्रता जाहिर करना है। महत्वाकांक्षी (महामानी) ही पर निन्दा करता है। निन्दा करना अपने हृदय पटल को निन्दा रूप कैञ्ची से काटना है। निन्दा सुनने वाले और करने वाले उभय मे मलीनता आती है। दोषी के दोष से निन्दा का अपराध अधिक है। स्वदोष छिपाने और परदोष प्रकाश के लिये निन्दा की जाती है। निंदा करना ईर्षाग्नि मे जलना है। खुद जलता है और अन्य को जलाता है। किसी की निंदा न करना, उसके दोष न देखना, अभयदान देने बराबर है।

रात्रि भी दिन जैसी उपकारक है। सरदी जितनी गर्मी व गर्मी जितनी ही वर्षा उपकारक है वैसे निंदक भी प्रशंसक जितना ही उपकारक है।

अपने निंदकों को आशीर्वाद दें, क्यों कि आप अपना श्रेय नहीं कर सकते उससे अधिक आपका श्रेय वे करते हैं, अपनी नुकसानी की परवा किये बिना वे आप के विषय कषाय (दुर्गुणों) को रोकने के लिये रक्षकवत् है। जहां मनुष्य तुमको धिक्कारते हो, वहां प्रेम पूर्वक जाओ और उन उपकारी पुरुषों (निंदकों) की कल्याण कारी मदद द्वारा अपने अहभावो को भगाने के लिये वे जितनी उदार भाव से मदद लें (समभाव से स्व-निंदा सुनो)। निंदक का आभार मानो, क्यों कि वह तुमको अपने आत्म-गुणके दर्शन कराने अक्षय आयना दिखलाता है। जिसमें अपने आपको देख-कर आत्म-सुधार किया जा सकता है। कोई तुम्हारी निंदा करके प्रसन्न हो तो अपने आपको परम भाग्यशाली समझो, कि बिना परिश्रम के मैं उसके सुख का सहाय्यक बना। कई लोग तन, मन

योग्यता आवश्यक है। असंख्य सेवकों से सेवा लेने वाले से असंख्य आदमियों को सेवा देने वाला बड़ा है। अधिकार की आकांक्षा सब से बड़ा शत्रु है। मान, पूजा की इच्छा दूसरों के मस्तक पर पैर रखकर चलने के समान है। मान, पूजा, सत्कार सम्मान प्राप्त करने की लालसा जैसा घाटे का अन्य कोई व्यापार नहीं है। पर लघुता और रस-गुरुता करने वालों का जीवन मुर्दे समान सत्वहीन है।

४—निन्दा और निन्दक।

निन्दा करना पीठ का मांस खाने बराबर है ऐसा शास्त्रकारों ने फरमाया है। योरोप में निन्दा निषेधक सभाएँ स्थापित हो रही हैं। निन्दा करने वाला जीवन्त मनुष्य का लोहू मांस भक्षक राक्षस है सब से बड़ा पापी है। अतएव शास्त्र में "पिट्ठी मंसं न खाएज्जा" (पीठ का मांस नहीं खाना) ऐसा फरमान है। अंग्रेजी में भी निन्दा को Back bite (पीठ का मांस खाना) ऐसा तिरस्कृत शब्द प्रयोग किया है। आत्म निन्दा करना पवित्र कार्य है—प्रायश्चित्त का द्योतक है, आत्म-शुद्धि करने वाला है। दूसरे से अपनी निन्दा सुनकर समभाव रखना विशेषतम पवित्र कार्य है।

किसी के सामने ऐसी बात न करें कि जो बात उसके समक्ष न कही जा सके। पर निन्दक अपनी ही निन्दा करता है। निन्दक को निन्दा करने में कुछ मिनट लगती है, किन्तु सुनने वाले का (जिसकी निन्दा की जाती है) वर्षों तक दिल दुःखता है। इससे अधिक भयंकर पाप और क्या हो सकता है? स्वामी दूसरे की तपस्या की या क्षमा रीति दूसरे के क्रोध की निन्दा करे वह पाप तपस्या न क्रोध से अधिक है। और उसके दान तथा क्षमा धर्म

का नाश होता है। निन्दा करना आत्म की आध्यात्मिक तन्दुरुस्ती नाश करना है। दूसरों की निन्दा करना अपने मुँह से अपनी अपात्रता जाहिर करना है । महत्त्वाकाक्षी (महामानी) ही पर निन्दा करता है। निन्दा करना अपने हृदय पटल को निन्दा रूप कैञ्ची से काटना है। निन्दा सुनने वाले और करने वाले उभय मे मलीनता आती है। दोषी के दोष से निन्दा का अपराध अधिक है। स्वदोष छिपाने और परदोष प्रकाश के लिये निन्दा की जाती है। निंदा करना ईर्षाग्नि मे जलना है। खुद जलता है और अन्य को जलाता है। किसी की निंदा न करना, उसके दोष न देखना, अभयदान देने बराबर है।

रात्रि भी दिन जैसी उपकारक है। सरदी जितनी गर्मी व गर्मी जितनी ही वर्षा उपकारक है वैसे निंदक भी प्रशंसक जितना ही उपकारक है।

अपने निंदकों को आशीर्वाद दें, क्यो कि आप अपना श्रेय नहीं कर सकते उससे अधिक आपका श्रेय वे करते हैं, अपनी नुकसानी की परवा किये बिना वे आप के विषय कषाय (दुर्गुणों) को रोकने के लिये रक्षकवत् है। जहा मनुष्य तुमको धिकारते हो, वहाँ प्रेम पूर्वक जाओ और उन उपकारी पुरुषों (निंदकों) की कल्याण कारी मदद द्वारा अपने अहभावों को भगाने के लिये वे जितनी उदार भाव से मदद लें (समभाव से स्व-निंदा सुनो)। निंदक का आभार मानो, क्यों कि वह तुमको अपने आत्म-गुणके दर्शन कराने अक्षय आयना दिखलाता है। जिसमे अपने आपको देखकर आत्म-सुधार किया जा सकता है। कोई तुम्हारी निंदा करके प्रसन्न हो तो अपने आपको परम भाग्यशाली समझो, कि बिना परिश्रम के मैं उसके सुख का सहाय्यक बना। कई लोग तन, मन

और धन का भोग देकर अन्य जीवों को प्रसन्न रखने का परोपकार करते हैं तो यह निंदक भाई आपकी निंदा करके प्रसन्न होता है। अतः उसकी प्रसन्नता के लिये अपनी निंदा सुन लेने की उदारता व सहिष्णुता रखना चाहिये।

निंदक की निंदा को आप मान देंगे तब तो वह निंदा करेगा, अन्यथा किस के पास निंदा करेगा? बहिरे को गाली कौन देता है? अन्ध के पास कुचेष्टा कौन करता है? अधिक कटु दवाई अधिक रोग का नाश करती है। वैसे अति दुष्ट प्रकृति वाला आपका अधिक हित करेगा। अवश्य उसका सत्कार करें। निंदक हमारे लिये सर्चलाइट समान उपकारक है पापों की चट्टान से टकराती हुई जीवन नौका को बचाता है। निंदक रूप सर्च लाइट न होती तो अपना विशेष पतन होता। अन्धकार होने से घर में चोर कुत्ता आदि घुसते हैं और प्रकाश होने पर सब भग जाते हैं, इसी तरह निंदक की रोशनी के भय से पाप रूप चोर कुत्ते भग जाते हैं। सुवर्ण की विशुद्धि के लिये जैसे तेजाब है वैसे आत्म शुद्धि के लिये निंदक है। किसी से निन्दायुक्त या अपमानित शब्द सुन कर अप्रसन्न होना टेलीफोन द्वारा अशुभ समाचार सुनकर टेलीफोन को तोड़ना ही है। सर्दी गर्मी और वर्षा के लिये किसी पर क्रोध नहीं किया जाता है वैसे निन्दक के निन्दायुक्त प्रतिकूल शब्दों पर क्रोध न होना चाहिये। स्वयं अपना शरीर भी हमारी इच्छानुसार नहीं चलता तो अन्य किस पर हमारा अधिकार हो सकता है कि वे हमारे लिये रुचिकर बोलें या लिखें! निन्दा प्रति बुरा मनाने से कोई सुधार न होगा, मात्र समभाव रखने में ही श्रेय और सुख है।

९—वन्दक ।

अनुयायिओ की अपेक्षा टीकाकारों से विशेष लाभ मिलता है। कोई भी शत्रु से अपनी रक्षा नहीं इच्छता, किन्तु मित्रों से अपनी घात न हो और रक्षा हो ऐसा इच्छता है। शत्रु अपना थोडा समय बिगाड़ता है, जब कि मित्र वर्ग प्रशसा करके अधिक समय खराब करता है। और आत्माकी घात भी विशेष प्रमाण में करता है। निन्दक और प्रशसक दोनों हमारी आंख में धूल फेंकते हैं। निन्दक की धूल मिर्च जैसी है जो शीघ्र सावधान करती है और प्रशंसककी धूल सुवर्ण की मिट्टी समान है, सुवर्णरज का प्रहार आंख को अधिक लगता है और उससे आंख को अधिक नुकसान होता है। अतएव आत्मा के लिये निन्दक से प्रशसक अधिक घातक है। शास्त्रकारों ने अपमान परिषह के विजेता को देश विजयी माना है और मान परिषह के विजेता को सम्पूर्ण विजयी माना है। निन्दा के प्रसगों मे समभाव रखना इतनामुश्किल नहीं जितना कि मान, पूजा और प्रशसा के संयोगों में। ऐसे प्रसगों मे समभाव का सयम रख सके वही पूर्ण विजयी हैं।

६—कर्त्तव्य प्रकाश

विश्व की समस्त दृश्य चल मानस के सूक्ष्म विचारों के प्रत्यक्ष स्वरूप है, मनुष्य की अशुभ-शुभ इच्छा शक्ति के सब व्यक्त स्वरूप हैं। यन्त्र शस्त्र स्टीमर, शहर आदि दृश्यमान पदार्थ मानव की इच्छाशक्ति के व्यक्त स्वरूप हैं कर्तव्य है और कर्म है।

जीवन की शुभाशुभ सब प्रवृत्तियाँ शुभ कर्म और अशुभ कर्म हैं। कुदरत के साम्राज्य में उनकी शाश्वत नोंध रहती है। सुख और दुःख अपने कर्तव्यों द्वारा निमन्त्रित मिजमान हैं। मिजमान के तौर पर दोनों का सत्कार करना चाहिये। कभी जागृति न रही तो यह सुख, वैभव और विलास में लिप्त कर पतन कराता है। अपना प्राचीन इतिहास देखें तो महापुरुष सुख सम्पत्ति और स्तुति की अपेक्षा दुःख, विपत्ति और निन्दा (कसौटी) से ही ज्ञानी, प्रमा पर्याप्त और प्रगतिशील बने हैं।

कर्मानुसार स्वभाव स्वभावानुसार इच्छा और इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। वर्तमान समस्त जीवों का स्वरूप राजा-रंक सुखी-दुःखी चिंटी और हाथी, आदि चोरासी लक्ष जीवायोनी का स्वरूप यह जीवों की अनेक जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। अधम और अत्याचारी पुरुष भी अपने पूर्व जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। सब को इच्छानुसार स्वरूप प्राप्त होता है। भूतकालीन इच्छाओं के स्वरूप वर्तमान में और वर्तमान कालीन इच्छाओं के स्वरूप भविष्यत् में मूर्तस्वरूप धारण करते हैं। जीव स्वयं अपना विश्वकर्मा और विधाता है जैसा बनना चाहे बन सकता है। वर्तमान के इष्ट अनिष्ट संयोगों के लिये ईर्षा खेद, दुःख प्रकट करना व्यर्थ है, क्योंकि भूतकाल तो भूत सा है

वह हाथकी पकड मे नहीं आसकता। मात्र भावी जीवन रचना अपने अधिकार मे है। स्वर्गीय, नारकीय, पाशविक और मानुषिक, इनमें से जो जीवन प्रिय हो उसे बनावे और वही स्थान प्राप्त करें। उपरोक्त रचनाओं में से जिस को जो पसन्द हो वैसी रचना के लिये अहो-रात्र अविश्रान्त परिश्रम करें। फलत अपनी की हुई रचना प्राप्त होती है। अपनी इच्छा विरुद्ध मनुष्य को कुछ नहीं मिलता, इसलिये प्रत्येक कर्म करने के पहिले कर्म–अकर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य इच्छनीय अनिच्छनीय का विचार करें और उचित आचरण करें।

कर्म करना अपनी मानसिक शक्ति का प्राकट्य करना ही है। सभी कर्मों के हेतु होते हैं। बिना हेतु कर्म नहीं हो सकता। वर्तमान में मनुष्य मान-पूजा व धन के हेतु ही कर्म किया करते हैं।

पाश्चात्यों की गणनानुसार १५० करोड़ मनुष्यों की सख्या है, उनमें १५० करोड आकृतियाँ ही भिन्न २ हैं, वैसे ही उनकी इच्छाए भी भिन्न २ हैं। १५० करोड़ में से समान आकृति वाले दो पुरुष या दो स्त्रियों का मिलना (समान होना) मुश्किल है। आकृति मे साधारण समानता शायद होगी, परन्तु इच्छाओं में तो आकाश पाताल का अन्तर रहता है। भारतीय मनुष्य कीर्ति के लिये कर्म करते है उसी तरह चीनी मनुष्य भी। किन्तु दोनों के आशय में महान् अन्तर है। चीन के मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद होने वाली कीर्ति के लिये शुभ कर्म करते हैं, उन लोगों में मृत्यु के बाद सम्माननीय पदवियाँ दी जाती हैं। यहां की अपेक्षा यह प्रणालिका अच्छी है। वर्तमान में कई लोग राय बहादुर, दिवान बहादुर, रायसाहब आदि पदवियाँ प्राप्त करने के लिये अनेक सच्चे झूठे प्रयत्न या खटपट करते हैं। और उसके मिलने से हर्ष और न मिलने से खेद का परिताप सहन करते हैं। जब चीन देश मे पुत्र के अच्छे कार्यों की पदवी मृत

६—कर्तव्य प्रकाश

विश्व की समस्त हल चल मानव के सूक्ष्म विचारों का प्रत्यक्ष स्वरूप है, मनुष्य की अशुभ-शुभ इच्छा शक्ति का सब व्यक्त स्वरूप है। यन्त्र शस्त्र स्टीमर, शहर आदि दृश्यमान पदार्थ मानव की इच्छाशक्ति के व्यक्त स्वरूप है कर्तव्य है और कर्म है।

जीवन की शुभाशुभ सब प्रवृत्तियाँ शुभ कर्म और अशुभ कर्म हैं। कुदरत के साम्राज्य में उनकी शाश्वत नोंध रहती है। सुख और दुःख अपने कर्तव्यों द्वारा निमन्त्रित मिहमान हैं। मिहमान के तौर पर दोनों का सत्कार करना चाहिये। कभी जागृति न रही तो वह सुख, वैभव और विलास में लिप्त कर पतन कराता है। अपना प्राचीन इतिहास देखें तो महापुरुष सुख सम्पत्ति और स्तुति की अपेक्षा दुःख, विपत्ति और निन्दा (कसौटी) से ही ज्ञानी, प्रभावशील और प्रगतिशील बने हैं।

कर्मानुसार स्वभाव, स्वभावानुसार इच्छा और इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। वर्तमान समस्त जीवों का स्वरूप राजा-रंक, सुखी-दुःखी, चिंटी और हाथी आदि चोरासी लक्ष जीवायोनी का स्वरूप यह जीवों की अनेक जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। प्रथम और अवतारी पुरुष भी अपने पूर्व जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। सब को इच्छानुसार स्वरूप प्राप्त होता है। भूतकालीन इच्छाओं के स्वरूप वर्तमान में और वर्तमान कालीन इच्छाओं का स्वरूप भविष्यत् में मूर्तस्वरूप धारण करते है। जीव स्वयं अपना विश्वकर्मा और विधाता है, जैसा बनना चाहे बन सकता है। वर्तमान के इष्ट अनिष्ट संयोगों के लिये ईर्षा वेर दुःख प्रकट करना व्यर्थ है, क्योंकि भूतकाल तो भूत सा है

वह हाथकी पकड मे नहीं आसकता। मात्र भावी जीवन रचना अपने अधिकार मे है। स्वर्गीय, नारकीय, पाशविक और मानुषिक, इनमें से जो जीवन प्रिय हो उसे बनावे और वही स्थान प्राप्त करें। उपरोक्त रचनाओं में से जिस को जो पसन्द हो वैसी रचना के लिये अहोरात्र अविश्रान्त परिश्रम करें। फलत अपनी की हुई रचना प्राप्त होती है। अपनी इच्छा विरुद्ध मनुष्य को कुछ नहीं मिलता, इसलिये प्रत्येक कर्म करने के पहिले कर्म–अकर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य इच्छनीय अनिछनीय का विचार करें और उचित आचरण करें।

कर्म करना अपनी मानसिक शक्ति का प्राकट्य करना ही है। सभी कर्मों के हेतु होते हैं। बिना हेतु कर्म नहीं हो सकता। वर्तमान में मनुष्य मान-पूजा व धन के हेतु ही कर्म किया करते हैं।

पाश्चात्यों की गणनानुसार १५० करोड मनुष्यों की संख्या है, उनमें १५० करोड आकृतियाँ ही भिन्न २ हैं, वैसे ही उनकी इच्छाए भी भिन्न २ हैं। १५०करोड़ में से समान आकृति वाले दो पुरुष या दो स्त्रियों का मिलना (समान होना) मुश्किल है। आकृति मे साधारण समानता शायद होगी, परन्तु इच्छाओं मे तो आकाश पाताल का अन्तर रहता है। भारतीय मनुष्य कीर्ति के लिये कर्म करते है उसी तरह चीनी मनुष्य भी। किन्तु दोनों के आशय मे महान् अन्तर है। चीन के मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद होनेवाली कीर्ति के लिये शुभ कर्म करते है, उन लोगों में मृत्यु के बाद सम्माननीय पदवियाँ दी जाती हैं। यहां की अपेक्षा यह प्रणालिका अच्छी है। वर्तमान में कई लोग राय बहादुर, दिवान बहादुर, रायसाहब आदि पदवियाँ प्राप्त करने के लिये अनेक सच्चे झूठे प्रयत्न या खटपट करते हैं। और उसके मिलने से हर्ष और न मिलने से खेद का परिताप सहन करते हैं। जब चीन देश मे पुत्र के अच्छे कार्यों की पदवी मृत

पिता पितामहादि को मिलती है और मृत पूर्वजों के इस प्रकार के सम्मान से चीनी लोग प्रसन्न होते हैं और अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त होने का वे प्रयत्न करते हैं।

कई लोग तो जन्म होते ही अपनी कब्र बाँधना प्रारम्भ कर देते हैं और निजी सम्पत्ति का अधिकांश उसमें लगाते हैं। जीवन पर्यंत कब्र बनाया करते हैं। बड़ी कब्र से बड़ी महत्ता मानी जाती है। जिससे कि मृत्यु सन्मुख रहे और पाप कार्य से मन शंकाशील रहने पावे। इसके बजाय भारत में अपने भोग विलास के लिए बड़ी २ महलात बाग बगीचे आदि बनाये जाते हैं। इनके बनाने वालों का ध्येय आजीवन विलास ही रहता है। इस प्रकार मनुष्यों की आकृति की भिन्नता के साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों में भी भिन्नता का अनुभव होता है।

कई लोग असत्य अनीति एवं अन्यायमय पैसा करके उन पापों को धोने के लिये दान करते हैं यह दान नहीं किन्तु ठगाई है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करके उस अपराध से छूटने के लिये सिपाही को घूस (रिश्वत) देवादि इसी प्रकार यह भी शुभ कर्म को घूस देने समान है। अव्वल तो भारत में दान की प्रथा ही कम है, उस में भी वर्तमान में तो सिर्फ नाम सन्मान के हेतु ही दान किया जाता है। दाता दान लेने वाले के पैरों में पड़े और सोचे कि मेरे सद्भाग्य हैं कि आप सरीखे पात्र के योग से मेरी लक्ष्मी गंगा पावन होती है अन्यथा दुर्गंधमय हो जाती। कृपा करके फिर इस सेवक को पावन करें। आज कल तो सौ रुपये का दान देकर लाख रुपये के मानकी इच्छा करते हैं। लाख का दान करना सुलभ है, किन्तु उससे प्राप्त मान का दान देना परम दुर्लभ है। दान में देने का महत्व है मगर छोड़ने से बड़ी मुक्ति (शान्ति) है। जिस प्रकार किसान

जमीन मे धान्य को बोते हैं सो जमीन को दान नहीं देते हैं मगर उसको लूटते हैं। मिट्टी, पानी, कर्दम व खात से भरी हुई जमीन में बीज बोने से उसके फल स्वरूप एक के स्थान पर सैकडों बीज मिलते हैं, तो फिर मानव समाज के उद्धारार्थ मानव भूमि में दान के बीज बोने से बोने वालों को कितना अलभ्य लाभ होता होगा? खाली कुंभ मे जब भरा हुआ कुम्भ पानी डालता है, तब वह अपनी गर्दन को झुकाता है। वृक्ष भी फल प्राप्ति होने पर नीचे झुकते हैं। उसी प्रकार दाता को भी दान लेने वाले का सम्मान करके खुद के उद्धारार्थ दान देना चाहिये। दान लेने वाला ऋणी नहीं, मगर देने वाला ऋणी है। लेने वाले के प्रताप से ही उसकी लक्ष्मी का अच्छे से अच्छा उपयोग होता है। कर्म कर्तव्य के लिये ही करना उत्तम है। स्वर्ग, सुख या सत्ता की लालसा को छोड़ कर जो पाच मिनट के लिये ही सत्कार्य कर सकता है, उसमे आत्मिक गुणों का विकास करने की सत्ता बीज रूप से रही है। किसी प्रकार की इच्छा-फल की आशा-रक्खे बिना सत्कार्य करना ही आत्म संयम की शक्ति का उच्चतम स्वरूप है। बाहर के अनेक व्यापारों की अपेक्षा आत्म संयम बहुत ही उच्च शक्ति है। शुभ कार्य के फल की स्वार्थी भावना निर्मूल होने से मनुष्य विश्व भर मे प्रचण्ड शक्तिशाली बन जाता है। फलाशा की स्वार्थमय दृष्टि न रख कर स्वस्वभाव मय विशाल दृष्टि रक्खो। शत्रु है या मित्र यह विचार किये- बिना उनके श्रेय के लिये तत्पर रहो। अभेद भाव से फल की आशा बिना शुभ कार्य करना असिधारा सम कठिन व्रत है। यही असिधारा व्रत प्रगति के पथ मे आगे बढ़ा सकता है।

अपने बच्चे प्रति करुणा, प्रेम और स्नेह बताने वाली बिल्ली दयामूर्ति या प्रेम योगणी बन नहीं सकती। उसे अपने जीवन में किंचिन्मात्र सफलता भी नहीं मिल सकती। वह प्राणीमात्र के

पिता पितामहादि को मिलती है और मृत पूर्वजों के इस प्रकार के सम्मान से चीनी लोग प्रसन्न होते हैं और अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त होने का वे प्रयत्न करते हैं।

कई लोग तो जन्म होते ही अपनी कब्र बांधना प्रारम्भ कर देते हैं और निजी सम्पत्ति का अधिकांश उसमें लगाते हैं। जीवन पर्यंत कब्र बनाया करते हैं। बड़ी कब्र से बड़ी महत्ता मानी जाती है। जिससे कि मृत्यु सम्मुख रहे और पाप कार्य से मन शंकाशील रहने पावे। इसके बजाय भारत में अपने भोग विलास के लिये बड़ी २ महलात बाग बगीचे आदि बनाये जाते हैं। इनके बनाने वालों का ध्येय आजीवन विलास ही रहता है। इस प्रकार मनुष्यों की आकृति की भिन्नता के साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों में भी भिन्नता का अनुभव होता है।

कई लोग असत्य अनीति एवं अन्यायमय पेशा करके उन पापों को धोने के लिये दान करते हैं, यह दान नहीं किन्तु ठगाई है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करके उस अपराध से छूटने के लिये सिपाही को घूस (रिश्वत) देता है, इसी प्रकार यह भी शुभ कर्म को घूस देने समान है। अव्वल तो भारत में दान की प्रथा ही कम है, उस में भी वर्तमान में तो सिर्फ मान सन्मान के हेतु ही दान दिया जाता है। दाता दान लेने वाले के पैरों में पड़े और सोचे कि मेरे सद्भाग्य हैं कि आप सरीखे पात्र के योग से मेरी लक्ष्मी गंगा पावन होती है अन्यथा दुर्गंधमय हो जाती। कृपा करके फिर इस सेवक को पावन करें। आज कल दो सो रुपये का दान देकर लाख रुपये के मानकी इच्छा करते हैं। लाख का दान करना सुलभ है, किन्तु उससे प्राप्त मान का दान देना परम दुर्लभ है। दान में देने का नहीं है मगर बड़े से बड़ी लूट (प्राप्ति) है। जिस प्रकार किसान

जमीन में धान्य को बोते है सो जमीन को दान नहीं देते है मगर उसको लूटते हैं। मिट्टी, पानी, कर्दम व खात से भरी हुई जमीन में बीज बोने से उसके फल स्वरूप एक के स्थान पर सैंकडों बीज मिलते हैं, तो फिर मानव समाज के उद्धारार्थ मानव भूमि मे दान के बीज बोने से बोने वालो को कितना अलभ्य लाभ होता होगा? खाली कुभ में जब भरा हुआ कुम्भ पानी डालता है, तब वह अपनी गर्दन को झुकाता है। वृक्ष भी फल प्राप्ति होने पर नीचे झुकते हैं। उसी प्रकार दाता को भी दान लेने वाले का सम्मान करके खुद के उद्धारार्थ दान देना चाहिये। दान लेने वाला ऋणी नहीं, मगर देने वाला ऋणी है। लेने वाले के प्रताप से ही उसकी लक्ष्मी का अच्छे से अच्छा उपयोग होता है। कर्म कर्तव्य के लिये ही करना उत्तम है। स्वर्ग, सुख या सत्ता की लालसा को छोड कर जो पाच मिनट के लिये ही सत्कार्य कर सकता है, उसमें आत्मिक गुणों का विकास करने की सत्ता बीज रूप से रही है। किसी प्रकार की इच्छा-फल की आशा-रक्खे बिना सत्कार्य करना ही आत्म संयम की शक्ति का उच्चतम स्वरूप है। बाहर के अनेक व्यापारों की अपेक्षा आत्म सयम बहुत ही उच्च शक्ति है। शुभ कार्य के फल की स्वार्थी भावना निर्मूल होने से मनुष्य विश्व भर में प्रचण्ड शक्तिशाली बन जाता है। फलाशा की स्वार्थमय दृष्टि न रख कर स्वस्वभाव मय विशाल दृष्टि रक्खो। शत्रु है या मित्र यह विचार किये- बिना उनके श्रेय के लिये तत्पर रहो। अभेद भाव से फल की आशा बिना शुभ कार्य करना असिधारा सम कठिन व्रत है। यही असिधारा व्रत प्रगति के पथ में आगे बढा सकता है।

अपने बच्चे प्रति करुणा, प्रेम और स्नेह बताने वाली बिल्ली दयामूर्ति या प्रेम योगणी बन नहीं सकती। उसे अपने जीवन में किंचिन्मात्र सफलता भी नहीं मिल सकती। वह प्राणीमात्र के

पिता पितामहादि को मिलती है और मृत पूर्वजों के इस प्रकार के सम्मान से चीनी लोग प्रसन्न होते हैं और अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त होने का वे प्रयत्न करते हैं।

कई लोग तो जन्म होते ही अपनी कब्र बाँधना प्रारम्भ कर देते हैं और निजी सम्पत्ति का अधिकांश उसमें खर्चते हैं। जीवन पर्यंत कब्र बनाया करते हैं। बड़ी कब्र से बड़ी महत्ता मानी जाती है। जिससे कि मृत्यु सन्मुख रहे और पाप कार्य से मन शंकाशील रहने पावे। इसके बजाय भारत में अपने भोग विलास के लिये बड़ी २ महलात, बाग बगीचे आदि बनाये जाते हैं। इनके बनाने वालों का ध्येय आजीवन विलास ही रहता है। इस प्रकार मनुष्यों की आकृति की भिन्नता के साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों में भी भिन्नता का अनुभव होता है।

कई लोग असत्य अनीति एवं अन्यायमय पेशा करके उन पापों को धोने के लिये दान करते हैं, वह दान नहीं किन्तु ठगाई है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करके उस अपराध से छूटने के लिये सिपाही को घूस (रिश्वत) देता है इसी प्रकार यह भी दान धर्म को घूस देने समान है। अव्वल तो भारत में दान की प्रथा ही कम है, उस में भी वर्तमान में तो सिर्फ नाम सम्मान के हेतु ही दान दिया जाता है। दाता दान लेने वाले के पैरों में पड़े और सोचे कि मेरे सद्भाग्य है कि आप सरीखे पात्र के योग से मेरी लक्ष्मी गंगा पावन होती है अन्यथा दुर्गंधमय हो जाती। कृपा करके फिर इस सेवक को पावन करें। आज कल तो सौ रुपये का दान देकर लाख रुपये के नाम की इच्छा करते हैं। लाखों का दान करना सुलभ है, किन्तु उससे प्राप्त मान का त्याग देना परम दुर्लभ है। दान में देने का नहीं है मगर बड़े से बड़ी लूट (प्राप्ति) है। जिस प्रकार किसान

जमीन मे धान्य को बोते है सो जमीन को दान नहीं देते हैं मगर उसको लूटते हैं। मिट्टी, पानी, कर्दम व खात से भरी हुई जमीन में बीज बोने से उसके फल स्वरूप एक के स्थान पर सेकडों बीज मिलते है, तो फिर मानव समाज के उद्धारार्थ मानव भूमि मे दान के बीज बोने से बोने वालों को कितना अलभ्य लाभ होता होगा? खाली कुभ मे जब भरा हुआ कुम्भ पानी डालता है, तब वह अपनी गर्दन को झुकाता है। वृक्ष भी फल प्राप्ति होने पर नीचे झुकते हैं। उसी प्रकार दाता को भी दान लेने वाले का सम्मान करके खुद के उद्धारार्थ दान देना चाहिये। दान लेने वाला ऋणी नहीं, मगर देने वाला ऋणी है। लेने वाले के प्रताप से ही उसकी लक्ष्मी का अच्छे से अच्छा उपयोग होता है। कर्म कर्तव्य के लिये ही करना उत्तम है। स्वर्ग, सुख या सत्ता की लालसा को छोड कर जो पांच मिनट के लिये ही सत्कार्य कर सकता है, उसमे आत्मिक गुणों का विकास करने की सत्ता बीज रूप से रही है। किसी प्रकार की इच्छा-फल की आशा-रक्खे विना सत्कार्य करना ही आत्म सयम की शक्ति का उच्चतम स्वरूप है। बाहर के अनेक व्यापारों की अपेक्षा आत्म सयम बहुत ही उच्च शक्ति है। शुभ कार्य के फल की स्वार्थी भावना निर्मूल होने से मनुष्य विश्व भर मे प्रचण्ड शक्तिशाली बन जाता है। फलाशा की स्वार्थमय दृष्टि न रख कर स्वस्वभाव मय विशाल दृष्टि रक्खो। शत्रु है या मित्र यह विचार किये- विना उनके श्रेय के लिये तत्पर रहो। अभेद भाव से फल की आशा विना शुभ कार्य करना असिधारा सम कठिन व्रत है। यही असिधारा व्रत प्रगति के पथ मे आगे बढा सकता है।

अपने बच्चे प्रति करुणा, प्रेम और स्नेह बताने वाली बिल्ली दयामूर्ति या प्रेम योगणी बन नहीं सकती। उसे अपने जीवन में किंचिन्मात्र सफलता भी नहीं मिल सकती। वह प्राणीमात्र के

पिता पितामहादि को मिलती है और मृत पूर्वजों के इस प्रकार के सम्मान से चीनी लोग प्रसन्न होते हैं और अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त होने का वे प्रयत्न करते हैं।

कई लोग तो जन्म होते ही अपनी कब्र खोदना प्रारम्भ कर देते हैं और निजी सम्पत्ति का अधिकांश उसमें खर्चते हैं। जीवन पर्यंत कब्र बनाया करते हैं। बड़ी कब्र से बड़ी महत्ता मानी जाती है। जिससे कि मृत्यु सन्मुख रहे और पाप कार्य से मन शंकाशील रहने पावे। इसके बजाय भारत में अपने भोग विलास के लिये बड़ी २ महलात, बाग बगीचे आदि बनाये जाते हैं। इनके बनाने वालों का ध्येय आजीवन विलास ही रहता है। इस प्रकार मनुष्यों की आकृति की भिन्नता के साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों में भी भिन्नता का अनुभव होता है।

कई लोग असत्य अनीति एवं अन्यायमय पेशा करके उन पापों को धोने के लिये दान करते हैं, वह दान नहीं किन्तु ठगाई है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करके उस अपराध से छूटने के लिये सिपाही को घूस (रिश्वत) देता है इसी प्रकार यह भी शुभ कर्म को घूस देने समान है। प्रथम तो भारत में दान की प्रथा ही कम है, उस में भी वर्तमान में तो सिर्फ मान सम्मान के हेतु ही दान दिया जाता है। दाता दान लेने वाले के पैरों में पड़े और सोचे कि मेरे सद्भाग्य है कि आप सरीखे पात्र के योग से मेरी लक्ष्मी गंगा पावन होती है अन्यथा दुर्गंधमय हो जाती। कृपा करके फिर इस सेवक को पावन करें। आज कल तो सौ रुपये का दान देकर लाख रुपये के मान की इच्छा करते हैं। लाख का दान करना सुलभ है, किन्तु उससे प्राप्त मान का त्याग देना परम दुर्लभ है। दान में देने का नहीं है मगर बड़े से बड़ी लूट (प्राप्ति) है। जिस प्रकार किसान

जमीन मे धान्य को बोते हं सो जमीन को दान नहीं देते हैं मगर उसको लूटते हं। मिट्टी, पानी, कर्दम व खात से भरी हुई जमीन मे बीज बोने से उसके फल स्वरूप एक के स्थान पर सैकडों बीज मिलते हं, तो फिर मानव समाज के उद्धारार्थ मानव भूमि मे दान के बीज बोने से बोने वालों को कितना अलभ्य लाभ होता होगा? खाली कुभ में जब भरा हुआ कुम्भ पानी डालता है, तब वह अपनी गर्दन को झुकाता है। वृक्ष भी फल प्राप्ति होने पर नीचे झुकते हैं। उसी प्रकार दाता को भी दान लेने वाले का सम्मान करके खुद के उद्धारार्थ दान देना चाहिये। दान लेने वाला ऋणी नहीं, मगर देने वाला ऋणी है। लेने वाले के प्रताप से ही उसकी लक्ष्मी का अच्छे से अच्छा उपयोग होता है। कर्म कर्तव्य के लिये ही करना उत्तम है। स्वर्ग, सुख या सत्ता की लालसा को छोड कर जो पाच मिनट के लिये ही सत्कार्य कर सक्ता है, उसमे आत्मिक गुणों का विकास करने की सत्ता बीज रूप से रही है। किसी प्रकार की इच्छा-फल की आशा-रक्खे विना सत्कार्य करना ही आत्म संयम की शक्ति का उच्चतम स्वरूप है। बाहर के अनेक व्यापारों की अपेक्षा आत्म सयम बहुत ही उच्च शक्ति है। शुभ कार्य के फल की स्वार्थी भावना निर्मूल होने से मनुष्य विश्व भर मे प्रचण्ड शक्तिशाली बन जाता है। फलाशा की स्वार्थमय दृष्टि न रख कर स्वस्वभाव मय विशाल दृष्टि रक्खो। शत्रु है या मित्र यह विचार किये- विना उनके श्रेय के लिये तत्पर रहो। अभेद भाव से फल की आशा बिना शुभ कार्य करना असिधारा सम कठिन व्रत है। यही असिधारा व्रत प्रगति के पथ मे आगे बढ़ा सकता है।

अपने बच्चे प्रति करुणा, प्रेम और स्नेह बताने वाली बिल्ली दयामूर्ति या प्रेम योगणी बन नहीं सकती। उसे अपने जीवन में किंचिन्मात्र सफलता भी नहीं मिल सकती। वह प्राणीमात्र के

प्रति अपने बच्चे जैसा मातृभाव रक्खें तो दयामाता हो सके और उस का जीवन सफल हो। इसी प्रकार मनुष्य अपने कुटुम्ब आदि स्वजन, स्नेहि के साथ स्नेह भाव रक्खे और इसी से यदि मनुष्य को दयावतार माना जाय तो अपने बच्चे पर दया करने वाली बिल्ली को भी दयावतार मानना चाहिए। शत्रु तथा मित्र प्रति अभेद भाव से सेवा करने वाला ही शुभ कर्तव्य करता है ऐसा समझना चाहिए।

अपने पास मांगने वाला भिक्षुक हमारी उपकार बुद्धि जागृत करके हमें सुखी बनाता है। भिक्षुक हमको उपकार करने का अवसर देता है अतः उसका आभार मानना चाहिए न कि, उससे आभार मनाना या यशोगान कराना। इसमें शोभा नहीं है। भिक्षुक द्वारा दातृत्व बुद्धि रूपी सौभाग्य के लिए कृतार्थ समझें। भिक्षुक की भिक्षा-याचना मात्र श्रीमन्तों के उद्धार के लिए उपकारक तो अनाथ, दया पात्र और ज्ञानपिपासुओं के लिए साधन समर्पण करना श्रीमन्तों के लिए कितना महदुपकारक है ? इस बात का विचार करके श्रीमन्तों को अपना कर्तव्य में आरूढ़ होना चाहिए।

हमने परोपकार किया ऐसा विचार भी अहंकार का पोषक है। परोपकार वृत्ति बढ़ने पर अहंभाव का नाश होता है। जंगल में लंगोट मात्र रखकर रहने वाला भी अहंवृत्ति रक्खे तो वह त्यागी नहीं संसारी है। और अनासक्त भावना वाले भरत जैसे चक्रवर्ति सिंहासनारूढ़ होते हुए भी त्यागी है।

पवित्र विचार करना विश्व में अमृत फैलाना है और अपवित्र विचार करना विश्व में विष फैलाना है। दूसरों को सहाय्य करने वाला खुद को ही सहाय्य करता है, दूसरों का नहीं। ऐसा करके

वह खुद को सुशिक्षित और सस्कारी बनाता है। मात्र यह एक सबक (पाठ) सिखे तो भी बस है। अच्छे कर्मों के बदले में अन्य ऐसे शुभ कार्य स्वभाविक होते रहे ऐसी भावना रक्खें। फल की आशा रहित बुद्धि एक अमोघ शस्त्र है। इसीसे अज्ञान का नाश होता है और उसका अपूर्व आनन्द स्वय भोग सकता है।

मक्खी घृतादि वस्तु खाने आती है, परतु उसीमें फँसकर मरती है वैसे ही मनुष्य विषय-विलास का आनन्द लूटते उसी में फँस जाते हैं और दूसरों के दया-पात्र या हास्यास्पद होते हैं। गये लेने और लिवा गये, गये भोगने और भोगा गये, गये मालिक होने पर होगये गुलाम, गये कर्म करने पर कर्म रूप होगये, जीवन के सुख भोगने गये और स्वय भोग रूप होगये। इतना प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी जो सावधान न हो, उसे अपना वैभव-विलास के साधन बलात् छोडकर दीन मुख से चला जाना पडता है, इतना ही नहीं बलात उसे दूर किया जाता है।

दान, उदारता और सहिष्णुता प्रकट करोगे उससे अनन्त गुणा वैभव मिलेगा। दान, उदारता और सहिष्णुता नहीं रक्खें तो भी कुदरत बलात् करायगी। सुख-विलास के साधन सदुपयोग मे लगावें, अन्यथा कुदरत गर्दन पकडकर छाती पर बैठकर हडप करेगी। भान न भूल कर कुछ स्याने बनो। अनिच्छा से किंचिन्मात्र छोडने में दुःख है, परतु स्वाधीनता (स्वेच्छा) से सर्वस्व का त्याग में परम सुख और शांति है। ऐसा कोई मानव नहीं है कि जिसका सर्वस्व कुद-रत ने कभी न छीना हो।

जितना अधिक सचय किया होगा, उस अधिक सम्पत्ति को अन्त समय त्यजते हुए इतना ही अधिक मोहजन्य दु ख व क्लेप

होगा कि हाय! यह सब मेरे से पदार्थ छीना जारहा है, मेरा कुछ नहीं चलता विवश हूँ। इस अत्याचार के सामने अपील, प्रार्थना फर्याद, आक्रन्दन सुनने वाला कोई नहीं है। जिस शरीर को जीवन भर पुष्ट किया रक्षा की शृंगार किया अपना ही मान कर आत्म भान भूल कर जिसके लिये अनेक पाप किये, वह भी दगर (दगा) दे रहा है। उठने बैठने की शक्ति नहीं रही है और शरीर भार भूत मालूम होता है। सम्पत्ति परम विपत्ति सम दिखती है। उस समय कर्तव्य विमुखता जीवन के अत्याचार और पापों का प्रकाश नजर समक्ष आता है। पाप-फल की कल्पना कर कम्पित होता है सर्वस्व का भोग देकर भी कुछ समय अधिक जीना चाहता है किन्तु यह अशरण दया पात्र, अपात्र आत्मा अपने जीवन की बाजी बचाने कुदरत के साम्राज्य में-अन्य गति में गमन करता है। इसे देखकर स्नेहिजन दो अश्रु गिराते हैं कोई ताली पीटते हैं कोई हँसते कूदते हैं और कुछ समय बाद भूल जाते हैं याद भी नहीं करते और जैसा जन्मा ही न था वैसे उसका नाम निशां लुप्त हो जाता है।

शीघ्र मोक्षमेग तो शीघ्र जगना जैसे शीघ्र होगे तो शीघ्र मिलेगा। अन्यथा मृत्यु समय जालमें फँस पक्षीवत् छटपटाट करना व्यर्थ होगा। स्त्री पुत्र परिवार धन और अधिकार के महफिल सुख के लिये मनुष्य अपने जीवन की भस्म बनाता है और भस्मवत् हवा में उड़ जाता है।

रोग के योग्य शरीर न हो वहाँ तक शरीर में रोग प्रविष्ट नहीं होते। दुश्मनों को आमन्त्रण बिना दिये दुश्मन पास में नहीं आ सकते। मुर्दा हुये बिना कौए, गीधादि पक्षी खाने नहीं आते वैसे ही जीव अपने सुख दुःख का कर्ता हर्ता है। विचारने पर

मालूम पडेगा, कि जीवन मे जितनी ठोकर खाते है उसकी पूर्व तैयारी अपने से हुई थी, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होगा। इससे सिद्ध होता है कि, वाह्य जगत् हम पर सत्ता नहीं चला सकता, किंतु आंतर तत्त्व की सत्तानुसार-आज्ञानुसार वाह्य जगत् प्रवर्तता है। अपनी अन्तर सृष्टि पर सत्ता-अधिकार जमावें तो विश्व की कोई सत्ता हम पर नहीं चल सके।

हम अपने दोष नहीं देखते, पर अन्य के देखते हैं। यदि हम स्वय निर्दोष हो तो ऐसे दूषित जग में हमारा जन्म ही क्यों हो? जगत् में सब सैतान है, तो तू भी सैतान है। वरना तेरा जन्म सैतानों मे नहीं होता। दूसरों के दोष देखने की कायर (नीच) वृत्ति छोड कर दोष देखने की धीर वृत्ति से महावीर बनें।

हम ज्ञान की बातें करते हैं, पर प्रसग आने पर शब्द रूपी कंकर तोप के गोले की तरह हमें चमका देता है और ज्ञान को भगा देता है, इससे अधिक पामरता क्या हा सके? कोई भी मूर्ख मनुष्य हमको अप्रिय शब्द कहकर हमारी ज्ञान बुद्धि को विकृत बना सके-राग द्वेष जगा सके, इससे बढकर अन्य पामरता क्या हो सके? दिवार को मुष्टि प्रहार करने वाले को ही मार लगता है, दिवार को नहीं। तो क्या हम दिवार से भी अधिक जड है कि छोटे कंकर से हिल जायँ-विकृत होजायँ? हम चैतन्य हैं अतः चैतन्य शक्ति को समझकर अपना कर्तव्य विचारना चाहिये, जिससे शुद्ध चेतना जागृत हो।

संसार-स्वरूप

१-संसारासक्त जीवों की मनोदशा।

कोई परोपकारी वैद्य घर घर जाकर निरोग व बीमारों की नब्ज (नाड़ी) देखकर सद्भाव से अमूल्य दवाइयाँ देवें तो लोग कहेंगे कि, वैद्य अपने धन्धे की खातिर के लिए फिर रहा है और वैद्य की दवाई पर विश्वास कम करते हैं। वैसे ही ज्ञानी-परोपकारी पुरुष के स्थान २ विचर कर धर्मोपदेश देने को अज्ञानी धन स्वार्थ समझते हैं और उनके वचन-उपदेश-का अनादर करते हैं।

सूँअर (सूअर) के पास मेवा मिष्टान्न धरने पर भी वह उसका स्वीकार नहीं करके काटने-मारने-दौड़ता है। उसे शंका होती है कि, यह मेरा अमुक आहार विष्टा लेने आया है। इसी तरह संसारी जीवों को विषय कषाय आरम्भ-परिग्रह (जो विष्ठा से भी अत्यधिक मलीन है) छोड़ने की इच्छा नहीं होती। ऐसा त्याग का उपदेश देने वालों का वे विरोध करते हैं। उनको ज्ञान, दर्शन चारित्र दान शील-तप-भावनादि अमुल भोजन परोसने पर भी उन्हें विष भोजन समझकर अनादर करते हैं। अज्ञानी बाल जीवों को ज्ञानी के वचन पर विश्वास नहीं आता। अथवा करता भी है तो अपने विषय-कषाय तथा आरम्भ-परिग्रह की रक्षा करके त्याग या मोक्ष मिलता हो तो उस पर विचार करता है। ज्ञानी के वचनों को मुँह से मिथ्या नहीं कहता इतना उसका उपकार समझें। परन्तु वर्तन से तो ज्ञानी के वचन त्यागरूप विष हो ऐसी अपेक्षा करता है।

व्याख्यान मे अनेक विषय आते है। विषयासक्त श्रोता जब व्याख्यान श्रवण करता है और वक्ता (ज्ञानी) जब धन की निःसारता फरमाते है उ न वक्त उसे वसूली याद आती है। दान का उपदेश सुनते समय लेना याद आता है। ब्रह्मचर्य का उपदेश सुनते समय अपना या पुत्र-पुत्री के लग्न याद आते है। तप के उपदेश श्रवण के समय जीमणवार याद आता है। पवित्र भावना का उपदेश सुनते समय कचहरी के दाव पेच याद आते हैं। इस प्रकार उपदेश का असर किंचित् मात्र नहीं होता। भरे हुए घडे में पानी भरा जाय तो ऊपर से चला जाता है, वैसे ही विषय कषाय से भरे हुए हृदय पर से उपदेश बह जाता है-कोई असर नहीं होता। उसमें आत्म कल्याण के तत्त्व कैसे ठहरे ? धर्म-तत्त्व में भी विषय कषाय के तत्त्व मिला कर विषमय बनाया जाता है।

सर्वस्व त्याग कर भी जो धर्मोपदेश सुनता है, वह सुसाध्य रोगी है। अनुकूलता होने पर धर्मोपदेश सुनता है, वह कष्ट साध्य रोगी है और जो मात्र लोक व्यवहार के लिए ही उपदेश सुनता है वह असाध्य रोगी है।

मीठाई खाते २ जैसे चटणी, नीम्बू, मिर्च, दाल, शाक आदि खाने की इच्छा हो जाती है, वैसे ही धर्मोपदेश सुनते २ विषय-वासना प्रति जीव का चित्त चला जाता है। जैसे गगन विहारी चील की दृष्टि जमीन पर के सडे मांस पर ही होती है, वैसे धर्मोपदेश रूपी गगन विहार करने पर भी विषयासक्त जीवों की दृष्टि विषय रूप सडे मांस की ओर लगी रहती है। अपथ्य पर प्रेम करने वालों को औषधि फायदा नहीं करती, वैसे ही विषय-कषाय के प्रेमी जीवों को जिनवाणी नहीं रुचती। जैसे चोर सिपाही के समक्ष साहूकार जैसा अच्छा वर्ताव करता है और सिपाही के अभाव मे

पुनः चोरी करके भग जाने का विचारता है, वैसे ही अज्ञानी-जीव धर्म स्थानक में धार्मिकता की सभ्यता रखता है और धर्म भवन के बाद धर्म स्थानक छोड़ते ही पुनः विषय कषाय में दौड़ धूप करता है। रोगादि समय में धर्म भावना का विचार करता है और रोगादि के अभाव में पुनः विषय-कषाय में लीन होता है।

मनुष्य अपने जीवन रूप भवन में सदा पुण्य या पाप भरते रहते हैं। बाजार से चीजें खरीद ले के लिये जैसे धन की आवश्यकता है, वैसे ही संसार में सुख दुःख रूपी चीजों के लिए पुण्य-पाप रूपी धन की आवश्यकता है। धर्म के शरण बिना आत्मा क्षुद्र भिक्षुक है।

विषय-कषाय युक्त भिक्षुक आत्मा का उदर बड़ा है अनन्त काल से इसमें विषय भोग भरने पर भी वह नहीं भरता है। विषय कषाय के योग से आत्मा बुद्धि हीन बनी है। अनन्त काल के विषय भोग के अनेक विध दुःख भोगने पर भी सुख के लिये लेश मात्र विचार करता नहीं है। मन वचन काया के अशुभ योग धर्म एवं धन के लुटेरे हैं तथापि इनका कमाऊ पुत्रवत् आदर किया जाता है। स्त्री, पुत्र धनादि आत्मा के अनादि काल के बन्धन हैं, तथापि इन्हें मुक्ति के कारण मानकर इन पर स्नेह किया जाता है। ऐसी मनोदशा के कारण संसारी जीव अनन्त काल से अनन्त संसार में भवभ्रमण करते हैं।

२–दोष-दृष्टि

किसी के स्वभाव के बीच मे नहीं पडना चाहिये। अपना २ स्वभाव बदलने मे स्वय समर्थ होते हैं, दूसरे सभी चाहे कितने ही ज्ञानी हो, असमर्थ हैं। तो हम किसी का स्वभाव बदलने वाले कौन हैं? किसी का दोष देखना अनधिकार चेष्टा है। कटक कटक से ही निकल सकता है, वैसे दोषी के दोप देखने मे हम स्वय दोषित होंगे तभी दोप का काटा देख सकेंगे। निर्धन और रोगी का तिरस्कार नहीं किया जाता, वैसे ही गुण हीन और दोषी का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। किसी की टीका या निन्दा करके उसको सुधार ने की आशा कीचड से कीचड धोने समान है।

कोई वृक्ष मीठे फल देते हैं और कोई कडुवे-तदपि निन्दा या टीका नहीं की जाती, क्यों कि ये प्रकृति के आधीन हैं। वैसे ही मानव अपनी प्रकृति के आधीन है तो दोष किनके देख? सब अपने स्वभावाधीन है, वह अन्यथा कैसे हो सके? फल लेते समय उसके छिलके, गुटली आदि भी साथ लेना पडता है, इसी तरह मानव के दोष रूप छिलके गुटली की उपेक्षा करके उसमें छिपे हुए गुण रूप फल को ग्रहण करना चाहिए। दोषी के दोष नहीं देखते दोष रूप फलका उत्पादक-उपादान-बीज देखना चाहिए। अपने दोष अक्षम्य और पर दोप क्षम्य समझना चाहिए। अन्य का दोष एक वक्त ढकने से पुनः वह दृष्टि गोचर नहीं होता। दोष दृष्टि अपनी ही तुच्छता है। दोषी प्रति माता पुत्रवत् प्रेम रखना चाहिए। दोष दृष्टि वाला आज दूसरों के दोष देखता है, कल मित्र-स्नेहियों के दोष देखेगा और क्रमशः यह आदत बढकर अततः उसे अखिल विश्व दोषित दिखेगा है। दोष

पुनः चोरी करके भग जाने का विचारता है, वैसे ही अज्ञानी-जीव धर्म स्थानक में धार्मिकता की सम्भावना रखता है और धर्म श्रवण के बाद धर्म स्थानक छोड़ते ही पुनः विषय कषाय में तीव्र धूप करता है। रोगादि समय में धर्म भावना का विचार करता है और रोगादि के अभाव में पुनः विषय-कषाय में लीन होता है।

मनुष्य अपने जीवन रूप बर्तन में सदा शुभ्र या दोष भरते रहते हैं। बाजारू चीजें खरीदने के लिये जैसे धन की आवश्यकता है, वैसे ही संसार में सुख दुःख रूपी सौदा के लिए पुण्य-पाप रूपी धन की आवश्यकता है। धर्म के स्मरण बिना आत्मा क्षुद्र भिक्षुक है।

विषय-कषाय युक्त भिक्षुक आत्मा का उदर बड़ा है अनन्त काल से इसमें विषय भोग भरने पर भी वह नहीं भरता है। विषय कषाय के योग से आत्मा बुद्धि हीन बनी है। अनन्त काल के विषय भोग के अनेक विष दुःख भोगने पर भी सुख के लिये लेश मात्र विचार करता नहीं है। मन वचन काया के अशुभ योग धर्म एवं धन के लुटेरे हैं तथापि उनका स्वागत पूर्वक आदर किया जाता है। स्त्री, पुत्र धनादि आत्मा के अनादि काल के बन्धन हैं, तदपि इन्हें मुक्ति के कारण मानकर उन पर स्नेह किया जाता है। ऐसी मनोदशा के कारण संसारी जीव अनन्त काल से अनन्त संसार में भवभ्रमण करते हैं।

स्वार्थ मे से होता है। वह आत्मा के महान् स्वरूप का विस्मरण कराता है। दोष दृष्टि से ईर्षा, वैर, विरोध, निंदा और अन्य पाप मय भावनाओं का जन्म होता है। दोष दृष्टि वाला परदोष दर्शन रूप बड का बीज लेकर अपने मे वट वृक्ष बनाने की क्रिया करता है। किसी का झूठा आहार नहीं खाया जाता, तो उससे अनन्त मलीन भावना का दोष रूप आहार आत्म प्रदेश में किस प्रकार पचाया जाय ?

हमे परदोषं सहिष्णु होना चाहिये। परदोप जैसे सामान्य तत्व को जो नहीं सह सकता, वह शरीर की भयकर वेदना समभाव से कैसे सह सके ? सब के उज्ज्वल पहलू देखो। काला पहलू देखने के लिये अन्धकार में जाना पडेगा। भुड (सुअर) की दृष्टि नन्दन वन मे भी विष्टा ढुंढती है, वैसे दोष दर्शक, परमात्म स्वरूप मानव ससार के नन्दन वन में अनन्त रमणीय मनुष्यों में से भी दोप देखने की बुद्धि रखना है। परधन छिपाने वाला चोर है तो पर गुण रूप धन छिपाने वाला दोष दर्शी, महा चोर है।

सडे हुए खून को पीने वाली जोंक से भी दोष दर्शी अधमतम है। क्योंकि वह अनन्त दुर्गंध—अनन्त मलीन दोष रूप रस पीता है। किसी के दोष देखना अधमाधम कर्तव्य है। पर दोष न सहना बडी दरिद्रता, निर्धनता और दीन दशा है। और दोप सहकर गुण दृष्टि रखना सर्वोच्च श्रीमन्ताई है।

शरीर के ज़ख्म की मनुष्य प्रेम से सेवा करता है तो दोषी मनुष्य क्या ज़ख्म से भी अधिक घृणास्पद है कि, उसकी सेवा नहीं करके, तिरस्कार किया जाय ? ज़ख्म को अराम होने तक प्रेम पूर्वक सेवा की जाती है, वैसे ही दोपी, गुणी न बने वहा तक उसकी प्रेम पूर्वक सेवा करना चाहिये। मनुष्य के दोप नहीं

के कंटक दृष्टि से दूर किए जाँय तो विश्व नन्दनवन दिखेगा और दोष दृष्टि कंटक से शाल्मली वृक्ष। विष्टा के पात्र से विष्टा और अमृत के पात्र से अमृत भरता है। वैसे दोषी की दृष्टि से दोष और गुणी की दृष्टि से गुण प्रतीत होते हैं।

मनुष्य किसी का दोष दूसरे को कहता है। दूसरा तीसरे को, तीसरा चौथे को चौथा पाँचवे को यों परम्परा बढ़ती जाती है और बिन्दु का सिन्धु होता है। दोष दर्शी क्रमशः बिन्दु विषको सिन्धु बना कर विश्व में विष के परमाणु फैलाता है और गुण दर्शी विश्व में अमृत परमाणु फैलाता है। विश्व में सुख का उपादान गुण दृष्टि तथा दुःख का उपादान दोष दृष्टि ही है।

मनुष्य को अपने हृदय का दोष दृष्टि रूप पौधा उखाड़ फैंकना चाहिये जिससे गुण दृष्टि का पौधा बढ़ सकेगा। उजाड़ प्रिय पुत्र का पक्ष लेने वाला पिता उसका अहित करता है। वैसे अपना दोष नहीं निकालते दूसरे का दोष निकालने वाला अपना अहित करता है। हम में जहाँ तक सूक्ष्म दोष हों वहाँ तक हमको अपना पक्ष नहीं करना चाहिये। दोष दृष्टि हिंसक दृष्टि है और गुण-दृष्टि अहिंसक दृष्टि है। दोष दृष्टि गये बिना दया तथा अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। वह मानव दया पालने में असमर्थ है। ऐसा अपात्र अन्य स्थावर तथा त्रस जीवों की दया कैसे पाल सकता है? आर्य की दृष्टि मांस व दारू से नफरत करती है तो परदोष दर्शन में क्यों नफरत न करें? दोष दृष्टि वाले का जीवन विघ्नों की माला है। प्रेम से गुण दृष्टि और द्वेष से द्वेष दृष्टि उत्पन्न होती है। दोष दृष्टि में संकुचितता भारीपन है। भारी वस्तु का स्वभाव नीचे जाने का है। गुण दृष्टि में उदारता अर्थात् हलकापन है। उसका स्वभाव ऊँची गति में जाने का है। दोष दृष्टि का जन्म

चाहिए। हमारी दोष दृष्टि हममें तथा अन्य मे दोप उत्पन्न करती है। दोष, निन्दा, ईर्षा, वैर और दोष दृष्टि मानव का जाति स्व-भाव नहीं होने से वे जीवन में अनेक विध विष उत्पन्न करके रोगी बनाते हैं। 'करे सो भरे' के न्याय से दोप दर्शी अपना पतन करता है। दोप दर्शी के राक्षसी विचार दूसरे से भी राक्षसी परमाणु लाकर अपने में भरता है और गुण दर्शी शांति के सन्देश से दूसरे के शांति के शुभ परमाणु अपने में भरता है। दोष दर्शी को दुगुणा नुकशान सहना पड़ता है। अपने में उत्पन्न हुए अशुभ पर-माणु और दूसरे से आये हुए अशुभ परमाणु, इस प्रकार दुगुणे अशुभ परमाणु दूसरे के अहित से हमारा दुगुणा अहित करता है। न्यायगर (धूल शोधक) धूल मे से भी सोना ढूण्ढता है, तो उसे मिलता है। वैसे ही मनुष्य जो अनन्त ज्ञान और गुण शक्ति का धारक है, उससे जितने गुण ग्रहण करना चाहें ले सकते हैं। पात्र अपनी पात्रतानुसार योग्य स्थान लेता है। दोषी दोषों को और गुणी गुणों को ग्रहण करते हैं।

३—संसार-शराब खाना

ससार रूप मदिरा मन्दिर में पांच इद्रियाँ और विषय कषायों को पोपण मिलता है। इस नशे में संसारी जीव मदोन्मत दिखते हैं। कितनेक स्थावर (एकेन्द्रिय) जीव उस नशे में इतने बेभान हैं कि किसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं कर सकते, न काया को हिला सकते।

देखते उसकी अनन्त शक्ति धारक चैतन्य आत्मा को देखो । दूसरे का राई जितना दोष मेरुसम और अपना मेरु जितना दोष राई सम माना जाता है, इससे अधिक अपात्रता और पामरता अन्य क्या होसकती है ? किसी का दोष देखना अपने में दोषों को निमन्त्रण देना है । दूसरे के लिये जैसा तुच्छ विचार हम करते हैं इसका प्रतिफल स्वरूप हम दूसरे को अपने लिये वैसा विचार करने की प्रेरणा करते हैं । ऐसा एक भी मनुष्य सर्वज्ञ की दृष्टि में नहीं है जो कि अनन्त गुण शक्ति का धारक न हो । परदोष देखने हमारी आँखें बाघ जैसी बड़ी बनती है और स्वदोष देखने के लिये मक्खी जैसी छोटी । स्वदोष देखने के लिये खुर्दबीन रखना चाहिये और परदोष देखने के लिये दुर्बीन । स्वदोष दर्शक को परदोष देखने समय नहीं मिलता । नामर्द परदोष देखता है और मर्द-वीर महावीर अपने ही दोष देखते हैं । शैतान छिद्र ढूंढता है और सज्जन छिद्र ढांकता है । दोष दर्शी सूई का काम (छेद) करता है और गुणदर्शी उसमें गुण रूप धागा पिरोकर उस छिद्र को ढक देता है ।

मानव शरीर में रही हुई दोष दृष्टि की पाशवता दूर करें । दोष वृत्ति की पशुता का नाश कर गुण दृष्टि की मानवता आत्मा की भलाई के लिये अपनाना चाहिये । घर में कुत्ता बिल्ली जैसे पशु को भी नहीं घुसने देते, तो आत्मा में दोष-दृष्टि रूप भयंकर पशुओं को क्यों घुसाने जायें ? द्रव्य पशु का इतना तिरस्कार किया जाता है तो आत्मा में उत्पन्न होने वाली भाव पशुता का सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

किसी के दोष देखने के पहले विचारना चाहिए कि हम भी किसी अज्ञान अवस्था में कैसे थे । हम स्वयं इससे विशेष दोषी थे। अपने काँटे से विश्व को नहीं तोलते हुए परमात्म पद के काँटे से तोलना

चाहिए। हमारी दोष दृष्टि हममें तथा अन्य मे दोष उत्पन्न करती है। दोष, निन्दा, ईर्षा, वैर और दोष दृष्टि मानव का जाति स्व-भाव नहीं होने से वे जीवन मे अनेक विध विष उत्पन्न करके रोगी बनाते हैं। 'करे सो भरे' के न्याय से दोष दर्शी अपना पतन करता है। दोष दर्शी के राक्षसी विचार दूसरे से भी राक्षसी परमाणु लाकर अपने में भरता है और गुण दर्शी शांति के सन्देश से दूसरे के शांति के शुभ परमाणु अपने में भरता है। दोष दर्शी को दुगुणा नुकशान सहना पड़ता है। अपने में उत्पन्न हुए अशुभ पर-माणु और दूसरे से आये हुए अशुभ परमाणु, इस प्रकार दुगुणे अशुभ परमाणु दूसरे के अहित से हमारा दुगुणा अहित करना है। न्यायगर (धूल शोधक) धूल मे से भी सोना ढूंढता है, तो उसे मिलता है। वैसे ही मनुष्य जो अनन्त ज्ञान और गुण शक्ति का धारक है, उससे जितने गुण ग्रहण करना चाहे ले सकते हैं। पात्र अपनी पात्रतानुसार योग्य स्थान लेता है। दोषी दोषों को और गुणी गुणों को ग्रहण करते हैं।

३—संसार-शराब खाना

ससार रूप मदिरा मन्दिर में पांच इद्रियाँ और विषय कषायों को पोषण मिलता है। इस नशे में ससारी जीव मदोन्मत दिखते हैं। कितनेक स्थावर (एकेन्द्रिय) जीव उस नशे में इतने बेभान हैं कि किसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं कर सकते, न काया को हिला सकते।

दो इन्द्रिय वाले जीव दिन भर ठूँस ठूँस कर शराब पिया करते हैं और सारी रात्रि दौड़ धूप करते हैं। वे इस मद के नशे में न सूंघ सकते हैं न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न विचार सकते हैं। तीन इन्द्रिय वाले जीव दारू की गन्ध लिया करते हैं। चार इन्द्रिय वाले गन्ध लेते और मदिरा मंदिर देखते रहते हैं। इसीलिये घूमते हैं, उड़ते हैं। पांच इन्द्रिय वाले जीव पांचों इन्द्रियों से मदिरा सेवन करते हैं और इतने मस्त हैं कि उनका मन मर गया है। (असंज्ञी-पंचेन्द्रिय) नारकीय जीव नशे में मस्त होकर परस्पर लड़ते हैं, झगड़ते हैं, छेदन भेदन आदि विविध वेदना सहते हैं।

पशु पक्षी दारू के नशे में अपने हिता-हित का विचार नहीं कर सकते तथा माता बहिन, पुत्री के साथ व्यभिचार करते किंचित् मात्र लज्जित नहीं होते। मुंह से चीत्कार करते रहते हैं, जल में गोता लगाते रहते हैं, आकाश में उड़ते हैं, परस्पर लड़ झगड़ कर अत्यन्त कठिन कष्ट भोगते हैं।

कई मनुष्य शराब के नशे में मान भूल कर पड़े रहे हैं, जमीन पर लोटते रहते हैं। मल मूत्र, लोहू राध, हाड़ मांस व नाक पित्त-कफ आदि अशुचि में पड़े रहने में आनन्द मानते हैं उसी का भोजन करते हैं उसी का पान करते हैं ऐसे असंख्य मानव हैं जिसको सम्मूर्छिम मनुष्य कहते हैं।

मात्र अल्प संख्यक मनुष्य ही ऐसे हैं, जो शराब के नशे में नाचते कूदते हैं, बिना निमित्त हँसते हैं गाते हैं, नशा में बड़े २ भाषण करते हैं, निरंकुश घूमते फिरते हैं। लोहू राध, हाड़-मांस मल-मूत्र के पुतले पुतली परस्पर चाटते हैं, स्पर्शते हैं, आलिंगते हैं, थूंक भरे मुंह से चुम्बन करते हैं, ओठ नाक, कान को चाटते हैं

मांस के टुकडे को अमृत समझ कर चाटते हैं, ग्रहण करते हैं। समझदार को शर्म जनक वर्ताव करते हैं। असत्य, चोरी, व्यभिचार, विषय-कषाय मय १८ पाप मय प्रवृत्ति करते हैं। नीचातिनीच प्रवृत्ति करने मे लज्जित नहीं होते हैं। राज-पुरुषों द्वारा पकडे जाते हैं दण्डित होते हैं, सजा पाते है तथापि नशे से दूर नहीं होते हैं।

पुन चार प्रकार के जीव हैं, जो देव कहे जाते हैं। वे विचित्र प्रकार से नशे मे चूकचूर हैं। वे नशे में अपनी आंख भी मूँदते नहीं हैं जमीन से ऊँचे चलते हैं, सारे दिन गान-तान, नाटक-चेटक करते रहते हैं, नाचते हैं, कूदते हैं, हँसते हैं, रोते हैं, नशे में चकचूर मदिरा में मस्त होकर पारस्परिक ईर्षा व द्वेष करते हैं।

कितनेक महापुरुप शराब खाना (ससार) में रहते हुए भी लेशमात्र शराब न पीते हैं, न सूघते हैं, न आवाज़ सुनते हैं, न स्पर्श भी करते हैं और सर्वथा ससारी प्रवृत्ति रहित हैं, वे साधु-मुनिराज आदि महापुरुप हैं। कई पुरुष संसार शराब खाने को छोड़ कर परम सुख मय निज स्थान में पहुँचे हैं, वे सिद्धात्मा। उक्त क्रम से जीव मद्य की मादक शक्ति बढाता जाता है। ज्ञानी पुरुप परोपकार भावना से नशा न करने को समझाते हैं, किन्तु जिनके अणु २ में मद्य का नशा भरा है, वे ज्ञानियों के वचन का अनादर-उपेक्षा-तिरस्कार करते हैं। ससार मद्य-शाला इतनी लम्बी चौडी है कि, उसका आदि और अन्त नहीं दीखता। उसमें ससारी जीव मदोन्मत्त हो कर भटक रहे हैं और अनन्त दु ख भोग रहे हैं। पुन्यशाली आत्माएँ इस मद्य-शाला के मोह से मुक्त होकर मोक्ष मन्दिर के लिए पैर उठाते हैं।

४—छः प्रकार के जीव।

संसार में छः प्रकार के जीव हैं। इन (मानवों) को महापुरुषों ने राजा की उपमा दी है। इनके नाम अधमाधम, अधम विमध्यम, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम।

अधमाधम राजा का स्वरूप—

यह राजा होने पर भी परम भाग्य हीन है। उसे अपने पद का कुछ भी मान नहीं है। परलोक की बातों से वह कोसों दूर है। धर्म का सदा विरोध करता है विषय-कषाय रूप विष का अंकुर है। यह बढ़कर विष वृक्ष होता है, दोष समूह का यह घर है उसमें से उदारता पराक्रम धीरता शांति आदि सद्‌गुण भग जाते हैं। वह अपने आत्म तत्त्व को शून्य समझता है। ऐसा निर्बल सत्त्व हीन राजा मानव भव की गद्दी पर बैठा है वह पामर यह भी नहीं समझता है कि उसे राज्य मिलता है या नहीं। उसे निज बल की मालूम नहीं है अपनी सम्पत्ति का भान नहीं है आत्म स्वरूप को जानता नहीं है, चोर उसका राज्य लूट रहा है जिसका उसे भान नहीं है। वह अज्ञानी चोर व दुश्मनों को रिश्तेदार स्वामी बड़ेरे मानता है। इससे चोर, लुटेरे-हर्ष बधाई मना रहे हैं और कहते हैं कि यह बड़ा दयालु राजा है जिसने उसका सब राज्य हमें दिया है और हमारे आधीन रहता है तथा दर्शन, चारित्र दान, शील तप आदि स्नेहियों को भूल कर हमको परम स्नेहि समझता है।

चार घाती कर्म चोर राज्य के सर्वे सर्वा समझे जाते हैं। इंद्रिय चोर धन लूटने का स्वयाधिकार आम प्रसन्न हो रहे हैं।

कषाय चोरो को डाका डालने की मौज मिलती है। नो कषाय-लुटेरे लूट के आनन्द मे लीन है। परिग्रह रूप दुष्ट सताने का अच्छा अवसर देखकर खुश होते हैं। अधमाधम राजा के राज्य मे महा मोह का पहरा लग रहा है, जिससे चारित्र व धर्म के सेवकों को प्रवेश ने नहीं देता। उसकी गन्ध भी लेने से सावधानी रखता है। अधमाधम राय नपुंसक (सत्वहीन) है, उसके शरीर पर विषय वासना के अनेक विध फोडे फुन्सी निकले हैं पाप रूप मेल से समस्त शरीर ढक गया है। राजा होने पर भी नौकर का और दास का दास है। नमक, मिर्च, घृत, गुड़, शक्कर, सोना, चांदी आदि बेचकर अपना पेट भरता है। राज्य भ्रष्ट होजाने पर भी अपनी भ्रष्टता समझता नहीं है। ऐसा राजा पद भ्रष्ट होकर भवाटकी मे भटकता फिरता है।

अधम राजा का स्वरूप–

इह लौकिक भोगों मे आसक्त, इस लोक मे सब प्रकार की पूर्णता मानने वाला, परलोक की बातो को न मानने वाला-परलोक विमुख, धर्म तत्त्वों से उदासीन, शब्द-रूप-गंध-रस-स्पर्शादि विषयों मे आसक्त, दान-शील-तप-भावनादि से उदासीन अधमराज है। वह विषय कषाय प्रति स्नेह रखता है, विषय-कषाय की समस्त आज्ञाएं उठाता है। इसे भी अपने राज्य का भान नहीं है। सम्यक् ज्ञान नहीं है, परन्तु सत्ता रूप अल्पांश है। यह अधमराज विषय-कषाय प्राबल्य के कारण आयु पूर्ण करके नरक में जाता है।

विमध्यम राजा (समदृष्टि) का स्वरूप–

इस राजा का विषय-कषाय तथा महामोह से मन्द प्रेम होता है। तदुपरांत चारित्र तरफ भी उसका लक्ष्य होता है। चारित्र राज प्रति उसका प्रेम है। इस लोक के लिए विचार करता है, वैसे पर-

लोक के लिए भी। धर्माराधन के लिए मन से भाव रखता है। दान-शील-तपादि के प्रति रुचि है। धर्म सम्मुख होने के लिए दिन रात यत्न करता है, संसार के भोगों को रोग तुल्य मानता है रोग मुक्त होने की भावना रोगी की होती है, वैसे ही यह राजा अपने जीवन को संसार रूपी कारागार से मुक्त करना चाहता है यत्न करता है। कैदी बंधन मुक्त होना चाहता है, वैसे ही यह विमध्यराय संसारबंधन से मुक्त होने का प्रयत्न करता है।

मध्यम राजा (श्रावक) का स्वरूप—

यह राजा भाव पूर्वक धर्माराधन करता है संसार में रहते हुए भी अपना लक्ष मोक्ष सम्मुख रखता है। विषय के कटुक फल जानकर उसको घटाने में नित्य प्रयत्न शील रहता है। यथाशक्ति धर्माराधन करता है। संसार को असार समझ कर उसके त्याग की अहोरात्र भावना करता है।

उत्तमराय (मुनिराय) का स्वरूप—

यह राजा अपने राज्य और सामर्थ्य को समझता है अपने गुण दोषों को समझता है। मोह के सैन्य को तथा विषय कषाय को मार भगाता है। संसार का त्याग करके आत्मराज्य के शासन में लीन रहता है। मोह जाल को बिखेर देता है, विषय रूप घट को फोड़ देता है राग-द्वेष का पराभव करता है स्नेह पाश को तोड़ देता है, क्रोधाग्नि को शान्त करता है मान पर्वत को चूर देता है माया बेली को उखाड़ देता है और लोभ समुद्र को तैर जाता है।

उत्तमोत्तम राय (तीर्थंकर) का स्वरूप—

यह राजा राजेश्वर स्वयं ज्ञानी सिद्धांतों के स्थापक, आत्म स्वरूप में लीन होकर मोक्ष पधारते हैं।

५, छः काय सिद्धि

पृथ्वी काय

जैसे मनुष्य के शरीर का घाव स्वय भर जाता है, वैसे ही खुदी हुई खान भी स्वय भर जाती है ! खुले पैर चलने वाले मनुष्य के तले घिसते हैं और पूर्ति होती रहती है वैसे ही मनुष्य, पशु, सवारियों के आवागम से पृथ्वी घिसती रहती है और पूर्ति होती रहती है जैसे बालक क्रमशः बढ़ता है इसी प्रकार पर्वतादि नित्य धीरे २ धीरे २ बढते रहते हैं। मनुष्य को लोहा पकडना-लेना-हो, जब लोहे के पास जाना पडता है, परन्तु चम्बुक नामक-पत्थर अपने स्थान पर रहकर चैतन्य शक्ति द्वारा लोहे को खेचता है। मनुष्य के पेट में पत्थरी का रोग होता हैं, वह सचित्त होने से नित्य बढता है। मछली के पेट में रहा हुआ मोती भी एक तरह का पत्थर है, वह नित्य बढता है। जैसे मनुष्य की हड्डियाँ में जीव है, वैसे पत्थर में भी जीव है।

अपकाय (जल)-

पक्षी के अण्डे मे रहे हुए प्रवाही पदार्थ पचेन्द्रिय पक्षी के के पिण्ड स्वरूप है, वैसे पानी के जीव भी एकेन्द्रिय जीवों के पिण्ड रूप है। मनुष्य तथा तिर्यंच गर्भावस्था के प्रारभ मे प्रवाही रूप होते हैं, वैसे ही जल के जीव समझें। जैसे सर्द ऋतु-में मनुष्य के मुँह में से बाफ निकती है वैसे कूए के जल से बाफ निकलती है। मनुष्य का शरीर ठण्डी मे गर्म और गर्मी मे ठण्डा रहता है, वैसे कूए का जल भी ठण्डी में गर्म और गर्मी में ठण्डा रहता है। मनुष्य की प्रकृति मे जैसे ठण्डी और गर्मी है।

वैसे अप् की प्रकृति में भी ठण्डी और गर्मी रहती है। जैसे शीत काल में मनुष्य का शरीर अकड़ जाता है, अधिक ठण्डे प्रदेश में लोहू जम जाता है वैसे ही अपकाय जल अकड़ जाता है, जम जाता है-बर्फ हो जाता है। देहधारी बाल, युवा और वृद्धावस्था क्रमशः धारण करते हैं, वैसे जल भी भाप, बर्फ और द्रव अवस्था धारण करता है। जैसे मनुष्य देह माता के गर्भ में पकता है उसी प्रकार जल भी छः मास तक बादल रूप गर्भ में रहकर पक्व होने पर वर्षा का रूप लेता है। देहधारी का गर्भ कभी कच्चा गिर जाता है वैसे पानी का भी कच्चा गर्भ गलता है जिस को गड़ कहते हैं।

तेउसकाय (अग्नि)—

जैसे देह धारी जीव श्वासोश्वास बिना जी नहीं सकता, वैसे अग्नि काय भी श्वासोश्वास बिना नहीं जी सकती है। जैसे ज्वर में देह धारी का शरीर गर्म (उष्ण) रहता है, वैसे अग्नि के जीव भी उष्ण होते हैं। मृत्यु होने से मनुष्यादि का देह ठण्डा पड़ जाता है, वैसे अग्नि के जीव भी नाश होने पर अग्नि ठण्डी हो जाती है। जैसे जुगनू जीव के शरीर में प्रकाश होता है, वैसे अग्नि के जीवों में प्रकाश है। जैसे त्रसजीव चलते हैं वैसे अग्नि भी चलती है फैल कर आगे बढ़ती है। जैसे मनुष्य ऑक्सीजन (प्राण वायु) लेकर कार्बन (विष वायु) निकालता है वैसे ही अग्नि भी ऑक्सीजन लेती है और कार्बन हवा बाहर निकालती है।

वायु काय—

हवा कोसों तक स्वतन्त्रता से चल सकती है। हवा अपने वेगमय बल से बड़े २ वृक्ष और महलादि को गिरा देती है। हवा

छोटे मे से वडा शरीर बना सकती है। वैज्ञानिकों का मत है कि, हवा मे थेक्सस नाम के सूक्ष्म जन्तु उडते हैं, वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि, सूई के अग्रभाग पर एक लाख जन्तु आराम पूर्वक ठहर सकते हैं।

वनस्पति काय—

मनुष्य का जन्म माता के गर्भ में अमुक समय रहने के वाद होता है वैसे वनस्पति का जन्म भी पृथ्वी माता के गर्भ में अमुक समय रहने के वाद अकुरित होती है। जैसे मनुष्य देह वढती है, वैसे वनस्पति भी वढती है, जैसे मनुष्य वाल, युवा, वृद्धावस्था भोगता है, वैसी ही तीन अवस्था वनस्पति की है। जैसे मनुष्य के शरीर को काटने से लोहू निकलता है, वैसे वनस्पति को काटने से विविध रग के प्रवाही रस निकलते हैं। जैसे खुराक मिलने से मनुष्य देह पुष्ट होता है और नहीं मिलने से सूखता है, वैसे ही वनस्पति को खाद और पानी का खुराक मिलने से विकसित होती है और न मिलने से सूख जाती है। मनुष्य की तरह वनस्पति भी श्वास लेती है। दिन को कार्वन लेकर ऑक्सीजन निकालती है और रात्रि को ऑक्सीजन लेकर कार्वन निकालती है। कितनेक मनुष्य मांसाहारी होते हैं, वैसे कोई २ वनस्पति भी मक्खी, पतंगादि छोटे जीवों का सत्त्व पत्तों द्वारा चूस लेती है या खाद द्वारा मांसाहार करती है। चन्द्रमुखी पुष्प चन्द्र के समक्ष और सूर्यमुखी फूल सूर्य के समक्ष खिलते हैं और उनके अस्त होने पर वन्द हो जाते हैं।

दो, तीन, चार और पांच इन्द्रिय वाले प्राणियों मे जीव होना तो विश्व विख्यात है।

६—मृत्यु ।

काल (मृत्यु) रूप सर्प के मुख में समस्त विश्व बैठा है। गले में काल की फांसी लग रही है मात्र खींचने का विलम्ब है। जिसको आत्म भान नहीं उसे मृत्यु का भान कैसे हो ? मृत्यु का विश्वास हो अवश्यम्भावी समझा जाय, तो आज ही जीवन परिवर्तन हो जाय। भारत में नित्य ४० हजार मनुष्य मरते हैं। भारत में मनुष्यों का औसत आयुष्य मात्र २१ वर्ष का है। इससे अधिक जीनेवाला भाग्य शाली है। प्राणी मात्र जीने की इच्छा में ही मरण शरण होते हैं। अज्ञानी मृत्यु के साधनों को जीवन वृद्धि के साधन मानता है। मृत्यु समय पश्चाताप न हो, ऐसा जीवन जीना चाहिए। आज ही मृत्यु होगी, ऐसा मान कर जीवन पवित्र रखना चाहिए। आज मृत्यु हो तो कौनसी गति होवे ? मृत्यु आज नहीं तो कल है ही। सन्तान की मृत्यु से पशु पक्षी बोध नहीं ले सकते वैसे अज्ञानी भी अपनी सन्तान या स्नेही की मृत्यु से बोध नहीं पाते। प्रति समय मृत्यु घन्ट बज रहा है तथापि सुनने के लिए अज्ञानी बहिरा है। घड़ी घन्टा वार, तिथि मास पक्ष आदि मृत्यु के घंटे हैं। प्रति समय जीव देह पर काल का असर होता है पर पामर समझते नहीं हैं।

अनेक अकस्मातों में से होकर १ दिन सुख रूप बीतता है। जहां तक पुन्य का उदय है वहां तक अनेक अकस्मातों मे बचाव हो जाता है। पुन्याई पूर्ण होने पर एक छींक या एक उबासी भी मरण शरण के लिए पर्याप्त है। मृत्यु भी समझ में न आती हो तो स्वर्ग नरक पुन्य पाप आदि कैसे समझ में आवें।

यदि जीवन (जीवित) दशा मे ही मरा जाय–'मर-जीवा' होवें तो पुन पुनः मरना ही न पडे। 'मर-जीवा' पुरुषों के प्रत्येक श्वासोश्वास मे स्वरूप लीनता, पद पद में वीतरागता, शब्द-शब्द में गम्भीरता और उदासीनता, स्थान-स्थान आत्म-स्थिरता, पर-भाव में शयन दशा, स्वभाव में जागृत दशा, जीमते हुए अनाहार दशा, पीने मे ज्ञानामृत पान दशा, चलने मे मोक्ष पथ पर प्रयाण और उठना बैठना भी आत्म धर्म मे ही होता है। मृत्यु को अव-श्यम्भावी समझने वाले का जीवन ही उक्त प्रकार का हो जाना चाहिए।

मृत्यु काल जितना दूर माना जाता है, उतना ही कूदते-फूदकते वह निकट आरहा है। अपना शरीर जितना निकट है, उतनी ही निकट मृत्यु है। दुनिया समझती है कि, जन्म हुआ, परतु ज्ञानी समझते हैं कि जीव गर्भ मे आता है उसी समय से मृत्यु निकट हो रही है। मच्छली मार की भांति काल, बाल, युवा या वृद्ध को नहीं देखता। वह तो जाल में जो आते हैं, उनको श्मसान की भट्टी में और वहां से नरकादि भट्टियों में झोंकता रहता है। शरीर रूप कूएँ में से चन्द्र, सूर्य रूप बैल, रात्रि दिवस रूप अरहट द्वारा आ-युष्य रूप पानी अप्रमाद से क्षण क्षण खाली करते हैं। जिस कूएँ को खाली करने के लिए चन्द्र, सूर्य जैसे बलवान बैल हैं, उस कूएँ को खाली करने में क्या विलम्ब हो ? मृत्यु समय जीव अशरण बनता है, परतु धर्माराधन वाले जीव मृत्यु शरण होने पर भी स्व-तत्र होते हैं। धर्मात्मा मृत्यु समय में निर्भय और पापात्मा भय-भीत होता हैं।

मृत्यु ही मानव की प्रकृति मात्र का धर्म है। तो भी मानव मृत्यु को भूलने के लिए विषय विलास के नये २ साधन बढ़ा कर मृत्यु को भूल जाता है, परंतु मृत्यु उस नहीं भूलती, मानव वर्तमान में जिस अवस्था में है उसी अवस्था में नित्य रहना चाहता है, अपनी दशा बदलना नहीं चाहता। अवस्था-दशा का बदलना मानता भी नहीं है। काल हाथ लम्बा कर झेलने को सामने खड़ा है किन्तु अज्ञानी उसे देखने में अन्ध है। अज्ञानी के लिये मृत्यु भय रूप है और ज्ञानी के लिये मृत्यु महोत्सव स्वरूप है। एक मिनट भी अधिक जीने के लिये कोई आराधना नहीं है और जीवन दीपक जल रहा है। अथवा प्रति समय पूर्व पुन्याई का तेल घटते २ जीवन दीपक बुझ रहा है। कसाई खाने में पहुँचे पशुवत् मृत्यु-सम्मुख होते हुए भी अज्ञानी अपने आपको अमर अमर मान कर निःसङ्कोचता से नित्य पाप प्रवृत्ति बढ़ा रहा है और मृत्यु से सावधान होने की शिक्षा देने वाले सद्गुरु को दीवाना या वृथा पाप मानकर पाप प्रवृत्ति से पीछा नहीं हटता।

७–आज का मानस।

विज्ञान के जडवादी ज़माने में वर्तमान मानवों के मानस भी जड दिखते हैं। चैतन्यवाद चूर हो रहा है और जड़वाद की इमारतें विविधता से चुनी जा रही हैं। धर्म-युग के स्थान पर वर्तमान युग धन-युग 'अर्थयुग' हो रहा है। धन-अर्थ के लिये ही वैज्ञानिक साधनों-रेल्वे, मोटर स्टीमर आदि द्वारा दौड धूप हो रही है। अर्थ-युग को पहुचने के लिये इन साधनों की गति टूटी फूटी बैलगाडी जैसी मन्द दिखने से एरोप्लेन (वायुयान) का आविष्कार हुआ है। इसकी गति भी मन्द मालूम होती है अतः इससे भी अधिक वेगवत साधनों के आविष्कार की धुन में वैज्ञानिक लोग लग रहे हैं।

जिस वस्तु के पैसे मिलते हैं–बदले में धन मिलता है, उसी को सत्य माना जाता है। जिस वस्तु के पैसे न मिल सकें उसे मिथ्या, निकम्मी मानी जाती है। मानव की सर्व शक्ति द्रव्य, कीर्ति व योग्य पदार्थों के संचय में खर्च होती है। धार्मिक प्रवृत्ति सहारक, व्यर्थ विडवना रूप दिखती है और आर्थिक प्रवृत्ति प्राणदाता सम प्रिय प्रतीत होती है। चैतन्यवाद का पूजक कनक कामिनी और कीर्ति को त्रिविध बधन समझ कर सांप की कांचलीवत् दूर करता है और जडवाद का पूजक उक्त त्रिमूर्ति (कचन, कामिनी, कीर्ति) के अभाव में चौधार अश्रु वर्षाता है। विषय विलास और विकार वर्धक उपदेश, वांचन, श्रवण, मनन को उचित समझता है और आत्मवाद के तत्त्वों को विषमय मानता है। अनीति, अन्याययुक्त धनोपार्जी जीवन को वास्तविक, आनन्दमय, समझता है और नीति न्याययुक्त निर्धनता

को दुःख का भण्डार समझता है। विषय कषाय रहित संयम-मय प्रवृत्ति दुर्गन्धयुक्त सड़े मुर्दे जैसी दुर्गन्धी और विषय कषाय युक्त प्रवृत्ति प्राणप्रिय समझी जाती है। विषयकषाय युक्त प्रवृत्ति के लिए जीव अविश्रान्त यत्न करता है मृत्यु की भी परवाह नहीं करता। धर्म तत्त्व को पदधूलि से भी अधिक हेय समझता है और धार्मिक क्रिया धर्म गुरु, धर्म शास्त्रादि को मानो हड्डियों का पिंजर सम अस्पृश्यनीय समझता है। अधार्मिकता को योग्य प्रवृत्ति और जीवन मानते हैं। अपनी सब शक्तियाँ धनोपार्जन में लगाकर अपने आपको सफल समझता है।

सुख, आनन्द, ऐश आराम और मौजशौक में बेतखीफ, भाग्यहीन और नालायकों के लिए ही धर्मतत्त्व समझा जाता है। धार्मिकता के त्याग में ही अपना उद्धार माना जाता है। धार्मिक प्रवृत्तियों को शर्म भरी मूर्खता और अधोगतिका द्वार माना जाता है।

जड़वाद के चश्मे को उतारकर आत्मवाद दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि धर्म तत्त्व को जड़ मानने वाला स्वयं जड़ है। धर्म की शरण से ही भविष्य में विशेष उज्ज्वलता मिलेगी धर्म भावना के अभाव से ही देश का पतन दिखता है। समस्त राज्य और साम्राज्य भयभीत हैं समस्त राजा महाराजाओं के सर पर कोहिनूर के नहीं किन्तु कांटे वाले ताज हैं। व्यापक विनाशी विषमय जहरीले गैस बॉम्बगोले लड़ाकू हवाईजहाज एवं जल जहाजों की धूमधाम से तैयारियाँ हो रही हैं। सब राज्यों के जीव मुट्ठी में हैं। आज शान्ति है, कल की कुदरत जाने! स्त्रियों के लिए भी जासूसी मर्दों के कानून बन चुके हैं, इन्कार होने वाले के लिये फांसी के तख्त तैयार हैं। लाखों मनुष्य भूगर्भ में

छिप कर रह सके ऐसे गुप्त भूतल बनाये गये है। जहरीले गैसों से बचने के लिए लाखों टोपियों का संग्रह किया गया है। ७० लाख की आबादी वाला लंडन कुछ घण्टों मे खाली करने की योजना विचारी जा रही है। आकाश में उडते हवाई जहाजों को पक्षी की तरह गिराने वाले तोप गोले तैयार हो रहे हैं। हवाईजहाजो को कागज की तरह आकाश मे ही भस्मीभूत कर देने वाले किरणों का आविष्कार किया जा रहा है। पारधी पक्षी को जाल में फसाता है इसी तरह हवाई जहाजो को फँसाने की जालें गूंथी जा रही है। यह प्रताप धर्म का या अधर्म का ?

धर्म के प्रताप से शांति और शीतल छाया है, इसके अभाव में दावानल और ज्वालामुखी की ज्वालाए तैयार होती है। बिना धर्म की प्रवृत्ति में पैर रखना या विचारमात्र करना मानव धर्म का अपमान तुल्य है। सत्य, पवित्रता और निस्वार्थता, ये तीन बल त्रिलोक को हिला देने समर्थ है। धर्म भावना वाला विश्व के लिये आशीर्वाद और तीर्थ यात्रा समान है, इससे विपरीत शाप समान है। धर्म शाश्वत जीवन की शांति के लिये पाताल-कूप है। पाताली कुँए का सुख-शांति रूप शीतल जल कभी नष्ट नहीं हुआ है, न होगा। जडवादी समाज आत्मवाद का शरण लेगा तभी वह शरणभूत होगा। अन्यथा विकास के नहीं किन्तु विनाश के पथ पर है।

८—अहंवादी आत्माओं का स्वरूप।

आत्म तत्त्व चन्द्र सूर्य से भी अनन्त गुण अधिक प्रकाशित और सब से अत्यधिक नजदीक होने पर भी उसके अस्तित्व का भान अनुभव में नहीं आता। शरीर के लिये चन्द्र-सूर्य से भी अधिक प्रकाशित वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, परंतु आत्म-तत्त्व के दर्शन के लिये जुगनू जितना प्रकाश भी अहंवाद के आवरण के कारण अनुभव में नहीं आता।

मनुष्यों अन्य विषयों में बहुत जानते हैं, किन्तु अपने विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं। अनेक विषय में प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं, मात्र अपने निजात्म का उत्तर देने में सर्वथा असमर्थ हैं। लाखों मील दूर के प्रदेशों की उन्हें मालूम है किन्तु सब से निकट शरीर से भी अत्यन्त निकट ऐसे अपने आत्म तत्त्व का किंचित्मात्र भान नहीं है। जल, स्थल और गगन विहार-सफर करके अनेक अनजाने प्रदेशों का अन्वेषण किया और कर रहे हैं, परंतु खुद के आत्म प्रदेश को छू न सका। लाखों मील दूर बैठे रेडियो व वायरलैस द्वारा बात चीत हो रही है, वहां की जनता के सुख दुख के समाचार पूछ आ रहे हैं। इतने दूरस्थ मनुष्यों से सम्बन्ध जोड़ रखता है परंतु आत्मा खुद के साथ सम्बन्ध जोड़ नहीं सका है आत्मा खुद के सुख दुख का विचार मात्र नहीं कर सका है, न अपनी निजात्मा से लेश मात्र सम्बन्ध जोड़ सका है। इससे अधिक आश्चर्य और नास्तिकता अन्य क्या हो सके!

तीन लोक का राज्य करने का यत्न कर रहा है परंतु अपनी आत्मा पर राज्य करने का यत्न नहीं करता। तीन लोक के भाव जानने की जिज्ञासा है तथा उन्हें जानने देखने के लिये लाखों का खर्च करने को तैयार है मात्र उसे निज आत्म भाव जानने सुनने

की दरकार नहीं है, कोई आत्म-भाव कहे-सुनावें तो जानने सुनने की इच्छा भी नहीं होती। मनुष्य मे अखिल विश्व को वश में करने का प्रयत्न होता है परन्तु खुद अपने को वश मे नहीं कर सकता। विश्व के साथ मैत्री करना चाहता है और निजात्मा से वैर बुद्धि बढ़ाता है। विश्व को देखने की आतुर इच्छा है, पर निजात्म दर्शन के लिये अन्ध दशा रखता है। तीन लोक के जीवों की चिंता व पंचायत करता है और अपना निजात्मा का लेश मात्र भान नहीं है।

रेडियो, वायरलेस, बिजली, भाफ, रेल्वे, मोटर, स्टीमर एरोप्लेन आदि अनेक आविष्कार हुए और हो रहे हैं। परतु अपनी आत्मा का आविष्कार न किया। जड पदार्थों की प्रगति की, परतु अपनी प्रगति न कर सका। विश्व को दयापात्र समझ कर उसकी दवाई करने का यत्न करते हैं, परतु अपनी दया नहीं हैं तथा अपने लिये दवा का विचार भी नहीं है। विश्व को सुखी रखने की तमन्ना वाले को अपने सुख का तो भान नहीं है। मलीन मे मलीन पदार्थ को उपयोगी-खाद माना है और उसकी रक्षा के लिये वाड की जाती है, परन्तु खुद को निरर्थक निरुपयोगी माना जाता है तो रक्षण के लिये बात ही क्या हो? करोड़ों और अडबों के हिसाब किये, परन्तु अपने एक का हिसाब न किया, न अपने हिसाब का एका लिखने को पाटी-पेन हाथ में लिया। लेना आता नहीं है, पसन्द भी नहीं है।

बढे हुए सिर के बाल या हाथ पैर के नाखून जितना भी आत्म-तत्त्व को मान देने में आवे या स्मरण मात्र किया जाय तो 'मैं कौन हूँ? कहां से आया हूँ और कहां जाऊँगा?' इसका भान सदा होता रहे। छोटे से बडे समस्त दुनियावी पदार्थों के लिये अ-

नन्व कट सड़ जाते हैं और आत्मा के साथ प्रमाद किया जाता है। शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश माना जाता है।

बड़ोदे के अजायब घर में २००० वर्ष का पुराना मृत-देह (मुर्दा) है। उसे देखने के लिये हजारों मनुष्य हजारों कोसों से हजारों रुपयों का खर्च करके आते हैं, परन्तु उस सम्यक् प्रकार से देखने के लिये आँख भी नहीं खोलते।

स्थूल भाषा में कहें तो आत्मा जीव योनि में भ्रमण करती है और आध्यात्मिक भाषा में कहें तो भिन्न २ मानसिक भूमिका में भ्रमण करती है और करेगी। मानसिक भूमिका के अनुरूप आत्मा विविध जीवयोनि को प्राप्त होती है किन्तु संस्कार के बंधन से आत्मा अपना भान भूला होने से अपने अस्तित्व का भी भान नहीं है। इससे नरभव होने पर भी अनुपात् जीवन बिताकर कई वैसी (स्थावर) जीवयोनि में जन्म धारण कर के मानव भव के महत्व शाली पद को हार जाता है। ऐसा न हो और मानव की श्रेष्ठता समझ कर उत्तरोत्तर प्रगति के लिये आप अपने ही चौकीदार बनें और अपनी आत्मा का सूझें।

९–नारकीय-यातना

नरक कैसा है? उसको वज्रमय दीवार है बहुत चौडी है, अखण्ड (विना सांध की) है, विना द्वार की है, कठोर, भूमितल वाली है, कठोर कर्कश स्पर्शवाली है, ऊची नीची विषय भूमि है, बन्दीखाने (Jail) जैसी है। अत्यन्त उष्ण, सदा तप्त, दुर्गंधयुक्त सडे पुद्गल वाली, उद्वेग जनक, भयकर स्वरूप वाली है। वे नरक गृह शीतलता में हिम के पटल जैसे, काली कांति वाले, भयकर, गहरे गहन रोमांचकारी हैं, अरमणीय हैं। अनिवार्य रोग और जरा से पीडित नारकीय जीवों का यह निवासस्थान है। वहां सदा तिमिर गुफा जैसा अन्धकार व्याप्त है, और परस्पर भयभीत रहते हैं। वहां चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र, तारे आदि नहीं है। नारक गृह चर्वी, मांस, रसी, लोहू से मिश्रित, दुर्गंधमय, चीकने और सडे कीचड से व्याप्त हैं। वहां खेर की लकडी के अग्नि जैसा ज्वा-जल्यमान और राख से ढका हो वैसा अग्नि है। उन नरक ग्रहों का स्पर्शतलवार,छुरे, करवती जैसा तीक्ष्ण, एव विच्छु के डक जैसे अति दुःखकर है। ऐसे नरक में जीव रक्षण विना, त्राण विना, शरण विना, कडुये दु ख से पीडित होता हुआ पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म भोगता है। नरक परमाधामी देव (जमदेव) से भरा है। इन जमदेवों के द्वारा नारकी जीवों को अन्त मुहूर्त मे वैक्रय लब्धि द्वारा बदसूरत, भयानक, हड्डी-नस-नाखून-रोम रहित देह बनाते हैं जिसके द्वारा अशुभ वेदनाए भोगते हैं। यह वेदना अत्यन्त कठोर प्रबल, सर्व शरीर व्यापी, चित्त-वाणी व देह से व्याप्त, अन्त तक निरन्तर रहने वाली है। वे वेदनाएँ तीव्र, कर्कश, प्रचण्ड, भयानक और दारुण कैसी हैं? सो अब कहते हैं।

लोहे की बड़ी हण्डी में पकाना, भूंजना, कढ़ाई में तलना, भट्ठी में भूनना, लोहे के बर्तन में उबालना, बलिदान देना (गर्दन छेदा देना), खांडना, चीरना, फाड़ना, सिर को पीछे झुका कर बांधना, ऊंधा लटकाना, हंटर मारना, गले में फांसा डाल कर झुलाना, शूली पर चढ़ाना, माया देकर ठगना, अपमानित करना, वधभूमि पर ले जाना, मुग्दर बजा २ कर दुःख देना, जमीन में गाड़ना आदि अनेक विध कष्टों से पूर्वसंचित कर्मों द्वारा जीव नरक में पीड़ा पाते हैं।

नरक क्षेत्र की अग्नि महा अग्नि दावानल सी है। उसकी अति दुःखद भयप्रद परवशता समझ, शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की वेदना भोगते हैं। पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य तक बिचारे सहते हैं।

परमाधामी देव नारकों को त्रास उपजाते हैं तब नारकीय जीव बड़े करुणा आक्रन्दन से भयभीत स्वर से कहते हैं कि "हे अनन्त शक्तिमान, हे स्वामिन, हे तात, मा बाप, मुझे छोड़िये, मैं मरता हूं मैं दुर्बल हूं व्याधि पीड़ित हूं" ऐसा बोलते २ वे दया रहित परमाधामी की तर्फ दृष्टि करता है कि वे न मारें। वे कहते हैं "मुझे कृपा करके क्षण भर के लिये श्वासोश्वास लेने दें मुझ पर रोष न करें, मैं क्षण-मात्र विश्राम ले सकूं इसलिए मेरे गले का बन्धन छोड़िए, नहीं तो मैं मर जाऊँगा। मुझे बहुत प्यास लगी है अब पानी पीने दें।" उस वक्त परमाधामी उन नारकों को 'ठंडा निर्मल पानी पी' ऐसा कह कर उसका मुंह फाड़ कर सीसे का उष्ण-प्रवाही रस डालते हैं, इस कारण से नारक जीव कम्पित हो जाते हैं और अश्रुपात करते हुए कहते हैं कि 'मेरी तृषा नष्ट होगई अब पानी पीना नहीं है।' ऐसा बोलते २ नारकी चारों ओर दृष्टि

गात करते रक्षण रहित, शरण रहित, अनाथ, अबांधव, स्वजनादि से रहित, भयभीत मृग की तरह शीघ्रता और भय से उद्विग्न होकर भगते हैं। भगते जीवों को निर्दय परमाधामी बलात्कार से पकड कर उनका मुह लोह दड से खोलकर धग धगते रुधिर का रस डालते है। उन्हें दाझते (जलते) देखकर परमाधामी हँसते हैं और नारक जीव प्रलाप करते हैं। भयकारी अशुभ शब्द उच्चारते हैं, रौद्र शब्द करते हैं। इस प्रकार प्रलाप करते, विलाप करते दयामय शब्दों से आक्रन्दन करते नारकी 'हे देव! हे देव!' ऐसे करुणा जनक शब्द उच्चारते हैं। बधे हुए, रुधे हुए नारकों का ऐसे आर्तस्वर सुन कर तर्जना करते हुए धिक् धिक् उच्चारण करके कोपाग्रमान परमाधामी अव्यक्त गर्जना करके नारकों को पकडते हैं, बल वापरते हैं, आंख फाडकर डराते हैं, हाथ पैरादि अग काटते हैं, छेदते हैं, मारते हैं, गला पकड कर बाहर निकालते हैं और पीछे धकेलते है तथा कहते हैं कि 'पापी! तेरे पूर्व पाप कर्म और दुष्कृत्यों को याद कर' ऐसे शब्दों से त्रास जनक प्रतिध्वनि होता है कोलाहल मचता है। नरक में परमाधामी से पीडित नारक अनिष्ट शब्दों का उच्चारण करते हैं। परमाधामी देव नारकों को तलवार की धार जैसे पत्ते के वन में, दर्भ के वन में, अनघड़ नौकदार पत्थर की भूमि में, धारदार शूलों के जगल में, क्षार पूर्ण बावडी में, उष्ण रुधिर रस की वैतरणी नदी मे, कदब पुष्प सी चमकती रेत में, प्रज्वलित गुफा कँदरा मे फैंकते हैं, जिससे वे महापीडा पाते हैं। अति तप्त काँटे वाला धूसर सहित रथ में नारकों को जोतकर तप्त लोह मार्ग पर परमाधामी बलात् चलाते हैं और ऊपर से विविध शस्त्रों से मार मारते हैं। वे शस्त्र कैसे हैं?

लोहे की गर्म हण्डी में पकाना भूनना कड़ाई में तलना भट्टी में भूनना, लोहे के बर्तन में उबालना बलिदान देना (गर्दन उड़ा देना), कोड़ना चीरना फाड़ना सिर को पीछे झुका कर बांधना, ऊंधा लटकाना, हंटर मारना गले में फांसा डाल कर झुलाना शूली पर चढ़ाना धोखा देकर ठगना, अपमानित करना, वधभूमि पर लेजाना टुकड़ा टुकड़ा कर फेंकदेना जमीन में गाड़ना आदि अनेक विध कष्टों से पूर्वसंचित कर्म द्वारा जीव नरक में पीड़ा पाते हैं।

नरक क्षेत्र की अग्नि महा अग्नि दावानल सी है। उसकी अति दुःसह भयप्रद परवशता समक्ष, शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की वेदना भोगते हैं। पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य तक विचार सहते हैं।

परमाधामी देव नारकों को त्रास उपजाते हैं तब नारकीय जीव बड़े करुण आक्रंदन से भयभीत स्वर से कहते हैं कि "हे अत्यंत शक्तिमान, हे स्वामिन्, हे तात आ बाप मुझे छोड़िये, मैं मरता हूँ मैं दुर्बल हूँ व्याधि पीड़ित हूँ" ऐसा बोलते २ वे दया रहित परमाधामी की तर्फ दृष्टि करता है कि वे न मारें। वे कहते हैं "मुझे कृपा करके क्षण भर के लिए श्वासोच्छ्वास लेने दें मुझ पर रोष न करें, मैं क्षण-मात्र विश्राम ले सकूं इसलिए मेरे गले का बंधन छोड़िए, नहीं तो मैं मर जाऊँगा। मुझे बहुत प्यास लगी है अब पानी पीने दें।" उस वक्त परमाधामी उस नारकों को 'ठंडा निर्मल पानी पी' ऐसा कह कर उसका मुँह फाड़कर सीसे का उष्ण-प्रवाही रस डालते हैं, इस कष्टसे नारक जीव कम्पित हो जाते हैं और अश्रुपात करते हुए कहते हैं कि 'मेरी तृषा नष्ट होगई अब पानी पीना नहीं है। ऐसा बोलते २ नारकी चारों ओर दृष्टि

तत्त्व-विभाग

१—नव-तत्त्वों का स्वरूप

ज्ञानी पुरुषों ने समस्त ससार को नव तत्त्वों से भरा हुआ कहा है। (१) जीव [चैतन्य], (२) अजीव [जड], (३) पुण्य [शुभ कर्म], (४) पाप [अशुभ कर्म], (५) आश्रव [कर्म आने के हेतु], (६) सवर [कर्म रोकने के हेतु], (७) निर्जरा [कर्मों का क्रमशः पृथक् होना], (८) वध [जीव के साथ कर्मों का बंधना] (९) मोक्ष [चैतन्य की कर्मों से मुक्ति].

उक्त तत्त्वों का नूतन दृष्टि से क्रमशः निरूपण किया जायगा।

जीव तथा अजीव

वर्तमान युग में विज्ञान ने रेल्वे, मोटर, स्टीमर, एरोप्लेन, तार, डाक, रेडियो, टेलिफोन, वायरलेस, विजली, गेस, फोनोग्राफ आदि के विविध आविष्कार किये हैं। तथापि वैज्ञानिक लोग अपने आपको विज्ञान के पालनेमे झूलते वच्चे समझ कर नये नये आविष्कार कर रहे हैं और करते रहेंगे।

लाखों वैज्ञानिक एकत्र होने पर भी वे वड के बीज जैसी प्राकृतिक छोटी सी वस्तु बना नहीं सकते। लाखों इंजिन और एरोप्लेन से भी बड के १ छोटे से बीज में अनंतगुनी अधिक शक्ति है। वड के बीज में वैसे क्रोडों बीज ही नहीं परन्तु मीलों के विस्तार वाले क्रोडों वटवृक्ष अन्तर्गत है। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध होने से विशेष विस्तार अनावश्यक है।

मुद्गर, मुसुंढी करपत्त, त्रिशूल, हल गदा, मूशल, चक्र, भाला भाया, शूली लकड़ी पूर्ण लम्बा भाला, नाल, चमड़े में मढ़ा हुआ पत्थर मुद्गराकार हथियार, तलवार, तीर लोहे का बाण, कतरनी, वसोला परशु आदि अति तीक्ष्ण, उज्ज्वल चमकीले अनेक प्रकार के भयंकर शस्त्र विकुर्वे कर (वैक्रिय बनाकर) और उनकर पूर्व भव के वैर भाव से नारकों को महा वेदना उपजाते हैं। मुद्गर के प्रहार से चूर्ण कर डालते हैं मुसुंढी से भांगते तोड़ते हैं देह को कुचलते हैं यन्त्र से पीलते हैं तड़फते देह हथियारों से काटते हैं, चमड़ी उधारते हैं, कान-होठ-नाक को मूल में से काट डालते हैं, हाथ पैर छेदते हैं तलवार करवती नोकवाला भाला और परशु के प्रहार से नारक देह को काटते हैं। वसोला से अंगोपांग को छेदते हैं। गरमागरम खार के छिड़काव से गात्रों को जलाते हैं। भाले की नोक से शरीर जर्जरित करते हैं। जमीन पर पटक कर रगड़ते हैं। इससे नारकों के अंगोपांग सूझ जाते हैं।

पुनः परमाधामी नरक में नाहर कुत्ते बिल्ली, कौए, अष्टापद चित्ते बाघ सिंह आदि के रूप बनाकर नारक जीवों को पैरों के बीच रखकर तीक्ष्ण दाढों से मारते हैं खींचते हैं, तीक्ष्ण नाखूनों से फाड़ते हैं चीरते हैं। परमाधामी देव कौए, गीध वगैरह पक्षी के रूप बनाकर अपनी वज्रमयी तीक्ष्ण चोंचसे पीड़ा उपजाते हैं, आंख फोड़ते हैं, चमड़ी उधेड़ते हैं इत्यादि अनेक प्रकार की पीड़ा नारक जीव भोगते हैं और अपने पूर्व भव के पाप के लिए परम पश्चाताप करते हैं तथा स्वयं निजात्मा की निंदा करते हैं, तथापि पाप के अशुभ फल बिना भुगते छुटकारा होता नहीं है।

(श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के आधार से)

तत्त्व-विभाग

१—नव-तत्त्वों का स्वरूप

ज्ञानी पुरुषों ने समस्त ससार को नव तत्त्वों से भरा हुआ कहा है। (१) जीव [चैतन्य], (२) अजीव [जड], (३) पुण्य [शुभ कर्म], (४) पाप [अशुभ कर्म], (५) आश्रव [कर्म आने के हेतु], (६) संवर [कर्म रोकने के हेतु], (७) निर्जरा [कर्मों का क्रमशः पृथक् होना], (८) वध [जीव के साथ कर्मों का बंधना] (९) मोक्ष [चैतन्य की कर्मों से मुक्ति].

उक्त तत्त्वों का नूतन दृष्टि से क्रमशः निरूपण किया जायगा।

जीव तथा अजीव

वर्तमान युग में विज्ञान ने रेल्वे, मोटर, स्टीमर, एरोप्लेन, तार, डाक, रेडियो, टेलिफोन, वायरलेस, विजली, गेस, फोनोग्राफ आदि के विविध आविष्कार किये हैं। तथापि वैज्ञानिक लोग अपने आपको विज्ञान के पालनेमें झूलते बच्चे समझ कर नये नये आविष्कार कर रहे हैं और करते रहेंगे।

लाखों वैज्ञानिक एकत्र होने पर भी वे वड के बीज जैसी प्राकृतिक छोटी सी वस्तु बना नहीं सकते। लाखों इजिन और एरोप्लेन से भी बड के १ छोटे से बीज में अनतगुनी अधिक शक्ति है। वड के बीज में वैसे क्रोडों बीज ही नहीं परन्तु मीलों के विस्तार वाले क्रोडों वटवृक्ष अन्तर्गत है। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध होने से विशेष विस्तार अनावश्यक है।

लाखों एञ्जिन और एरोप्लेन जमीन में गाड़ दिये जाय तो सब मिट्टी में मिट्टी रूपेण मिल जायगा, किन्तु बड़के बीज को जमीन में रखने से विशाल वट वृक्ष खड़ा होजायगा। क्योंकि, उस छोटे से बीज में चैतन्य सत्ता है और बड़े २ एञ्जिन जड़ है। इसी कारण वे अपनी प्रकृति विकाश में असमर्थ है।

४० तोले के एक पानी के गिलास में ६००० टन कोयले की शक्ति है। इस हिसाब से १ रत्ती पानी में सवा टन अर्थात् पैंतीस मन कोयले की शक्ति है। ४० तोले पानी की बिजली की शक्ति से एक विशाल स्टीमर हजारों मीलों की यात्रा कर सकती है ऐसा विज्ञानियों का मत है। वट के बीज में और पानी की बून्दों में जो कि स्थावर जीव है उनमें इतनी शक्ति है तो मनुष्य में कितनी शक्ति हो सकती है? इसका अनुमान सहज में ही लग सकता है। प्राणी का स्वभाव ज्ञान-मय है। इसी आत्मीय शक्तियों के द्वारा विज्ञानियों ने आविष्कार किए हैं। उन्होंने जड़वाद का विकास किया है। वैसे ही मनुष्य अपना आत्म विकास कर सकता है।

सातवीं नरक का परमाणु समय मात्र में सिद्धशिला में आ सकता है। इतनी शक्ति जड़ की है तो चैतन्य की अनन्त गुणी विशेष शक्ति होना स्वाभाविक है।

सर्व जीवयोनियों की अपेक्षा मनुष्य में उत्कृष्ट शक्ति है तो उस उत्कृष्ट शक्ति का सदुपयोग धर्माराधना में करना चाहिए।

कलाकार पत्थर को काट-छांट कर उसमें से इच्छित प्रतिमा बनाता है उसी प्रकार मनुष्य-जीवन का आशय विषय कषाय से दबी हुई शक्ति को प्रकट करने का है और इसी कारण से आत्मा ही परमात्मा यह वचन ज्ञानियों ने कहा है। मनुष्य जैसा बनना चाहे वैसा बन सकता है। वह सर्व प्रकार से शक्ति सम्पन्न है। अनन्त ज्ञान तथा बल का अधिकारी है। जीवन का विकास केवल मानव-भव में ही हो सकता है।

पुराय—

शीतल चन्दन से उत्पन्न हुई अग्नि शरीर पर पडे तो वह शरीर को जलाती है । उसी प्रकार प्राप्त पुराय से अगर धर्माराधन न किया जाय तो वह चन्दन से उत्पन्न हुई अग्निवत् दुःखदायी है ।

एक भिखारी पुरायोदय से धनी हो जाय, तो वह पहले की अपेक्षा विशेष भोगमय जीवन वितायगा और विशेष पाप-कर्म उपार्जन करके विशेष दुर्गति का अधिकारी होगा । उसी प्रकार पूर्व जन्म के पुरायोदय से प्राप्त सम्पत्ति का विश्व की भलाई के लिए उपयोग न करके केवल अपने ऐश-आराम में उपयोग करने वाला पाप का उपार्जनकरकेसद्गति का अधिकारी नहीं होसकता। ऐसे पुरुषो को शास्त्रकारों ने पापानुबन्धी पुराय वाला माना है । अर्थात् धन, वैभव उसको पुरायोदय से प्राप्त हुआ है, किन्तु उसका धर्म-कार्य मे उपयोग न करने से वे साधन उसके पाप मे अधिकता ला देते है, और वह पाप के कारण दुर्गति का अधिकारी हो जाता है । धर्माराधन न कराने वाली पुराय से प्राप्त धनाढ्यता से शास्त्रकारो ने निर्धनता, दीनता विशेष जीवनोपयोगी-श्रेष्ट मानी है । ऐसे जीवो को पुरायानुबधी पाप मानने मे आता है । पापोदय से वह निर्धन हुआ, किन्तु निर्धनता से वह ऐश आराम तथा विलास मय जीवन नहीं बितासका और अपने स्वाभाविक सादगी-मय जीवन को विता कर वह विशेष पाप से बच सका । ऐसे कारण से कितने ही सद्गति के अभिलाषी राजकुमारों तथा श्रेष्ठ पुत्रोंने दूसरे जन्म मे निर्धन होने के लिए भावना भायी थी । निर्धन होने की ही इच्छा (नियाणा) उत्तम नहीं गिनी जा सकती । जो पुराय से होने वाली सम्पत्ति, धन, वैभव सुख-सामग्री धर्माराधन मे साधन

लाखों एञ्जिन और एरोप्लेन जमीन में गाड़ दिये जायें तो सब मिट्टी में मिट्टी रूपेण मिल जायगा, किन्तु बड़ के बीज को जमीन में रखने से विशाल बट वृक्ष खड़ा होजायगा। क्योंकि, उस छोटे से बीज में चतन्य सत्ता है और बड़े २ एञ्जिन जड़ है। इसी कारण वे अपनी प्रकृति-विकास-में असमर्थ हैं।

४० तोले के एक पानी के गिलास में ५००० टन कोयले की शक्ति है। इस हिसाब से १ रत्ती पानी में सवा टन अर्थात् पैंतीस मन कोयले की शक्ति है। ४० तोले पानी की बिजली की शक्ति से एक विशाल स्टीमर हजारों मीलों की यात्रा कर सकती है ऐसा विज्ञानियों का मत है। बट के बीज में और पानी की बून्दों में जो कि स्थावर जीव हैं उनमें इतनी शक्ति है तो मनुष्य में कितनी शक्ति हो सकती है? इसका अनुमान सहज में ही लग सकता है। प्राणी का स्वभाव ज्ञान-मय है। इसी मानवीय शक्तियों के द्वारा विज्ञानियों ने आविष्कार किए हैं। उन्होंने जड़वाद का विकास किया है। वैसे ही मनुष्य अपना आत्म विकास कर सकता है।

सातवीं नरक का परमाणु समय मात्र में सिद्धशिला में आ सकता है। इतनी शक्ति जड़ की है तो चैतन्य की अनन्त गुणी विशेष शक्ति होना स्वाभाविक है।

सब जीवयोनियों की अपेक्षा मनुष्य में उत्कृष्ट शक्ति है तो उस उत्कृष्ट शक्ति का सदुपयोग धर्माराधना में करना चाहिए।

कलाकार पत्थर को काट-छांट कर उसमें से इच्छित प्रतिमा बनाता है उसी प्रकार मनुष्य-जीवन का आशय विषय कषाय से दबी हुई शक्ति को प्रकट करने का है और उसी आशय से आत्मा ही परमात्मा' यह वचन ज्ञानियों ने कहा है। मनुष्य जैसा बनना चाहे वैसा बन सकता है। वह सर्व प्रकार से शक्ति सम्पन्न है। अनन्त ज्ञान तथा बल का अधिकारी है। जीवन का विकास केवल मानव-भव में ही हो सकता है।

नारकीय जीव नरक मे से बाहर निकलने क लिए कोलाहल करते हैं, वैसे पापी जीव पाप मय प्रवृत्ति से नरक मे प्रवेश करने के लिए कोलाहल करते हैं।

नारकीय जीव नरक की यातना भोगकर बाहर निकल रहे हैं और पापी जीव पाप करके उसमें प्रवेश करते हैं।

जिस प्रकार अग्नि राख मे दबी हुई होने से नहीं दिखाई देती, किन्तु फिर भी अपना स्थायीत्व रखती है, उसी प्रकार पुण्य रूपी राख में पाप रूप अग्नि दबी हुई होनेसे पाप के कडुयेफल वर्तमान में देखने में नहीं आते, किन्तु पुण्य पूरा होने पर पाप प्रकट होता है। और उसके परिणामस्वरूप विविध दुःख भोगने पडते हैं।

पाप देखने मे वड के बीज की तरह सामान्य प्रतीत होता है। किन्तु बीज बढकर विशाल वट वृक्ष जैसा गम्भीर बनजाता है, वैसे अज्ञानी अपने किए हुए पापों के लिए अनन्त पश्चाताप करता है, रुदन करता है, शोक करता है, तदपि उसको किए हुए पापों का फल अवश्य भोगना पडता है।

कसाई जैसे जीव को भी कुएँ मे पडने की सलाह नहीं दी जा सकती तो ज्ञानी पाप के अनन्त भयकर कूप में स्वेच्छा से कैसे उतरे? पाप-प्रवृत्ति में प्रवृत्त न होना यह परोपकार नहीं किन्तु स्व-आत्मा पर परम उपकार है।

आश्रव--

यह विश्व पिशाची राज्य है। इसे चलानेवाला आश्रव नामक क्षुद्र राजा है, उसका नाश करनेसे ही आत्मा का शासन स्थापित हो सकता है। आश्रव ने तीनों लोक पर अपनी सत्ता चलाई है।

है वही पुण्य है। जो पुण्य धर्माराधन में साधक नहीं होवें और केवल विषय-विलास ऐश आराम में ही उपयोगी हो, ऐसा पुण्य भविष्य एवं परलोक दोनों के लिए ही परम दुःखदायी है। पुण्य की सामग्री से धर्माराधना करे ऐसे जीव को पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय मानने में आता है जो निर्भग मनुष्य धर्म आराधन न करता हुआ विषय-विलास के लिए रात दिन तड़फता रहता है ऐसे मनुष्य को पापानुबंधी पाप का उदय समझना चाहिए।

पाप—

सज्जन सुपंथ पर एवं दुर्जन कुपंथ पर ले जाता है, इसी प्रकार शुभ कर्म सुपंथ पर ले जाता है एवं अशुभ कुपंथ पर। पाप मय-प्रवृत्ति ही कुपंथ है। जब एक ही बार दुःखदायी विषैला जन्तु या जहरी पदार्थ से सावधानी रखी जाती है तो अनन्त भवों में दुःख देने वाले पाप रूप विषैले जन्तु से कितनी सावधानी चाहिए, यह स्वयं ही समझा जा सकता है। ज्ञानी पाप को सिंह, सर्प एवं अग्नि वत् भयंकर समझ कर उस से सावधान रहता है और अज्ञानी उस से स्वछंद मेल करता है। एवं असीम-पीड़ा का भागी बनता है।

हिंसा झूठ, चोरी व्यभिचार, धन-लोभ आदि पापों से भी क्रोध मान, माया एवं लोभादि महान् पापों का कटु फल भोगना पड़ेगा यह विचारणीय है।

इस लोक में पापी जीवों के लिए अल्प समय पहले १०० प्रकार की तरसा तरसा कर मार डालने वाली त्रासदायक फाँसी देने में आती थी। उससे भी अनन्त गुणी विशेष सजा पापी को नरक में भोगनी पड़े यह स्वाभाविक है।

नारकीय जीव नरक मे से बाहर निकलने के लिए कोलाहल करते हैं, वैसे पापी जीव पाप मय प्रवृत्ति से नरक मे प्रवेश करने के लिए कोलाहल करते हैं।

नारकीय जीव नरक की यातना भोगकर बाहर निकल रहे हैं और पापी जीव पाप करके उसमे प्रवेश करते हैं।

जिस प्रकार अग्नि राख मे दबी हुई होने से नहीं दिखाई देती, किन्तु फिर भी अपना स्थायीत्व रखती है, उसी प्रकार पुण्य रूपी राख में पाप रूप अग्नि दबी हुई होनेसे पाप के कडुये फल वर्तमान में देखने में नहीं आते, किन्तु पुण्य पूरा होने पर पाप प्रकट होता है। और उसके परिणामस्वरूप विविध दु:ख भोगने पडते हैं।

पाप देखने मे वड के बीज की तरह सामान्य प्रतीत होता है। किन्तु बीज बढकर विशाल वट वृक्ष जैसा गम्भीर बनजाता है, वैसे अज्ञानी अपने किए हुए पापों के लिए अनन्त पश्चाताप करता है, रुदन करता है, शोक करता है, तदपि उसको किए हुए पापों का फल अवश्य भोगना पडता है।

कसाई जैसे जीव को भी कुएँ मे पडने की सलाह नहीं दी जा सकती तो ज्ञानी पाप के अनन्त भयकर कूप मे स्वेच्छा से कैसे उतरे? पाप-प्रवृत्ति मे प्रवृत्त न होना यह परोपकार नहीं किन्तु स्व-आत्मा पर परम उपकार है।

आश्रव--

यह विश्व पिशाची राज्य है। इसे चलानेवाला आश्रव नामक क्षुद्र राजा है, उसका नाश करनेसे ही आत्मा का शासन स्थापित हो सकता है। आश्रव ने तीनों लोक पर अपनी सत्ता चलाई है।

परमाधामी के मार से भी आश्रव का मार अधिक भयंकर है, परन्तु अज्ञानी जीव आश्रव को अमृत मानकर उसका (आश्रव का) सेवन करता है।

आम की गुटली बोने वाला सैकड़ों आम वृक्ष के मालिक बनता है और गुटली मुंसकर खा जाने वाला दरिद्री बनता है। इसी प्रकार इन्द्रियों का संवर करना नियमन करना पुण्याई को बढ़ाना है और इन्द्रियों के विविध भोग भोगना अनंत पूर्व पुण्याई को खाजाने जैसा है।

पांचों ही इन्द्रियों में रसेन्द्रिय से अधिक सावधान रहने का है अन्य इन्द्रियाँ एक २ कार्य करती है और रसेन्द्रिय (जिव्हा) स्वाद लेने और बोलने का, दो कार्य करती है। कुत्ते की जीभ स्नेहियों के शरीर के घाव रुझा देती है अब मनुष्य की आगकी जीभ स्नेहियों के हृदय में घाव कर देती है पुराने घावको ताजे और छोटे घाव को बड़ा करती है। रसास्वाद भी द्रव्य और भाव से विशेष भयंकर है। तलवार अपने स्वामी की रक्षा करती है, परन्तु जीभ रूप तलवार रसास्वाद से शरीर में अनेक रोग उत्पन्न करके अपनी घात करती है तथा वचन से स्नेहियों की घात करती है। अन्य इन्द्रियां प्रकट रहती है अब यह इन्द्रिय पर्दे में मुँह के भीतर रहती है। रसनेन्द्रिय को वश करने वाला अपनी पांचों ही इन्द्रियों का वश करता है।

मिथ्यात्व का आश्रव चौथे गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
अव्रत का आश्रव छट्ठे गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
प्रमाद का आश्रव सातवें गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
कषाय का आश्रव तेरहवें गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
योग का आश्रव चौदहवें गुणस्थान पर पूर्ण होता है।

संवर—

मन वचन काया का सयम तथा किसी का लेश मात्र दिल न दुखाकर सर्व प्रवृत्ति जागृति पूर्वक करना 'संवर' है। हलन चलन आदि की प्रवृत्ति शीघ्रता पूर्वक करने से आत्मोपयोग भूला जाता है। इससे असयम होता है और सवर का नाश होता है। ज्ञानियों को उपयोगों की जागृति होने से आश्रव के स्थान संवर रूप होते है अज्ञानियों को उपयोग-जागृति के अभाव मे (अयत्ना से) संवर के स्थान आश्रव रूप होते हैं।

डॉक्टर—वैद्यों के कहने से रोगी को वर्षों तक अपनी इन्द्रियों का संयम (संवर) रखना पडता है, तो अनत जन्म-मरण के दुखों से मुक्त होने के लिए कितने संयम की आवश्यक्ता हो? यह सहज समझा जा सकता है। इस भव में अपनी इन्द्रियों का सवर न करने वाले को नरक निगोद रूप अनन्त दुःखमय स्थिति में परवशता से अपनी वासना एवं तृष्णा को वश करना पडता है।

दूध, दही, घृत, गुड, शक्कर, मिश्री आदि पदार्थों का भी अच्छे से अच्छा उपयोग करने का लक्ष्य रक्खा जाता है तो अपनी इन्द्रियां और शरीर का अच्छे से अच्छा सवर मय उपयोग करना चाहिए और आश्रव की प्रवृत्ति से अपनी आत्म रक्षा करना चाहिए।

निर्जरा—

आत्मा तथा कर्म को पृथक् करने की क्रिया सो निर्जरा। राग द्वेष के बलवान निमित्त प्रत्यक्ष उत्पन्न हो, किन्तु जिसका आत्म भाव किंचिन्मात्र राग द्वेष की प्रवृत्ति में लुप्त न हो सो निर्जरा।

जन्म मरण दूर करने के लिये निर्जरा (तप) औषध समान है। संसार रूप काम ज्वर से पीड़ितों के लिये तप शीतल चन्दन समान है। तप करने से प्रत्येक समय कर्म का क्षय होता है और अन्त में कर्म रहित होते हैं।

बन्ध—

मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद कषाय, और योग ये पांच प्रकार के बंधन हैं। मन, वचन काया आत्मा के यंत्र हैं। इन यंत्रों द्वारा कर्मों का बंध होता है। मन वचन काया की प्रवृत्ति में जहां २ कषाय मालूम हो उसे निकाल देना चाहिए। मन वचन काया की प्रवृत्ति से कर्म बंधन की वृद्धि होवे तो इसकी प्राप्ति ही निरर्थक है।

आत्मा स्वयं आत्मा को बांधती है और छोड़ती है। जितना पुरुषार्थ कर्म बांधने के लिए किया जाता है उतना पुरुषार्थ कर्म तोड़ने के लिए किया जाय तो आत्मा शीघ्र कर्मों से मुक्त हो सके। कर्म बांधने का पुरुषार्थ असत् है और कर्म तोड़ने का पुरुषार्थ सत्पुरुषार्थ है।

घोड़े को दौड़ता रखने के लिए मालिक घोड़े के गले में और पैरों में घुंघरे बांधता है तथा मस्तक पर कलगी लगाता है। मुँह के पास चने और हरा घास रखता है और दौड़ाने के लिए रंगीन चाबुक रखता है। ऐसे प्रलोभनों से घोड़ा गाड़ी में बंधता है, वैसे ही संसारी जीव स्त्री पुत्र कुटुम्ब बाग बंगले गाड़ी घोड़े मोटर तथा सोना चांदी हीरे मोती माणेक के टुकड़ों के प्रलोभनों से इस भव में संसार रूप गाड़ी के बंधन में बंधकर चौरासी लाख जीवयोनि में अनंत काल तक भवभ्रमण करते हैं।

मोक्ष--

मानव भव मोक्ष द्वीप है, परन्तु विषय कषाय युक्त प्रवृत्ति के कारण वह ससार द्वीप बन पाया है। माता के गर्भावास के बंधन में से मुक्त होने के लिए अकाम परिषह सहन करने पडते हैं तो अनत जन्म मरण के बन्धनों में से मुक्त होने के लिए कितने तप और त्याग की आवश्यक्ता होना चाहिए ? यह सहज ही समझ मे आ सकता है।

क्रोडों वडके बीज कुचला कर नष्ट होते हैं, उनमे से कोई एक बीज बड का स्वरूप धारण करता है, उसी प्रकार क्रोडों मनुष्य अपना जीवन पाप मय रीति से पूर्ण करते है और कोई भाग्य-शाली जीव धर्म पथ-मोक्ष पथ के सन्मुख होते हैं।

द्रव्य पथ काटने के लिए रेलवे, मोटर, स्टीमर, एरोप्लेनादि शीघ्रगामी साधन काम में लिये जाते हैं, तो मोक्ष पथ के लिए कितनी शीघ्रता अप्रमत्त दशा होनी चाहिए ? यह सुज्ञ सरलता से समझ सकेगे।

मोक्ष आत्मा का पात्र है। उस पात्र में रखने की वस्तु ज्ञान दर्शन है। स्थावर जीवायोनि मिट्टी आदि से मानव हुए तो मानव में से मोक्ष गामी होने के लिए मिट्टी से मानव होने जितनी प्रति-कूलता नहीं है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है।

मनुष्य मात्र के लिए मोक्ष की हुंडी बंध लिफाफे में है। मात्र बंध कवर को खोल कर देखने की देर है।

पुन्य से स्वर्ग, पाप से नर्क और वीतरागता से मोक्ष होता है। आत्मा से विषय कषाय का पर्दा दूर हो तो जीवका 'शीव' होवे। कषाय से बंध और अकषाय से मोक्ष है।

मोक्ष मधुर है, मोक्ष की साधना उससे विशेष मधुर है।

मोक्ष अर्थात् आत्मविकास की पूर्णता

आत्म स्वरूप से गिरना बंध है और आत्म स्वरूप में स्थिरता ही मोक्ष है। आत्मा (निज) के लिये आत्म (निज) बुद्धि ही मोक्ष है।

प्रश्न—मैं कब मुक्त होऊंगा?

उत्तर—जब मैं नहीं रहूंगा।

२—मिथ्यात्व

वर्तमान कालीन बिना धार्मिक ज्ञान का शिक्षण मनुष्य को मात्र अपने शरीर सुख में लीन रखता है। नये २ आविष्कार द्वारा शरीर सुख के साधन बढ़ाकर मृत्यु का विचार मात्र भुलाया जाता है। मानव सम्यक् विचार नहीं कर सकते। सदा शरीर सुख के मिथ्या विचार (मिथ्यात्व) में लीन रहते हैं। आत्मा का ज्ञान हो वही सत्य शिक्षण और वही समकित है।

पंचम काल में मिथ्यात्व वृद्धि के साधन प्रति दिन बढ़ रहे हैं। विलास के साधनों में मुग्ध होकर मानव आत्म विकास के पथ को भूल जाता है।

मानव में से मिथ्यात्व के कारण प्रति दिन दान शील तप भावना ज्ञान दर्शन चारित्रादि के भाव नष्ट हो रहे हैं और विपरीत भाव भर रहे हैं मिथ्यात्व के कारण इस भव से

अलावा परभव के विचार भी नहीं होते। वर्तमान युग सचमुच गाढ़ मिथ्यात्व का युग है। अतः न्याय नीति के सूत्र भूले गये हैं, 'लाठी उसकी भैंस' और निर्बल का मृत्यु इस युग मे हैं। देवों को भी दुर्लभ मानव भव मिथ्यात्व के उदय से नारक जीव भी न चाहे ऐसा तिरस्कार पात्र बन रहा है।

वर्तमान में गेस और विजली का प्रकाश बाह्य विश्व को प्रकाशित कर रहा है, किन्तु अन्तर (चित्त) मे मिथ्यात्व का घोर तिमिर बढ रहा है। सावधानी के अनेक कानून, कैदखाने और कचहरियां बनने पर भी माया अनीति अन्याय व्यभिचार, क्रूरता द्वेष ईर्षा, निंदा आदि मिथ्यात्व पोषक दुर्गुण मानव मे बढ रहे हैं। वकील, बैरिस्टर सोलीसीटर्स और न्यायाधीश बढते जाते हैं त्यों त्यो मिथ्वात्व जन्य उपरोक्त अपराध घटने के बजाय बढते जाते है। विलास वर्धक यत्र और साधन बढ रहे है त्यों त्यों भूख-मरा बढ रहा है और इसी कारण पाप प्रवृत्ति बढ रही है। मिथ्यात्व वर्धक साधन एक दम बढ रहे हैं। पूर्व कालमें तीर-कमान थे, आज एक बोतल विषैला गैस क्षण मात्र मे लाखों मानवों के प्राण लेता है। रेलवे, मोटर, स्टीमर, हवाई जहाज आदि पाप वर्धक साधन (मिथ्यात्व) बढ रहे हैं। शरीर पर वेश भूषा आदि की बाहरी सभ्यता बढ रही है और अंतरात्मा मे नीच वृत्ति, पामरता, स्वार्थ, शठता, और अशांति के नित्य नये लेप लिपट रहे है आत्म भावना भुलाने वाला मिथ्यात्व का महा रोग वर्तमान में बढ रहा है। ऐसे महारोग मे से बचने के लिए सम्यक् दृष्टि निरतर यत्न करता है। मिथ्यात्व की जड क्रोध मान माया लोभ और राग द्वेष पर लगती है। और सम्यक्त्व की जड़ क्षमा विनय सरलता सतोष एव समभाव पर लगती है।

मिथ्यात्वी नित्य विलास के साधन और अपनी आवश्यकता बढ़ाते जाता है और समदृष्टि अपनी आवश्यकतायें शरीर के रोगवत् घटाते जाते हैं क्रमशः अपना जीवन सादगी से चलाकर अपने सम्यक्त्वरत्न की रक्षा करते हैं।

१—अविरति

आत्म स्वरूप में विशेष रति पाना-रक्त होना सो विरति और पर वृत्ति से उदासीनता का नाम अविरति। जब तक आत्मा की प्रतीति न हो वहाँ तक विरतिपना हो नहीं सकता। आत्मा अमर है आनंद का भण्डार है, ऐसा अनुभव न हो वहाँ तक इन्द्रियों के विषय भोग प्रति उदासीनता होने नहीं पाती। आत्मानुभव हुए बिना व्रत प्रत्याख्यान की इमारत टिक नहीं सकती। जितने प्रमाण में आत्मानुभव की दृढ़ता होती है उतने प्रमाण में व्रत प्रत्याख्यान में दृढ़ता रह सकती है।

आत्मा में मिथ्यात्व का अंश होगा जब तक महान् उपदेशों की भी असर नहीं होती। रेती की नींव पर मकान ठहर नहीं सकता वैसे ही मिथ्यात्व के नाश बिना व्रत प्रत्याख्यान टिक नहीं सकते। मिथ्यात्व भाव दूर किये बिना बोध देना लोहे के साथ कागज चिपकाना है अथवा रेत के लड्डू बांधना है।

बिना आत्मानुभव के व्रत प्रत्याख्यान कुलमर्यादा अथवा लोक रूढ़ी से पाले जाते हैं। व्रत प्रत्याख्यान शरीर का धर्म नहीं है परन्तु आत्मा की आंतर स्थिति बताने वाले हैं। वेष, भाषा ज्ञान और विद्वत्ता सच्चे त्याग के साधन नहीं हैं। आंतर वासना

ा नाश हुए बिना कोई भेष या अवस्था बाह्य रूपेण धारण की जाय, वह दबी हुई अग्निवत् उपशांत मात्र है, निमित्त पाकर उसका पुनः उदय होता है।

व्रत प्रत्याख्यान की असर जीवन की समस्त प्रवृतियों मे हो, वही त्याग व्यवहार सत्य है। यदि व्रत प्रत्याख्यान की असर जीवन पर न हो तो वे व्रतादि प्रायः सत्य नहीं हो सकते। त्यागके अभाव में मानव मानवता का त्याग कर पाशवता प्रकटाता है। ज्यों ज्यों त्याग की मात्रा बढती है त्यों त्यों पाशवता का नाश होकर मानवता प्रकटती है।

पशुत्व, मनुष्यत्व, देवत्व, ईशत्व आदि में जातिगत फर्क नहीं है परन्तु उपरोक्त भिन्नता त्याग के विकाश पर ही है।

भोग भोगने के लिए मानव भव योग्य नहीं है, चूंकि मनुष्य मे सारा सार विचार ने की शक्ति है। अतः निःशंक होकर भोग नहीं भोग सकता। भोग रसिक मनुष्यों को स्वतन्त्र (स्वछन्द) और निःशक भोग भोगने के लिए पशु योनि मे पुन, जाना पड़ता है। वहीं उनकी लालसा पूर्ण होती है। तिर्यंच योनि में रात्रि दिन, एकान्त अनेकान्त, इष्ट-अनिष्ट और माता बहिन पुत्री-पिता पुत्र या भाई के भेद जाने बिना नि शक हो भोग भोग कर मानव भव मे रही हुई अपूर्ण विषय वासना को पूर्ण करते हैं।

विषय वासना का सकल्प बल (प्रबल इच्छा) द्वारा जीव उचित दिशा मे, उचित जीवायोनि में जन्म धारण करके विषय वासना का सकल्प पूर्ण किया जाता है।

त्याग के अभाव में मनुष्य को अधम वासनाओं की प्रबल इच्छा होती है और भोगोपभोग के लिए तरसते रहते हैं।

भोग की वासना पूर्ण करनेके लिए मृत्यु के बाद पूर्ण पशुत्व (पशु योनि) प्राप्त करता है।

त्याग प्रत्याख्यान के बिना का भोगी मानव स्वार्थी होता है वह कुटुंब समाज या देश का कल्याण कर नहीं सकता। कुटुंब की प्रति पालना के लिए भी तप और त्याग की आवश्यकता होती है। मात पिता सन्तान के लिए अनेक कष्ट उठाते हैं अपना सर्वस्व देकर सन्तान की सेवा करते हैं तो व अच्छे माँ बाप माने जाते हैं। आदर्श नागरिक कहलाने के लिए भी संयम की परमा वश्यकता है। विश्व की दृष्टि में भी बिना संयम के अच्छा नागरिक अच्छे मात पिता कुटुम्बी या आदर्श त्यागी साधु समझा नहीं जाता। वर्तमान म प्रजा विलासी व मोज शोक मे मानने वाले माँ बाप को माँ बाप या राजा को राजा मानने भी तैयार नहीं है। जितने प्रमाण मे संयम की मात्रा अधिक होगी उतना ही अच्छा गृहस्थ या आदर्श त्यागी कहलायगा। अच्छे होने के लिए साधु या संसारी हर एक को अपनी स्थित्यनुसार त्याग और प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। संयम दृष्टिवाला सुन्दर गृहस्थाश्रम चला सकता है, चाहे वह राजा हो या रंक, सभी को संयम दृष्टि का शरण लेना पड़ता है। संयमी जीवन के अभाव में साधु जैसे अपने पद से च्युत होता है वैसे गृहस्थ भी अपने पद से पतीत होकर गृहस्थाश्रम के, राज्याधिकार के और माँ बाप के पवित्र कर्तव्य से च्युत होते हैं। योग्य माँ बाप होने के लिये पशु-पक्षी भी अपने सन्तान की प्रति पालना स्वयं भूख दुःख सहकर भी करते हैं।

त्याग ही इस लोक एवं परलोक में परम सुख का स्थान है।

४–प्रमाद ।

आत्मा की आभ्यतर अवस्था स्वाभाविक शुद्ध उपयोगमय है, इससे विपरीत स्वानुभव से चलित स्थिति को प्रमाद कहा है। लश्कर में प्रमाद करने वाले घोडे या सिपाही को बन्दूक से उडा दिये जाते हैं। तो आत्म धर्म में प्रमाद करने वालों की क्या दशा हो ? पार्श्वमणी का लोहे के साथ समागम करने में क्षण मात्र का प्रमाद क्रोडों का नुकसान करता है तो आत्म धर्म रूप पार्श्व-मणी के समागम में प्रमाद होने से कितना नुकसान हो ?

धर्म कार्य आज नहीं करके कल करने वाला प्रमादी आत्म-धर्म को सदा के लिये खो देता है और कल के बदले में आज करने से आत्म धर्म की अनन्त काल के लिये रक्षा होती है।

प्रमाद दशा मे कर्तव्याकर्तव्य का भान होने पर भी प्रमाद के नशे में अकर्तव्य सेवन होता है। मानव प्रगति मे प्रमाद जैसा अहित कर शत्रु अन्य कोई नहीं है। मनुष्य से प्रमाद दूर हो तो परमात्मत्व प्रकट हो जाय। प्रमाद का नशा इरादा पूर्वक कर्तव्याकर्तव्य का भान भूला देता है। प्रमाद ही वर्तमान संयोगों में सन्तुष्ट रह कर आगे बढने में बाधक है। प्रमाद ही प्रगति पथ मे अनेक बाधक सलाह देता है।

जीव का अधिक पतन करने के लिये प्रमाद अपने अनेक मित्रों के साथ आता है और महान् पतन करता है। चार विकथा (स्त्री, खान पान, देश, और राज सम्बन्धी गप्पे), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पांच (इन्द्रियों के) विषय (स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द), निद्रा, स्नेहादि प्रमाद के अनेक मित्र हैं।

भोग की वासना पूर्ण करनेके लिए मृत्यु के बाद पुनः पशु (पशु योनि) प्राप्त करता है।

त्याग प्रत्याख्यान के बिना का भोगी मानव स्वार्थांध होता है वह कुटुंब समाज या देश का कल्याण कर नहीं सकता। कुटुंब की प्रति पालना के लिए भी तप और त्याग की आवश्यकता होती है। मात पिता सन्तान के लिए अनेक कष्ट उठाते हैं अपना सर्वस्व देकर सन्तान की सेवा करते हैं तो व अच्छे माँ बाप माने जाते हैं। आदर्श नागरिक कहलाने के लिए भी संयम की परमा वश्यकता है। विश्व की दृष्टि मे भी बिना संयम के अच्छा नागरिक अच्छे मात पिता कुटुम्बी या आदर्श त्यागी साधु समझा नहीं जाता। वर्तमान में प्रजा विलासी व भोग शोक में मानने वाले माँ बाप को माँ बाप या राजा को राजा मानने भी तैयार नहीं है। जिसमे प्रमाण में संयम की मात्रा अधिक होगी उतना ही अच्छा गृहस्थ या आदर्श त्यागी कहलायगा। अच्छा होन के लिये साधु या संसारी हर एक को अपनी स्थित्यनुसार त्याग और प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। संयम वृत्तिवाला सुन्दर गृहस्थाश्रम चला सकता है चाहे वह राजा हो या रंक, सभी को संयम वृत्ति का शरण लेना पड़ता है। संयमी जीवन के अभाव में साधु जैसे अपने पद से च्युत होता है वैसे गृहस्थ भी अपने पद से पतीत होकर गृहस्थाश्रम के राज्याधिकार के और माँ बाप के पवित्र कर्तव्य से च्युत होते हैं। योग्य माँ बाप होने के लिये पशु-पक्षी भी अपने सन्तान की प्रति पालना स्वयं भूख दुःख सहकर भी करते हैं।

त्याग ही इस लोक एवं परलोक में परम सुख का स्थान है।

४–प्रमाद ।

आत्मा की आभ्यंतर अवस्था स्वाभाविक शुद्ध उपयोगमय है, इससे विपरीत स्वानुभव से चलित स्थिति को प्रमाद कहा है। लश्कर में प्रमाद करने वाले घोडे या सिपाही को बन्दूक से उडा दिये जाते हैं। तो आत्म धर्म में प्रमाद करने वालों की क्या दशा हो ? पार्श्वमणी का लोहे के साथ समागम करने में क्षण मात्र का प्रमाद क्रोडों का नुकसान करता है तो आत्म धर्म रूप पार्श्व-मणी के समागम में प्रमाद होने से कितना नुकसान हो ?

धर्म कार्य आज नहीं करके कल करने वाला प्रमादी आत्म-धर्म को सदा के लिये खो देता है और कल के बदले में आज करने से आत्म धर्म की अनन्त काल के लिये रक्षा होती है।

प्रमाद दशा मे कर्तव्याकर्तव्य का भान होने पर भी प्रमाद के नशे में अकर्तव्य सेवन होता है। मानव प्रगति मे प्रमाद जैसा अहित कर शत्रु अन्य कोई नहीं हैं। मनुष्य से प्रमाद दूर हो तो परमात्मत्व प्रकट हो जाय। प्रमाद का नशा इरादा पूर्वक कर्तव्याकर्तव्य का भान भूला देता है। प्रमाद ही वर्तमान सयोगों में सन्तुष्ट रह कर आगे बढने में बाधक है। प्रमाद ही प्रगति पथ मे अनेक बाधक सलाह देता है।

जीव का अधिक पतन करने के लिये प्रमाद अपने अनेक मित्रों के साथ आता है और महान् पतन करता है। चार विकथा (स्त्री, खान पान, देश, और राज सम्बन्धी गप्पें), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पांच (इद्रियों के) विषय (स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द), निद्रा, स्नेहादि प्रमाद के अनेक मित्र हैं।

भोग की वासना पूर्ण करने के लिए मृत्यु के बाद पूर्ण पशुत्व (पशु योनि) प्राप्त करता है।

त्याग प्रत्याख्यान के बिना का भोगी मानव स्वार्थी होता है वह कुटुंब समाज या देश का कल्याण कर नहीं सकता। कुटुंब की प्रति पालना के लिए भी तप और त्याग की आवश्यकता होती है। मात पिता सन्तान के लिए अनेक कष्ट उठाते हैं अपना सर्वस्व देकर सन्तान की सेवा करते हैं सो व अच्छे माँ बाप माने जाते हैं। आदर्श नागरिक कहलाने के लिए भी संयम की परमावश्यकता है। विश्व की दृष्टि में भी बिना संयम के अच्छा नागरिक अच्छे मात पिता कुटुम्बी या आदर्श त्यागी साधु समझा नहीं जाता। वर्तमान में प्रजा विलासी व मौज शौक में मानने वाले माँ बाप को माँ बाप या राजा को राजा मानने भी तैयार नहीं हैं जितने प्रमाण मे संयम की मात्रा अधिक होगी उतना ही अच्छा गृहस्थ या आदर्श त्यागी कहलायगा। अच्छा होने के लिये साधु या संसारी हर एक को अपनी शक्त्यनुसार त्याग और प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। संयम भूमिवाला सुन्दर गृहस्थाश्रम चला सकता है चाहे वह राजा हो या रंक, सभी को संयम भूमि का शरण लेना पड़ता है। संयमी जीवन के अभाव में साधु जैसे अपने पद से च्युत होता है वैसे गृहस्थ भी अपने पद से पतीत होकर गृहस्थाश्रम के राज्याधिकार के और माँ बाप के पवित्र कर्त्तव्य से च्युत होते हैं। योग्य माँ बाप होने के लिये पशु-पक्षी भी अपने सन्तान की प्रति पालना स्वयं भूख दुःख सहकर भी करते हैं।

त्याग ही इस लोक एवं परलोक मे परम सुख का स्थान है।

४–प्रमाद ।

आत्मा की आभ्यतर अवस्था स्वाभाविक शुद्ध उपयोगमय है, इससे विपरीत स्वानुभव से चलित स्थिति को प्रमाद कहा है। लश्कर में प्रमाद करने वाले घोडे या सिपाही को बन्दूक से उडा दिये जाते हैं। तो आत्म धर्म मे प्रमाद करने वालों की क्या दशा हो ? पार्श्वमणी का लोहे के साथ समागम करने में क्षण मात्र का प्रमाद क्रोडों का नुकसान करता है तो आत्म धर्म रूप पार्श्वमणी के समागम में प्रमाद होने से कितना नुकसान हो ?

धर्म कार्य आज नहीं करके कल करने वाला प्रमादी आत्म-धर्म को सदा के लिये खो देता है और कल के बदले में आज करने से आत्म धर्म की अनन्त काल के लिये रक्षा होती है।

प्रमाद दशा मे कर्तव्याकर्तव्य का भान होने पर भी प्रमाद के नशे में अकर्तव्य सेवन होता है। मानव प्रगति में प्रमाद जैसा अहित कर शत्रु अन्य कोई नहीं है। मनुष्य से प्रमाद दूर हो तो परमात्मत्व प्रकट हो जाय। प्रमाद का नशा इरादा पूर्वक कर्तव्याकर्तव्य का भान भूला देता है। प्रमाद ही वर्तमान सयोगों में सन्तुष्ट रह कर आगे बढने मे बाधक है। प्रमाद ही प्रगति पथ में अनेक बाधक सलाह देता है।

जीव का अधिक पतन करने के लिये प्रमाद अपने अनेक मित्रों के साथ आता है और महान् पतन करता है। चार विकथा (स्त्री, खान पान, देश, और राज सम्बन्धी गप्पें), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पांच (इद्रियों के) विषय (स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द), निद्रा, स्नेहादि प्रमाद के अनेक मित्र हैं।

भोग की वासना तृप्त करने के लिए मृत्यु के बाद तृप्त पशु (पशु योनि) प्राप्त करता है।

त्याग प्रत्याख्यान के बिना का भोगी मानव स्वार्थी होता है वह कुटुंब समाज या देश का कल्याण कर नहीं सकता। कुटुंब की प्रति पालना के लिए भी तप और त्याग की आवश्यकता होती है। मात पिता सन्तान के लिए अनेक कष्ट उठाते हैं अपना सर्वस्व देकर सन्तान की सेवा करते हैं तो वे अच्छे माँ बाप माने जाते हैं। आदर्श नागरिक कहलाने के लिए भी संयम की परम आवश्यकता है। विश्व की दृष्टि में भी बिना संयम के अच्छा नागरिक अच्छा मात पिता कुटुम्बी या आदर्श त्यागी साधु समझा नहीं जाता। वर्तमान में प्रजा विलासी व मौज शौक में मानने वाले माँ बाप को माँ बाप या राजा को राजा मानने भी तैयार नहीं है। जितने प्रमाण में संयम की मात्रा अधिक होगी उतना ही अच्छा गृहस्थ या आदर्श त्यागी कहलायेगा। अच्छा होने के लिये साधु या संसारी हर एक को अपनी स्थित्यनुसार त्याग और प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। संयम द्वारा ही सुन्दर गृहस्थाश्रम बन सकता है, चाहे वह राजा हो या रंक, सभी को संयम वृत्ति का शरण लेना पड़ता है। संयमी जीवन के अभाव में साधु जैसे अपने पद से च्युत होता है वैसे गृहस्थ भी अपने पद से पतित होकर गृहस्थाश्रम के सत्याधिकार के और माँ बाप के पवित्र कर्तव्य से च्युत होते हैं। योग्य माँ बाप होने के लिये पशु-पक्षी भी अपने सन्तान की प्रति पालना स्वयं भूख दुःख सहकर भी करते हैं।

त्याग ही इस लोक एवं परलोक में परम सुख का स्थान है।

५—ज्ञान व सम्यग्ज्ञान

ज्ञान—चन्द्र सूर्य तथा तारे लाखों मील कोसों दूर होने पर भी इतना प्रकाश देते हैं, तो ज्ञान का प्रकाश कितना अधिक है यह सहज समझमें आ सकता है। चन्द्र सूर्य के प्रकाश को सामान्य बादल तथा बदली भी दबा सकती है परन्तु आत्म ज्ञान के प्रकाश को दबाने कोई भी समर्थ नहीं है। ज्ञान दशा के अभाव से स्थावर विकलेन्द्रिय और अज्ञानी जीव जैसी दयापात्र दशा सज्ञी की भी हो जाती है।

जिसके पास पारसमणी है वह मेरु जितने सोने के पहाड़ को भी पत्थर तुल्य मानता है, वैसे ही ज्ञान होने पर देव व मानव के उत्कृष्ट भोग भी रोग तुल्य समझे जाते हैं। जो ज्ञानी होता है वह आत्मा में रमण करता है। बिना ज्ञानका मानव चमड़े का मनुष्य जैसा अज्ञ माना जाता है।

रसायण शास्त्री विविध प्रयोग न करे तो उसका ज्ञान निरर्थक है, वैसे ज्ञानवान् आचार न हो तो ज्ञान की कीमत ही क्या! रेल्वे के पुल नीचे होकर करोड़ों मण पानी बह जाता है। किन्तु पुल को बिन्दु मात्र स्पर्शता नहीं है, वैसे ही बिना आचार का ज्ञान लाभदायी नहीं है।

सूर्य के प्रकाश के अभाव मे वनस्पति के पौधे मुरझा जाते है, वैसे ज्ञान के प्रकाश के अभाव में आत्मगुण के पौधे नष्ट होते हैं ज्ञान के प्रकाश द्वारा आत्मगुण प्रति समय अधिकाधिक बढ़ता जाता है।

ज्ञान अग्नि तुल्य है। जैसे अग्नि अपथ्य को पथ्य और अपक्व को पक्व बनाती है, वैसे ज्ञान प्रतिकूल संयोगों को अनुकूल और विषम भाव को समभाव बनाता है।

विश्व में कोई सत्व (पदार्थ) स्थिर नहीं है। समस्त तत्व पूर्ण वेग से गतिमान हो रहे हैं। इस परिस्थिति में आत्मा यदि अपनी प्रगति न करे तो उसका पतन होकर अपने मूल स्थान नरक निगोद में जाना है। प्रमाद पतन की ओर वेग से ले जाता है। प्रमाद दशा में नरक निगोद की यातना मधुर मानी जाती है। प्रमाद के कारण पिशाचिनी भी अप्सरा मानी जाती है।

आरोग्य पाने का अर्थ रोग का मिटना है वैसे स्वर्ग या मोक्ष के अभाव में नरक निगोद की ओर प्रयाण होते हैं।

प्रमाद और मदिरा में कोई फर्क नहीं है। प्रमाद की असर धीरे २ अप्रगट और गुप्त रीत्या हानी रहने से मनुष्य की समझ में नहीं आता परंतु मदिरा का परिणाम प्रत्यक्ष होने से लोग उससे सावधान रहते हैं। शराब के नशे के लिये सावधानी का समय निकल जाता है और प्रमाद करने वाला सावधानी के समय का अनादर करता है।

शरीर बल की अपेक्षा इन्द्रिय बल में और इन्द्रिय बल से ज्ञान बल में अधिक सामर्थ्य और आनन्द है। इसीलिये सत्यज्ञानी ज्ञान को आचार (चरित्र) में रखने वाला मात्र का प्रमाद नहीं करता जैसे क्षुधातुर अन्न प्राप्ति में। दावानल देख कर वहां से दूर न जाने वाला पंगु जैसे जल कर भस्म हो जाता है, वैसे ज्ञान मुताबिक वर्ताव (चरित्र) न करने वाला ज्ञानी होने पर भी सद्गति का अधिकारी नहीं हो सकता। अंधे का दौड़ना जैसे निर्धारित स्थान पर पहुंचने में असफल होता है उसी प्रकार ज्ञान बिना की क्रिया भी असफल रहती है। ज्ञान और क्रिया मोक्ष गति रूप रथ के दो पहिये तुल्य है।

समकित—चौथा गुण स्थान (सम्यक्त्व) अर्थात् अंतरात्म भाव आत्म मन्दिर का गर्भ द्वार है। जिसमें प्रवेश करके उस मन्दिर में वर्तमान परमात्मा भाव रूप निरंजन देव (निजात्मा) के दर्शन किये जा सकते हैं, जैसे कैदी कैद जाने से छूटने की नित्य चिंता करता है और अपने साथी कैदियों से सदा उदासीन रहता है वैसे समदृष्टि आत्मा अपने आप को संसार का कैदी समझ कर संसार से मुक्त होने की भावना से भोग परिवार में अनासक्त बना रहे। फांसी पर लटकने तैयार व्यक्ति की अनासक्त मनोदशा संसारस्थित समदृष्टि की होती है। कुष्ट रोगी रोग मुक्त होने में जितना प्रयत्न शील होता है, समदृष्टि जीव कर्म मुक्त होने पर्यन्त उससे भी अधिक प्रयत्न शील रहता है, आराम की नींद नहीं सोता।

समदृष्टि को अपनी देह पर भी ममत्व नहीं होता तो अन्य किस पर ममत्व हो सकता है? राग द्वेष के प्रबल साधनों में भी समदृष्टि अक्षोभ रहे। समदृष्टि की व्यवहार प्रवृत्ति में भी अलौकि

कना हो। देह धर्म की तरह आत्मधर्म प्रत्यक्ष और अनिवार्य प्रतीत हो, तब समकित प्राप्त हुआ मानना चाहिए। राग-द्वेष एवं मोह का नाश न हो वहाँ तक समदृष्टि को चैन नहीं होता। समदृष्टि को वीतराग सुख के अलावा शेष सब दुःख प्रतीत होता है। समदृष्टि देह मय नहीं किन्तु आत्म-भाव मय होता है। देह मय दशा है, सो मिथ्यात्व दशा है।

८—पंच-महाव्रत

१ अहिंसा—

अहिंसा की आस पास १०० कोसों में समभाव फैलता है। अहिंसक के पास क्रूर प्राणी भी दयालु बनता है तो समझ शक्ति वाला मानव वैर वृत्ति को भूले जिसमें आश्चर्य ही क्या ?

जितने अंश में समदर्शिता हो उतने ही अंश मे अहिंसा और विषम भाव में हिंसा है। अहिंसक समदर्शी पत्थर का उत्तर गुलाब से देता है। विषय कषाय का विजय ही अहिंसा व तप है। अहिंसक, अहित करने वाले का भी हित करने का प्रयत्न करता है। हिंसक अपनी वृत्ति नहीं छोडता तो अहिंसक जीव अपनी अहिंसा वृत्ति क्यों छोडे ? मानव पूर्ण रूप से अहिंसक, पूर्ण क्षमावान न हो वहां तक वह पूर्ण मानव नहीं है और जितनी अपूर्णता है उतनी पशुता है। नट की डोर से भा अहिंसा की डोर अति सूक्ष्म है। हिंसा पिशाच वृत्ति है। और अहिंसा परमात्म वृत्ति है। समभाव से संकट सहना अहिंसा का राज पथ है। कुविचार, दोष दृष्टि, अविचार से उत्तर देना, हिंसा है। किसी पर

सत्ता स्थापन करके भाइयों में पछतावा भी किया है पर शत्रुओं के गुणप्रशंसा भी किया है। निज मान को छोड़ कर भी शत्रु का मान बढ़ाने में अहिंसा धर्म की रक्षा है। अहिंसा धर्म की रक्षा के लिए सतत जागृति रखनी चाहिए। अहिंसक के शत्रु नहीं होते 'शठं प्रति शाठ्यं नहीं परंतु सत्यं कुर्यात्' अहिंसा अर्थात् जिस तरह की प्रेम पुत्र पुत्री के अपराध बिना गिने ही माफ किये जाते हैं उस अहिंसक पुरुष विश्व को अपना मानकर सब के अपराधों को उदार भाव से क्षमा करे। अहिंसा के पालन में अत्यन्त धैर्य और शौर्य की आवश्यकता है। अहिंसा समझ में आवे तो इस लोक में यह चिन्तामणि रत्न तुल्य सुख देता है।

किसान खेती के विकास के लिये वर्षा के पानी के प्रहार को सहन करता है। उस अहिंसक अपनी खेती (अहिंसा) की प्रगति के लिये समस्त प्रकार के प्रहारों को सहर्ष झेले। कष्ट भोगने वाले की अपेक्षा कष्ट देने वाले को अधिक कष्ट सहना पड़ता है। अहिंसा व्रत का आराधक किसी किसी निमित्त से अकुला नहीं करे। जीवन के भोग से माता अपनी सन्तान की रक्षा करती है, उस अहिंसक विश्व माता बनकर अपने जीवन भोग से विश्व की रक्षा करे। दुरात्मा का सर्वथा नाश ही अहिंसा है। शत्रु को भी सुखी देखने की भावना ही सत्य अहिंसा है। वैरियों को वश करने का सर्वोत्तम शस्त्र अहिंसा ही है।

सत्य—

हमारे सूर्यों के प्रकाश में सत्य का प्रकाश विशेष है। और आत्मा शत्रुओं में अधिक अन्धकार असत्य का है। सब सद्गुणों का सत्य में और सब दोषों का असत्य में अन्तर्भाव होता है। जिसमें अहङ्कार का आत्यन्तिक नाश हुआ हो, वही सत्य मूर्ति

हो सकता है। सत्याचारी-सदाचारी सदा नम्र होता है। वह अपनी त्रुटियाँ प्रतिदिन समझता जाता है। विचार वाणी और वर्तन में सत्य होना चाहिए। सत्य समुद्र समान है। उसमें समस्त गुण रूप नदियां आमिलती हैं। प्रत्येक श्वासोच्छ्वास में सत्य का समावेश रहना चाहिए। जहाँ सत्य का वास है वहीं परम आनन्द है।

निज प्रशंसा से प्रसन्न होना भी मृषावाद है। परभाव वाली भाषा बोलना निश्चय से असत्य है। स्वस्वरूप में स्थिर होना निश्चय सत्य है। आत्मा को स्वभाव से चलित करना निश्चय असत्य है। अपने गुणों को प्रकाशित करना मृषावाद है। सत्य के ध्येय बिना मानव का जीवन पशु तुल्य है।

अचौर्य---

अस्तेय व्रत पालन करने वाले को बहुत नम्र विचारशील बन कर अति सावधानी से रहना चाहिये। जैसे रोगी अपना रोग घटाने का तहदिल से यत्न करता है, उसी प्रकार अस्तेय व्रत का आराधक अपनी आवश्यकताओं को घटाने में प्रयत्नशील रहे। जरूरत से ज्यादा अन्न, वस्त्र, मकान, धन या अन्य वस्तुओं का संग्रह रखना चोरी है। विषय कषाय का सेवन निश्चय से चोरी है। स्त्री पुरुष के अङ्गोपांग विकार दृष्टि से देखना भी चोरी है। चोर जबरदस्ती से धन लूट जाते हैं, जिसको लोग बुरा समझते हैं। आश्चर्य है कि अज्ञानी आत्मा आत्मिक धन लुटाने के जिये विषय कषाय चोरों को निमन्त्रण देते हैं।

ब्रह्मचर्य---

आत्मा के शुद्ध स्वरूप में विचरने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। अर्थात् जीवन स्पर्शी पूर्ण संयम पूर्ण आश्रव निषेध वह ब्रह्मचर्य है।

आत्म स्वरूप के विचार के अलावा सब व्यभिचार है। पाँच इन्द्रियों के २३ प्रकार के विषयों में आसक्ति सो व्यभिचार है और इन्द्रियों के विषयों का संयम, वह शील है। "समभाव सो शील और विषम भाव सो व्यभिचार"।

ब्रह्मचर्य का अर्थ मात्र कायिक पवित्रता रखने का करना पाई के लिए रुपये का बदलना है। ब्रह्मचारी मनुष्य अपनी स्त्री के साथ भी भोग दृष्टि नहीं रखता। "मनुष्य के गुलाम बनो पर विषयी मन के गुलाम मत बनो" निसंशय मानव की सब से विशेष मूल्यवान संपत्ति ब्रह्मचर्य है। जैसे फूटा लैम्प हो तो तेल नीचे से ढुल जाता है अन्यथा ऊँचा चढ़ कर प्रकाश देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य के अभाव में आत्मतेज आत्म प्रकाश का नाश होता है और उसके पालन से आत्म तेज तथा आत्मशक्ति की वृद्धि होती है।

व्यभिचारी पुरुष को पशु कहना पशु का अपमान करना है क्योंकि पशु प्रकृति के अनुकूल संयम रखता है। इतनी संयम वृत्ति मनुष्य नहीं रखता है।

एक बर्तन में कोई मांस हड्डियाँ चमड़ा पीप मलमूत्र पीप आदि भरे हुये हैं, उन पर थूकने में भी अरुचि होती है। इन्हीं पदार्थों का समूह रूप स्त्री पुरुष के शरीरों की रचना है। उस पर ज्ञानी समझदार विषय रूप राग दृष्टि कैसे रख सकें!

परिग्रह—

मोह राजा कहता है, कि मैंने अपनी समस्त शक्तियाँ परिग्रह के पीछे खर्च की हैं परिग्रह के पीछे मेरा समस्त ।

परिग्रह बढाने के लिये मेरे समस्त सैनिक लोभी को प्रेरणा करते हैं और वह लोभी फुटबोल की तरह धन के लिये चारों दिशा में भटकता फिरता है।

कादे व लहसुन की खेती मे कपूर केशर और कस्तूरी का खात डाला जावे और सुवर्ण की झारी से दूध सिंचन किया जाय तो भी वह अपना स्वभाव नहीं छोडेगा। वही दुर्गन्ध मय कांदे व लहसुन होवेगा उसी प्रकार अनीति से प्राप्त धन का कोई विचार-शील पुरुष भी शायद ही सद्उपयोग कर सके।

श्रीमन्त होने में या श्रीमन्त पुत्र होने मे हर्ष मानते हो परतु वह धन कितने पाप से एकत्र हुआ है, उसका विचार करते हो ? दुनियां मे धन के ककर चुगते चुगते आत्म गुण के हीरे गंवाओगे क्या ? धन का नशा मदिरा से भी अधिक भयकर है, उस भयकर नशे वाला (धनवान) क्वचित् ही धर्म के सन्मुख रह सकता है। परिग्रह से ज्ञान के स्थान मे अज्ञान की, धर्म के स्थान मे अधर्म की और मोक्ष के स्थान बन्ध की प्राप्ति होती है। बुद्धि-मान् खुद को धन का मालिक नहीं परतु धन का ट्रस्टी मात्र मा-नता है। और अपनी समस्त सम्पत्ति का विश्वहित के लिये अच्छे से अच्छा उपयोग करता है। पैसा मनुष्यों के बीच भेद भाव के विचार खडे करता है। विषय विलास मे व्यय होने वाला धन किसी जुलमी राजा ने दड रूप गले में बांधी हुई सुवर्ण की शिला तुल्य है। पैसा मनुष्य प्रेम का व मानव धर्म का नाश कराता है। धन का उपयोग विकाश के मार्ग में होना चाहिये। जिससे आत्म धर्म का विनाश न हो। इस लिये नित्य सावधानी रक्खें।

आत्म स्वरूप के विचार के अलावा सब व्यभिचार है। पांच इन्द्रियों के २३ प्रकार के विषयों में आसक्ति सो व्यभिचार है और इन्द्रियों के विषयों का संयम, वह शील है। 'समभाव सो शील और विषम भाव सो व्यभिचार"।

ब्रह्मचर्य का अर्थ मात्र कायिक पवित्रता रखने का अथवा पाई के लिए रुपये का बदलना है। सदाचारी मनुष्य अपनी स्त्री के साथ भी भोग दृष्टि नहीं रखता। "मनुष्य के गुलाम बनो पर विषयी मन के गुलाम मत बनो" निर्दशय मानव की सब से विशेष मूल्यवान संपत्ति ब्रह्मचर्य है। जैसे फूटा लेम्प हो तो तेल नीचे से चुम जाता है अन्यथा ऊँचा चढ़ कर प्रकाश देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य के अभाव में आत्मतेज आत्म प्रकाश का नाश होता है और उसके पालन से आत्म तेज तथा आत्मशक्ति की वृद्धि होती है।

व्यभिचारी पुरुष को पशु कहना पशु का अपमान करना है क्योंकि पशु प्रकृति के अनुकूल संयम रखता है। इतनी संयम वृत्ति मनुष्य नहीं रखता है।

एक बर्तन में लोहू मांस हड्डियां चमड़ा पीप मलमूत्र पीप आदि भर हुये हैं उन पर थूकनेमें भी अरुचि होती है। इन्ही पदार्थों का समूह रूप स्त्री पुरुष के शरीरों की रचना है। उस पर ज्ञानी समझदार विवेक मनुष्य राग दृष्टि कैसे रख सके !

परिग्रह—

मोह राजा कहता है, कि मैंने अपनी समस्त शक्तियां परिग्रह के पीछे खर्च की हैं, परिग्रह के पीछे मेरा समस्त सैन्य है।

८—कर्म

प्रभु महावीर ने कर्म के महानियम का विश्व को भान कराया हैं। जीवात्मा पर अन्य कोई सत्ता चल नहीं सकती। स्वय अपने शुभाशुभ कर्मानुसार शुभाशुभ फल भोगते हैं। कर्म फल देने वाली आत्मा के सिवाय अन्य कोई भी सत्ता नहीं हैं। स्वर्ग नर्क संसार और मोक्ष आत्मा अपने आप बनाता है। अन्य किसी सत्ता के अवलम्बन की उसे आवश्यकता नहीं है। पराई कृपा या अकृपा आत्मा के हिताहित (कर्म फल) मे कोई फेर फार नहीं कर सकती। आत्मा ही अपने हिताहित का कर्त्ता है व भो-गता हैं। निर्बल मनुष्य को अपनी सत्ता में विश्वास नहीं होता है। जिससे वह अपने से कोई महान् सत्ता की कल्पना करके उस के चरणों में अपना सिर झुकाता है। और इस संसार के दुःखों से बचने के लिये उसकी कृपा के लिए दीनता से याचना करता है। ऐसी याचक वृत्ति ईश्वर को सुख दुःख के दाता मानकर स्वय दीन और पुरुषार्थ हीन बन जाता है।

इस प्रकार का पामर जीवात्मा अपना पतन और अहित करता है। और स्वयं सर्व शक्तिमान् होने का भान भूल कर ईश्वर की कल्पना करके याचना करने मे ही अपना दीन जीवन पूर्ण करता है, तथा प्राप्त संयोगों और सामर्थ्यों को व्यर्थ गंवाता है। इस पामर वृत्ति से विश्व की रक्षा करने के लिए प्रभु महावीर ने कर्म सिद्धान्त समझा कर जगत जीवों का अनन्त उपकार किया है। प्रभु महावीर ने सत्य को ही (कर्म का नियम) कहा है। कर्मों के साथ ही सदा उसका फल रहता है।

समाज सरकार और संघ के नियम तोडे जा सकते हैं। परन्तु कर्मों के नियम कुदरती सत्य (ध्रुव) होने से उसको तोड़ने के लिये

७—मौन ।

मौन धारण करके जो अपने जीवन को कछुए की तरह गुप्त बना लेता है, वही सच्चा साधक है, वह विश्व के लिये महाकल्याणकारक है। इस प्रकार जीवन को गोप कर मौन धारण करने वाला सत्य शोधक जीवन मुक्त सर्वथा कर्मभाव रहित सम्पूर्ण एवं अर्हत् स्वराज्यी महत्त्वाकांक्षा रहित हो वही विश्व का हित कर सकता है।

आत्मिक योग्यता बिना शब्दोच्चार किये हुये प्रकाशित होती है। बोलने की अपेक्षा मौन विशेष प्रभावशाली है। वचन की शक्ति मर्यादित है और मौन की शक्ति अमर्यादित है। मौनी स्वाधीन है, और बोलने वाला पराधीन है। मौन कार्यकर्त्ता सब से बड़ा सफल सेवक है। प्रत्येक कार्य मौन से विशेष प्रकाशित और प्रभावित होता है जो नम्र है, वह चुपचुप अपना काम करके भी मौन रहता है, और अभिमानी अपने थोड़े काम का बड़ा बिगुल फूंकता है।

मौन आध्यात्म पथ पर ले जाने वाला पथ प्रदर्शक है। पांच इन्द्रियाँ मन और चार कषाय ऐसे दश का संयम पूर्वक मौन धर्म का पालन करें।

मौन व्रत का अङ्गीकार करने वाला सर्व क्लेशों से दूर रह कर परम शांतिमय जीवन बिताता है।

शक्ति है या नहीं, सह सकेगा या नहीं, उसका लेश-मात्र विचार किये बिना सजा फरमा देता है। कर्म राजा मानता है कि जिसमे कर्म बांधने की शक्ति थी, उसमे भोगने की शक्ति होनी ही चाहिये। कर्ज ली हुई रकम ब्याज सहित चुकाना ही चाहिये।

कर्म का राज्य विशाल है, विविध स्थान मे विविध रूप में अदला बदली करता है। कर्म विविध प्रकार के रूप धारण करा कर जीवों को सुखी तथा दुःखी बनाते हैं। विविध जीवयोनियों मे विविध भेष धारण कराये जाते हैं। यह विश्व कर्म की आज्ञा द्वारा जीवों को नचाने की रग भूमि है। मोक्ष सिवाय अखिल ससार में सर्वत्र कर्म का ही राज्य है।

टकोरें और उसके अवाज को पृथक् नहीं कर सकते, वैसे ही कर्म और उसके परिणाम को पृथक् नहीं किया जा सकता। कर्म वर्तमान में है और उसका परिणाम भविष्य मे है। वर्तमान भूत और भविष्य एक ही काल के तीन अभिन्न टुकडे हैं, ऐसे ही कर्म का प्रेरक कारण कर्म और कर्म का परिणाम एक ही प्रवृत्ति के टुकडे हैं।

जैसे गाडी मे इच्छानुसार पसन्दगी के दर्जे वाले डिब्बे (First, second, Third & Inter) में मनुष्य बैठता है वैसे ही देव, मनुष्य और तिर्यंच गति की इच्छानुसार टिकट ली जासकती है। वहीं पहुँच सकते हैं, कोई बलात्कार नहीं करता। स्वेच्छा-पूर्वक वहां जाने की सामग्री एकत्र की जाती है और वहां जाया जाता है। प्रतिक्षण उस गति की ओर गमन हो रहा है, परन्तु अज्ञान वश जीवात्मा को अपनी गमन क्रिया का भान रहता नहीं है। हमारी मरजीके विरुद्ध हमको अन्य गति में लेजाने से कोई कर्म समर्थ नहीं है। 'मांगे विना कुछ नहीं मिलता' इस न्याय से हम चाहते

समय नहीं है। समाज और सरकार के नियम तोड़ कर मनुष्य भग सकता है छिप सकता है किन्तु कर्मों के नियमों को तोड़ कर वह कहीं नहीं जा सकता है। हम अपने किए कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है। अपितु हम अपने के लिए कर्म के नियम बाध्य नहीं करते इच्छानुसार कर्म करो। सुख के बीज बोया या दुःख के कर्म तो कुदरत के नियमानुसार बोए हुये बीज की तरह फल देते रहेंगे। कर्म किसी पर दया या मेहरबानी नहीं करते। उसे सिर्फ न्याय और सत्य प्रिय है जिससे किसी की आजीजी या प्रार्थना नहीं सुन कर अपने अटल नियमानुसार तीन लोक में अपना शासन प्रवर्ताते हैं।

राग द्वेष का परिणाम सो भाव कर्म और पुद्गलों का आत्मा के साथ मिलना सो द्रव्य कर्म है। प्रथम भाव कर्म और उसके परिणाम रूप द्रव्य कर्म है। कर्म परिणाम राजा के समान है। उसकी आज्ञा से जीव चौरासी लाख जीवयोनि में भ्रमते हैं। कर्म महाप्रभुत्व राजा है वह किसी की प्रार्थना नहीं सुनता। कर्म अपने अटल नियमानुसार किया करता है। कर्म प्रार्थना अथवा क्षमा आदि किसी वस्तु को महत्ता नहीं देता वह अपना कार्य करने में मस्त है। कर्म राजा दुखियों के दुख को सुनने में बहिरा और देखने में अन्धवत् रहता है। कर्म राजा जगत के जीवों को तुल्य दृष्टि मानता है उसमें दया नहीं है पर न्याय है। न्याय के बिना वह एक पैर भी नहीं रखता, वह निष्पक्ष न्याय करता है। कर्म की आज्ञा का पालन सब को अप्रमत्त होकर करना पड़ता है। इसके लिये अपील का स्थान नहीं है यही उसकी अन्तिम कचहरी है। उसमें दिये हुए फैसले को भी किन्हीं संयोगों में कभी भी नहीं बदल सकते। कर्म की कचहरी में रिश्वत या सिफारिश नहीं चलती सजायाफ्ता रिश्ता भोगने योग्य है या अयोग्य उसमें

वासना निवृत्त नहीं होती। स्त्री पुत्र और धन की उपादि किसी शैतान ने गले मे फांदी नहीं है, किन्तु जीवात्मा प्रेम पूर्वक ग्रहण करता है। वैसे ही भविष्य की गति भी प्रेम पूर्वक स्वीकार की जाती है और सहर्ष इसमे बदला भी दिया जाता है। अपनी इच्छा विरुद्ध एक अगुल भी आगे बढाने मे समर्थ नहीं है। दुर्गति भी उनको जबरदस्ती से खेंच नहीं जाती है। जीवात्मा स्वय दुर्गति मे लिये जाने वाले कारणों की तथा साधनों की खुशामद करता है। और उसके योग्य सामग्री एकत्र करता है। तब उसको उस गति में ले जाया जाता है। जीवात्मा की आजीजी, दीनता, प्रार्थना और बहुत काल की भावना के फलितार्थ दुर्गति का समागम होता है। वैसे ही देव गति का भी। अग्नि पर अगुली रखी जिस से जले-छाला हुआ और पीडा भोगी, उस में अग्नि का दोष नहीं है। इसी प्रकार जैसे कर्म किये वैसे ही फल मिले। दोष जीव का है, न कि कर्म का। स्वय शिक्षा पाता है। छाला अग्नि मे हाथ न रख ने के लिये सावधान करता है वैसे कर्म भी प्रति समय सावधान बनाते है। वे आकाश दीप(Seaich Light) की तरह उपकारक है।

कर्म दया करके विषयी को रोगी बनाते हैं। अन्यथा अधिक पाप करके पापी दुर्गति में जायँ, पतगिये के पास से दीपक उठा लेना उसपर उपकार करना है, इसी प्रकार विषयी को रोगी बना कर विषयों के अनिष्ट का भान कराने में उपकारक है। लज्जा शील चोर बेडी से शर्माता है विश्व के समस्त प्रसंग (बनाव) कर्म का साक्षात्कार बताते हैं। शरीर का मैल भी दुखदायी है तो आत्मा का कर्म मैल कितना दुखदायी हो सकता है ?

शरीर रूप बर्तन मे डाला हुआ (खाया हुआ) अन्न वात, पित्त, कफ़ हाडमांस, लोहू, पीप और मल मूत्र आदि सप्त धातु रूप

है, वैसी ही गति मिलती है। अज्ञान के योग से मांगने का (पाने का) जीव को लेश मात्र भी भान नहीं है। आत्मा की मर्जी विरुद्ध एक भी प्रवृत्ति कराने में कर्म सर्वथा असमर्थ है।

मनुष्य जिसके लिए योग्य न हो वैसा सुख या दुःख उसे मिल नहीं सकते उसकी योग्यतानुसार ही सुख या दुःख मिलते हैं। शूली या फांसी पर चढ़ने वाला, सांप के सामने खड़ा रहने वाला, शमशेर से कटने वाला, अग्नि में व पानी में मरने वाला अपनी कृति का फल पाता है। उसको बांधे हुए बीज का फल मिल रहा है।

स्वयं किए कर्म भूल जाय या कुदरत के घर में अन्धेर समझ कर चाहे जैसी प्रवृत्ति करें परन्तु कर्म (कुदरत) की बहियों में काना मात्रा का भी फर्क नहीं पड़ता। जीव स्वयं अपने किये कर्मों से ही अन्धे बहिरे, लूले गूंगे कोढ़िये आदि बने हैं। और बने रहे हैं इनको सुख के सिवाय अन्य कोई नहीं बनाता। अपने के योग्य कर्म न हो तो इन्द्र भी बाल बांका करने में समर्थ नहीं है।

कर्मों का उदय होना कर्म की पक्व दशा है और वह पूर्व सामग्री में से विकृति रूप फल उपजाते हैं। बोया हुआ बना है नया कुछ नहीं बना है न बनने वाला है। होना था सो हुआ नया कुछ नहीं हुआ है। कर्म कठोर दंड देने वाला कोई देव नहीं है कुदरत की कानून मात्र है। अच्छे काम का बदला इनाम और बुरे काम का दण्ड हम स्वयं मांग लेते हैं। अच्छे कार्य स्वयं सुखानुभव कराते हैं और बुरे कार्य दुःखानुभव।

हमारे इनाम व शिक्षाओं के उत्पादक हम खुद ही हैं। आत्मा अपनी वासना को तृप्त करने के लिये तरस रहा है। और जहाँ तक योग्य स्थान में आकर खुला वास न हो वहाँ तक खुला वासना

विश्व पर चला रहे हैं। और विश्व को उसके आधीन होना ही पडता है, जन्म मरण वन्धे हुए कर्मों को भोगने के द्वार हैं। और उसके द्वारा एक गति मे से दूसरी गति में ले जा सकते है।

मकान बांधने में जितनी मुश्किली है उतनी तोडने मे नहीं, वैसे ही कर्म बांधने में जितना कष्ट है उतना तोड़ने में नहीं। बालक माँ बाप को डरावे जिससे माँ बाप भय नहीं पाते। वैसे कर्म हमारे बालक हैं हमने उनको जन्म दिया है, ऐसे संयोगों में ज्ञानी आत्मा अपनी कर्म सन्तान से भय नहीं पावे। कर्म बांधने मे अनन्त काल गया तोडने में इतने समय की जरुरत नहीं है, क्यों कि आत्मा कर्म से अनन्त बलवान है।

कर्म वन्ध देखने में नहीं आता किन्तु विपाक (कर्म फल) अनुभव में आता है। जैसे दवाई शरीर मे क्या क्रिया करती है, यह देखने में नहीं आता परन्तु उसका परिणाम जाना जाता हैं। इन कर्मों से सब कर्म वेदनीय (फल देने वाले) हैं। अन्य कर्मों का वेदन लोक प्रसिद्ध रूप से नहीं होता. वेदनीय कर्म का फल सुख दुःख लोक प्रसिद्ध होने से वेदनीय कर्म प्रथक् गिना है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, ये चार घाती कर्म हैं। शेष चारों अघातीय हैं। घाती कर्म का सम्बन्ध आत्मिक गुणों के साथ है और अघातीय कर्मों का सम्बन्ध शरीर के साथ। घाती कर्म जितने बडे हैं उतने ही यत्न पूर्वक नाश होने वाले भी हैं। घाती कर्मों का क्षय होने के बाद अघातीय कर्मों का क्षय होता है। घाती कर्म यत्नों से नाश होते हैं। 'ज्ञान' नहीं आता हो तो परिश्रम से सीखा जा सकता है, 'दर्शनावरणीय' निद्रा आती हो तो यत्न से उड़ाई जा सकती है। 'मोहनीय' कषाय का उदय हो तो भावना से या दृढ

पलटता है। जैसे एक समय में बंधे हुए कर्म सात प्रकार में बट जाते हैं। जीव रूप मार खाऊ कर्म रूप मार मर कर चौरासी लाख जीवयोनि में अनन्त काल से परिभ्रमण करते हैं।

जितने कर्म अधिक उतनी काया संकुचित, निगोदवत। ज्यों कर्म कम होते जाते हैं, त्यों काया की संकुचितता दूर होती जाती है। जैसे—प्रत्येक स्थावर, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि। निर्बल आत्मा कर्म से पराजय पाते हैं और सबल आत्मा कर्म को पराजित करते हैं।

वर्तमान कर्म निमित्त मिलाते हैं, परन्तु वैसा करने के लिये आत्मा को प्रेरणा नहीं करते। यदि प्रेरणा करें तो आत्मा के पास आत्म सामर्थ्य ही न गिना जाय। निमित्त की सत्ता के आधीन होने वाले का पतन होता है। निमित्त के आधीन सबल आत्मा नि-मित्तों को फेंक देते हैं। और निर्बल आत्मा उसके आधीन होते हैं। एक समय का सबल कर्मों का विजय अनन्त समय का विजय है। और एक समय की हार लम्बी हार है। वड़ के बीज का वट वृक्ष होने के बाद विजय दुष्कर है। वर्तमान में तो मात्र वड़ के बीज का विजय करना है और जैसे छोटे कर्मों से हारने वाले को पुनः वड़ के साथ युद्ध के लिए तैयार होना पड़ेगा। कर्मों के निमित्तों से ज्ञानी नहीं ललचाता, मात्र अज्ञानी ललचाता है। ज्ञानी कर्म योग से तृण की तरह बहा करता है और ज्ञानी हमेशा स्थिर रहते हैं।

आश्चर्य की बात है, कि भूतकाल के कर्म वर्तमान में भोगे जाते हैं फिर भी नये कर्म बांधने में प्रमाद नहीं किया जाता। कर्म के नियमों को चाहे समझे या न समझे तथापि वे अपना शासन

की मन्दता और कषाय की तीव्रता वाले जीव को मधु प्रमेह, दाह ज्वर, पेट शुल, मस्तक शुल आदि रोग होते हैं। जिन रोगों के कारण शरीर निरोग दीखे और रोगी भयकर असह्य मरणांत वेदना और कष्ट भोगते हैं।

वर्तमान मे योग (मन, वचन और काया) के प्रति विशेष लक्ष दिया जाता है, योगों से सावद्य प्रवृत्ति न होने के लिए सावधानी रखो जाती है। परन्तु कषायों की चपलता एव तीव्रता के लिये, कषाय विरोध के लिये अत्यल्प लक्ष दिया जाता है। योग मय पाप प्रवृत्ति के लिये लक्ष दिया जाता है, इसका क्रोडांश भी कषाय जन्य पाप के लिये लक्ष देने में आवे तो समाज तथा सम्प्रदायों मे विशेष शाति मालूम हो। योगों के सवर की तरह कषायों का सवर किया जाव तो अल्प कर्म वन्ध हो, और अन्त में जीव कर्म रहित भी हो सके सब कर्मो में मोहनीय कर्म प्रधान है। कषायों के नाश से शेष सब कर्मों का नाश होता है और कर्मों का नाश से आत्मा कर्म रहित स्वस्वरूपी सिद्ध बन सकता है।

६—वेदनीय।

वेदनीय कर्म अघाती है। क्यों कि चाहे जैसी वेदना को ज्ञानी अपनी समझ कर वेदते नहीं हैं। दु ख त्रास क्लेश अपमान आदि अशाता के संयोगों में ज्ञानी शांति वेदते हैं। कर्मोदय को निर्जरा मानते हैं, खुश होते हैं, इसलिए अघाती हैं। सयोगों को सुखदायक या दु,खदायक मानना मोहनीय की सत्ता है।

भावना करने से कषायों को रोके जा सकते हैं। पुरुषार्थ से अन्त-राय कर्म का भी नाश हो सकता है। परन्तु अघाती कर्म वेदनीय आदि भोगने ही पड़ते हैं। भावना आदि से वेदनीय कर्म नष्ट नहीं होते। आयुष्य में घट बढ़ नहीं हो सकता। नामकर्म—शरीर के रूप रंग तथा स्वरूप में भी परिवर्तन नहीं हो सकता। गोत्र कर्म—नीच कुल में जन्मा हुआ उच्चकुल का नहीं गिना जा सकता। इस प्रकार घाती कर्म का नाश स्वाधीनता पूर्वक शीघ्र हो सकता है किन्तु अघाती कर्म को भोगने ही पड़ते हैं। आयुष्य कर्म की प्रकृति उसी भव में वेदाती है। शेष कर्मों की प्रकृति उसी भव में या अन्य भवों में भी वेदाती है।

योग और कषाय पर कर्म का आधार है। किसान, सुथार लो-हार, मोची दर्जी आदि कायिक श्रम करने वाला मजदूर वर्ग में योगों की अधिक चपलता होती है और उनमें योग चपलता के कारण कषायों की मन्दता होती है। जब गद्दी तकिये पर बैठकर आराम करने वाले व्यक्ति या कुर्सी टेबल पर बैठे रहने वाले वकील जज या अन्य अफसरों के योग शरीर आदि शांत स्थिर होते हैं और स्थिरता के प्रभाव से उनमें कषायों की तीव्रता होती है। ऐसे जीवों के कर्म बन्ध में कार्य भिन्नता से बन्ध भिन्नता होती है।

प्रदेश में कर्म की विशेषता होने पर अनुभाग अल्प हो सकता है, जैसे आकाश में घने बादल छा जाने पर भी मात्र थोड़े छींटे होकर रह जाय वैसे कर्म भोगने में जैसे कोढ़, जो दिखने में भयंकर है पर वह अल्प अशाता का फल देकर रह जाता है। ऐसे रोगियों के लिये योगों की अशुभ प्रवृत्ति विशेष और कषाय की मन्दता के कारण इस प्रकार के कर्म उपार्जन होते हैं। इससे विपरीत योग

की मन्दता और कषाय की तीव्रता वाले जीव को मधु प्रमेह, दाह ज्वर, पेट शुल, मस्तक शुल आदि रोग होते हैं। जिन रोगों के कारण शरीर निरोग दीखे और रोगी भयकर असह्य मरणांत वेदना और कष्ट भोगते है।

वर्तमान मे योग (मन, वचन और काया) के प्रति विशेष लक्ष दिया जाता है, योंगों से सावद्य प्रवृत्ति न होने के लिए सावधानी रखी जाती है। परन्तु कषायों की चपलता एव तीव्रता के लिये, कषाय विरोध के लिये अत्यल्प लक्ष दिया जाता है। योग मय पाप प्रवृत्ति के लिये लक्ष दिया जाता है, इसका क्रोडांश भी कषाय जन्य पाप के लिये लक्ष देने में आवे तो समाज तथा सम्प्रदायों में विशेष शाति मालूम हो। योगों के सवर की तरह कषायों का सवर किया जाव तो अल्प कर्म बन्ध हो, और अन्त में जीव कर्म रहित भी हो सके सब कर्मों में मोहनीय कर्म प्रधान है। कषायों के नाश से शेप सब कर्मों का नाश होता है और कर्मों का नाश से आत्मा कर्म रहित स्वस्वरूपी सिद्ध बन सकता है।

६–वेदनीय।

वेदनीय कर्म अघाती है। क्यों कि चाह जैसी वेदना को ज्ञानी अपनी समझ कर वेदते नहीं है। दु ख त्रास क्लेश अपमान आदि अशाता के संयोगों मे ज्ञानी शांति वेदते हैं। कर्मोदय को निर्जरा मानते हैं, खुश होते हैं, इसलिए अघाती हैं। सयोगो को सुखदायक या दु,खदायक मानना मोहनीय की सत्ता है।

वेदनीय काल में दवाई अपना असर दिखाती है, वैसे दवाई उत्पन्न होने में हुई पाप वृत्ति-मारमारि क्रिया भी अपना असर पहुँचाती है। वेदनीय काल में समझदारी आती है, अनित्यता के अच्छे २ विचार आते हैं और मोहोदय के समय सब भान भूला जाता है। वेदनीय कर्म का डंक बिच्छू जैसा है जो खुद आराम की नींद सो नहीं सकता, न दूसरे को सोने देता है। जैसे वेदनीय के उदय से स्वयं आकुल व्याकुल बनता है और दूसरों को भी घबरा देता है।

मोहनीय का डंक सर्प डसा सा है। सर्प डसा आत्मा जीव अपनी वेदना व भान भूल कर चैन की नींद लेता है। उस वक्त उसको नीम के पत्तों का कडुआपन भी मालूम नहीं होता। वैसे मोहाधीन जीव मोह में आसक्त बनकर मोह वर्धक दुःखदायी संयोगों को परम सुखधाम समझकर उसके लिए दिन रात दौड़ धूप करता है और उसके अभाव में रोता है, दुःख मानता है शोक करता है। अज्ञानियों की समस्त प्रवृत्ति वेदनीय के संयोग घटाने की और मोहनीय के संयोग बढ़ाने की होती है। वेदनीय से मोहनीय की भयंकरता अधिक है। यदि यह समझ में आवे और वेदनीय के लिए जितने प्रयत्न किये जाते हैं, उतने मोहनीय के मिटाने के लिए किये जाय तो जीव शीघ्र मोक्षगामी हो सके। वेदनीय के संयोग निर्जरा का कारण है और मोहनीय के संयोग सिर्फ बन्ध हेतु-अनन्त संसार भटकाने वाले है।

१०—मोहनीय

हिताहित का भान न होने दे वह मोहनीय, शारीरिक रोग के ऑपरेशन के लिए क्लॉरोफार्म की आवश्यक्ता है, वैसे मोहजन्य रोग दूर करने के लिए ज्ञान रूप क्लॉरॉफॉर्म की आवश्यक्ता है। घूमने से थकावट हो और थकावट से निद्रा आवे, वैसे जीवों को ८४ लाख जीवायोनियें भटकने से थकावट लगी है और जीव यहाँ अपना मान भूलकर मोहनिद्रामें नींद ले रहे हैं। मोह अग्नि मे अखिल विश्व जल रहा है। वेदनीय से मोहनीय की सत्ता अति सूक्ष्म और भयकर है। मोह की तीव्र प्रबलता के पहाड नीचे समस्त विश्व दब रहा है। उसके लिए आँख ऊँची करने भी समर्थ नहीं है। मोहनीय कर्म अनन्त संसारीत्व का पालक और रक्षक है। मानव पर मोह का सजग पहरा है जिससे वह अनादि संसार के निज स्थान को छोड नहीं सकता। मोह एक है और जीव अनन्त हैं, तदपि अनत होकर सभी में प्रविष्ट होता है और अपना साम्राज्य चलाता है। मोह परम जागृत रहता है। वह क्षणमात्र का प्रमाद नहीं करता वह गिन २ कर सबकी सम्हाल लेता है। उस (मोह) की सत्ता समस्त विश्व मे व्यापक है।

जीव स्थावर से मनुष्य पद तक पहुँचता है इस बातका मोह को खेद मालूम होता है। इसी से मनुष्यों को धक्के मार २ कर पुनः जीवको स्वस्थान-स्थावर-में ले जाने की मोह प्रेरणा करता है और अपना बल मानव के पतन के लिये खर्चता है। मोह को चिंता है कि, शायद मानव मेरा विरोध करें। इसी से तो मानवो मे विरोध की सम्यक् समझ आने के पहिले ही खान पान, मिठाई मेवा, स्त्री-पुत्र कुटुम्ब के बधन में बांध कर विषय कषाय में गुलतान बना कर सर्वथा आत्ममान भुलाता है।

वेदनीय काल में यथाद् अपना असर दिखाती है वैसे इस उत्पन्न होने में हुई पाप वृत्ति-आरंभादि क्रिया भी अपना असर पहुँचाती है। वदनीय काल में समभ्रदारी जाती है, अभिन्यता अल्प २ बिचार आते हैं और मोहोदय के समय सब भाव भू जाता है। वेदनीय कम का उदय बिच्छू जैसा है जो खुद आरा की नींद सो नहीं सकता, न दूसर को सोने देता है। वसे वेदनं क उदय से स्वयं आकुल व्याकुल बनता है और दूसरों को गमरा देता है।

मोहनीय का उदय सर्प दंश सा है। सप दंश वाला में अपनी वेदना व भान भूल कर भ्रम की नींद लता है उस वक्त उसको नीम के पत्ते का कडुआपन भी मालु नहीं होता। वसे मोहाधीन जीव मोह में आसक्त बन मोह वर्धक दुखदायी संयोगों को परम सुखधाम समभ उसके लिए दिन रात दौड़ धूप करता है और उसके भ्रम में रोता है दुःख मानता है शोक करता है। अज्ञानियों समस्त प्रवृत्ति वेदनीय क संयोग हटाने की और मोहनीय क संयं बढ़ाने की होती है। वदनीय से मोहनीय की भयंकरता अधिक यदि यह समभ्र में आए और वदनीय के लिए जितने प्रयत्न जाते हैं, उतने मोहनीय क मिटाने क लिए किये जाय तो जीव र मोक्षगामी हो सके। वदनीय के संयोग निर्जरा का कारण है। मोहनीय क संयोग सिर्फ पाप हतु अनन्त संसार भ्रमण के नाम -

अपमान कोई नहीं कर सकता। लोग अन्य कर्मों को दुश्मन रूप मानते हैं और मोह को मित्र रूप, यह आश्चर्य है ? त्यागी तपस्वी और वैरागी को भी मोह नचा सकता है। बहुरूपिया की तरह मोह विभिन्न रूप धारण करके विश्व को फसाता है। मोह विश्व का तंत्र चलाता है। मोह के अभाव में विश्व का समस्त व्यवहार नष्ट होजाय। विश्व को चलाने का-निभाने का पोषण देने का कार्य मोह का ही है। मोह ने बलात् सब जीवों में अपना डेरा जमा रखा है। महामोह का शरीर अविद्या से बना है, जिससे यह दुःखों को सुख मनाता है। मोह का अनादर कोई विरल व्यक्ति ही कर सकता है।

मोह राजा की पटरानी "महा मूढ़ता' है। सेनापति "मिथ्या दर्शन" है। महामोह ऐसा क्रोध उत्पन्न करता है जो ज्वाला मुखी को भी भुला देता है, मेरु को भी लघु दिखावे ऐसा महान् रूप उत्पन्न करता है, नागिन को भी भुलावे ऐसी माया उत्पन्न करता है, स्वयभूरमण समुद्र को बिन्दु मनावे ऐसा लोभ पैदा करता है।

मोहाधीन जीव इजा होने वाली भूमिका पर बसे हुए हैं। मोह मय प्रकृति के प्रभाव मे ससार विष के स्थानों को अमृत मय और दावानल के स्थानों को सुधामय समझता है। मोह के कारण जीव अपना जीवन अन्यों के सहारार्थ बिताते हैं और मोहके अभाव में अपना जीवन विश्व-सेवा के लिए बिताते हैं। मोहाधीनों का जीवन अनार्य जगली या पशु-जीवन से बढ़कर नहीं होता। मोह के कारण मर्म छेदी जीवन बिताया जाता है। मोह की भाफ मे अन्य कइयों का भक्षण होजाता है और अन्तमें काल के कवल होते हैं। मोहाधीन अन्यों को कुचल देता है और स्वय काल द्वारा एक साथ कुचला जाता है।

मोह मानता है कि, अग्नि और अरि का प्रारंभ से ही नाश करना चाहिए । इस लिए मानव को अगामी भव में ही मोह फंसाता है । क्योंकि, मोह भावना और धर्म भावना का अनादि वैर है । मोह के परिवार को धर्म भावना का नाश किए बिना चैन नहीं होता । तमाम परिवार का स्वभाव एकसा है । मोही जीव महामोह के १८ पापस्थान रूप मकान का अपने महल में स्वागत करता है और १८ पापों की निवृत्ति रूप धर्म राज के सन्तानों से कहता है कि, आइए, मैं आप को नहीं पहिचानता । ऐसी परिस्थिति में मोह योगी लालच देकर अनेक काम में हैरान हो ऐसे काम कराता है और अज्ञानी जीव प्रसन्नता पूर्वक पाप कार्य करता है ।

माछीमार जाने की लालच से मच्छियों को फंसाता है वैसे मोह मछीमार विषय भोगों की लालच से जीवों को नरकादिगति में फंसाता है । मोह का काम जीवों के सद्गुणों का नाश करके दुर्गुणी बनाने का है । मोह नाटक का मेनेजर है और जीव नाचने वाला नट है । सूत्रधार की आज्ञानुसार वह विविध भेष धारण करता है । वेदनीय नाम गोत्र और आयुष्य आदि कर्म का स्वभाव तो अच्छा और बुरा दोनों तरह का है, परन्तु मोह का स्वभाव अति दुष्ट है इसका दूसरा प्रकार ही नहीं है । मोह आततायी की तरह जीव पर एकाएक हमला करता है अज्ञानी जीव मोह की आज्ञा मानते हैं । मोहनीय कर्म नचाता है शेष सात कर्म बैठे बैठे नचाते हैं । मोह महा शूरवीर है । क्षण भर में विश्व को चकाचौंध कर देता है

चक्रवर्ति और इन्द्रों को भी मोह से नचाने नाचना पड़ता है । राजा या देवता एक दूसरों का अपमान करते हैं, पर मोह का

अपमान कोई नहीं कर सकता। लोग अन्य कर्मों को दुश्मन रूप मानते हैं और मोह को मित्र रूप, यह आश्चर्य है ? त्यागी तपस्वी और वैरागी को भी मोह नचा सकता है। बहुरूपिया की तरह मोह विभिन्न रूप धारण करके विश्व को फंसाता है। मोह विश्व का तंत्र चलाता है। मोह के अभाव में विश्व का समस्त व्यवहार नष्ट होजाय। विश्व को चलाने का-निभाने का पोषण देने का कार्य मोह का ही है। मोह ने बलात् सब जीवों में अपना डेरा जमा रखा है। महामोह का शरीर अविद्या से बना है, जिससे यह दुःखों को सुख मनाता है। मोह का अनादर कोई विरल व्यक्ति ही कर सकता है।

मोह राजा की पटरानी "महा मूढता" है। सेनापति "मिथ्या दर्शन" है। महामोह ऐसा क्रोध उत्पन्न करता है जो ज्वाला मुखी को भी भुला देता है, मेरु को भी लघु दिखावे ऐसा महान् रूप उत्पन्न करता है, नागिन को भी भुलावे ऐसी माया उत्पन्न करता है, स्वयभूरमण समुद्र को बिन्दु मनावें ऐसा लोभ पैदा करता है।

मोहाधीन जीव इजा होने वाली भूमिका पर बसे हुए हैं। मोह मय प्रकृति के प्रभाव मे संसार विष के स्थानों को अमृत मय और दावानल के स्थानों को सुधामय समझता है। मोह के कारण जीव अपना जीवन अन्यों के सहारार्थे विताते हैं और मोहके अभाव में अपना जीवन विश्व-सेवा के लिए विताते हैं। मोहाधीनों का जीवन अनार्य जगली या पशु-जीवन से बढकर नहीं होता। मोह के कारण मर्म छेदी जीवन विताया जाता है। मोह की भाफ में अन्य कइयों का भक्षण होजाता है और अन्तमें काल के क्वल होते हैं। मोहाधीन अन्यों को कुचल देता है और स्वय काल द्वारा एक साथ कुचला जाता है।

पशु सृष्टि निर्बलों को खाकर, कुचलकर अपना जीवन नि-भाती है वैसे ही मोह की प्रधानता के कारण मानव सृष्टि भी पशु सृष्टि तुल्य अत्याचारी बनती है। विश्व की मारामारी-कुचला कुचली भीषण प्रचण्ड क्लेश मय जीवन और कलह-मोहमय जीवन से ही उत्पन्न होती है। मोह के रंग की वासना में मानव अपने आपको फाड़ डालता है। जीवों को मोहमय जीवन और विषम वर्धक वार्तालाप के अलावा कुछ भी पसन्द नहीं आता।

कबूतर और चूहे में भी इतनी सामान्य समझ है कि, वे अपने घातक बिल्ली और कुत्ते से दोस्ती नहीं रखते। इतनी समझ भी जिसमें हो ऐसे समझदार मोह के संयोगों से सदा सावधान रहें। मदिरा सबल और निर्बल पर असर करता है, परंतु मोह मदिरा निर्बलों पर ही असर कर सकता है। अग्नि का तिनका लाखों मन रूई को जला सकता है वैसे मोह जन्य राग द्वेषाग्नि अनन्त जन्मों की पुन्याई का नाश करता है। मोह की मदोन्मत्त दशा में प्रभु पथ को पाप पथ और वीतराग वाणी को वैरी वचन मानते हैं। मोक्षार्थी जीवों को दया पात्र मानकर अपने (मोह मय) जीवन को सुभागी मानते हैं। मोह की इतनी भयंकरता होने पर भी अ-नादि परिचय के कारण वह भयंकरता भूली जाती है और विपरीत दिशा में गहन होता है। आत्मा अनन्त बल का धारक है। स्वयं जैसा बनना चाहे बन सकता है मोह की सत्ता का नाश कर सकता है। सूर्योदय होने पर अनन्त अन्धकार क्षण मात्र में नाश हो जाता है वैसे ज्ञानोदय होने पर अनन्त काल की मोह की सत्ता नष्ट हो जाती है। बिल्ली को देखकर चूहे भग जाते हैं, वैसे ही ज्ञान के आने पर मोहमय वृत्तियां भग जाती हैं और आत्मा निजानन्द का अनुभव करता है।

११–योग ।

योग शब्द का अर्थ जुड़ना या मिलना होता है। आत्मा, मन वाणी और देह के साथ मिलकर बहिर भाव को प्राप्त होता है, उस व्यापार को योग कहते है । आत्मा में कर्म-ग्रहण की शक्ति होने की स्थिति विशेष को भाव-योग कहते हैं। भाव योग के निमित्त से आत्म प्रदेश में परिस्पन्दन (चांचल्य) उत्पन्न होने को द्रव्य योग कहा जाता है।

कर्मों का आत्मा के साथ बन्ध होने में योग और कषाय निमित्त रूप हैं। बिना कषाय का योग कर्म वन्ध का हेतु हो सकता है, परन्तु जहा कषाय हो वहां योग की अनिवार्यता होती है । ससारी दशा में योग छूट नहीं सकता। पर आत्मा चाहे तो कषाय को छोड सकती है।

कषाय से स्थिति और अनुभाग बन्ध होता हैं और योग से शेखचिल्ली जैसे विषय कषाय वर्धक विचार पैदा करता है। महामोह की निद्रा में विवेक रूप चक्षु बन्द हो जाते है। निद्रा मे मानवी जीवन के सब प्रसग भूले जाते हैं, वैसे मोह निद्रा में भी पुण्य पाप, स्वर्ग नर्क बध और मोक्ष के विचार भी भूले जाते हैं।

स्त्री, पुत्र और धन का मोह नहीं होता तो मनुष्य मोक्ष दीपक का पतंग बनकर अप्रमत्त भाव से उस दिशा मे प्रयत्न करता। मोह को अविद्यामय अतिजीर्ण शरीर है तथापि वह बालक जैसा ताजी स्फूर्ति वाला है। अनन्त काल का जीर्ण होने पर भी वृद्ध नहीं है। नित्य नयी बाल्यावस्था जैसा प्रतीत होता है। मोह अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र दुःखद को सुखद अनात्म को आत्मरूप, यों विपरीत रूप अनुभव कराता है। मोह के अनादि जीर्ण देह में जवानी का जोश है।

पशु सृष्टि निर्बलों को हराकर, कुचलकर अपना जीवन नि-भाती है वैसे ही मोह की प्रधानता के कारण मानव सृष्टि भी पशु सृष्टि तुल्य अत्याचारी बनती है। विश्व की मारामारी-कुश्ती कुचली भीषण प्रचण्ड क्लेश मय जीवन और कलह-मोहमय जीवन से ही उत्पन्न होती है। मोह के वेग की वासना में मानव अपने आपको फाड़ खाता है। जीवों को मोहमय जीवन और विषय-वर्धक वार्तालाप के अलावा कुछ भी पसन्द नहीं आता।

कबूतर और चूहे में भी इतनी सामान्य समझ है कि, वे अपने घातक बिल्ली और कुत्ते से दोस्ती नहीं रखते। इतनी समझ भी जिसमें हो ऐसे समझदार मोह के संयोगों से सदा सावधान रहें। मदिरा सबल और निर्बल पर असर करता है, परंतु मोह मदिरा निर्बलों पर ही असर कर सकता है। अग्नि का तिनका लाखों मन रूई को जला सकता है वैसे मोह अन्य राग द्वेषाग्नि अनन्त जन्मों की पुन्याई का नाश करता है। मोह की मदोन्मत्त दशा में प्रभु पद का पाप पद और वीतराग वाणी को वैरी वचन मानते हैं। मोक्षार्थी जीवों को दया पात्र मानकर अपने (मोह मय) जीवन को सुभागी मानते हैं। मोह की इतनी भयंकरता होने पर भी अ-नादि परिचय के कारण वह भयंकरता भूली जाती है और विपरीत दिशा में बहाव होता है। आत्मा अनन्त बल को धारक है। स्वयं जैसा बनना चाहे बन सकता है, मोह की सत्ता का नाश कर सकता है। सूर्योदय होने पर समस्त अन्धकार क्षण मात्र में ना हो जाता है वैसे ज्ञानोदय होने पर अनन्त काल की मोह की स नष्ट हो जाती है। बिल्ली को देखकर चूहे भग जाते हैं, वैसे ज्ञान के आने पर मोहमय वृत्तियां भग जाती हैं और ए निजानन्द का अनुभव करता है।

के प्रताप से जीव वासना द्वारा विका हुआ है। मोहमय जीवन श्राप समान है। मोह द्वारा अज्ञानी जीव घास की तरह विषय कषाय अग्नि मे होमे जाते हैं।

प्रकृति और प्रदेश बंध, कषाय योगरूप श्वेत वस्त्र पर का रंग है। बिना रंग का वस्त्र हो सकता है वैसे कषाय बिना भी योग प्रवृत्ति हो सकती है। अपने सब प्रकार के योगों से कषायों का मुक्त रख कर उसे उच्च, प्रशस्त आत्माभिमुख रखना धार्मिकता का मुख्य लक्षण है। अपनी मनोवृत्ति वाणी और शरीर चेष्टा मे जितना कषाय का अंश हो उसे ढूंढ कर बहिष्कार करने में आन्तरिक जीवन की सार्थकता है। जहां सिर्फ शारीरिक जीवन बिताने का हो और आध्यात्मिक जीवन की गंध भी न हो वहां कषाय का तारतम्य सम्पूर्ण होता है।

मनुष्य में से बुद्धि, विचार, विवेक सारासार के निर्णय की शक्ति घटाने में आवे तो वह पशु तुल्य है। जहां तक आत्माभिमुख नहीं होता वहां तक उसकी बुद्धि, विचार आदि शक्तियों उसे पशु बनने में साथ देती हैं और पशु बुद्धि के अभाव में वृत्तियाँ का मर्यादा में उपयोग करता है, उन वृत्तियों को मनुष्य अपनी बुद्धि, शक्ति से बहका कर विषय कषाय के तत्त्वों को अति भयानक बनाता है। मनुष्य को जो बुद्धि प्राप्त है वह विषय-कषाय को उत्तेजित करने के लिये नहीं किंतु आत्माभिमुख होकर विषय-कषाय को नाश करने के लिए मिली है। बिना आत्माभिमुख हुए मानव पद पद पर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है।

अज्ञानवशात् आत्मा को कषाय का नाद मधुर लगता है। उसे उस रंग की चमक पर अति प्रेम है जिससे वह उसे सहज नहीं

दूसरे पाप काले मालूम होते हैं, जब कि मोह व हास्यादि पाप सफेद मालूम होते हैं जिससे उसके पाश में सज्जन भी फँसते हैं। मोह मीठा जहर है। जिसमे सब विष को अमृत मानकर जीव शौक से पीता है।

मोह के सोलह विचित्र प्रकार के तोफानी लड़के हैं, इन सोलह बालकों की शैतानियों ने मुँह लगाकर लाड़ले बनाये हैं। क्रोध, मान माया लोभ इनके चार २ भेद हैं यों सोलह बालक बने हैं। क्रोध मान का द्वेष में और माया लोभ का राग में अन्तर-भाव होता है।

यदि मोक्ष की गाड़ी का किराया दो रुपया लगता हो तो मोहाधीन जीव स्त्री पुत्र और धन के मोह से सवा रुपया उड़ाने की कोशिश करेगा। जीवों को धनादि का मोह मोक्ष से भी अधिक मूल्यवान मालूम होता है। ज्ञान शील तप और भावना आदि मोक्ष में लेजाने वाली गाड़ियाँ हैं तथापि मोहाधीन जीवों को उसमें बैठना क्यों नहीं सुहाता!

मनुष्य की कमर टूट जाय तो सब अंग नीचे झुक जाते हैं वैसे ज्ञान के दंड से मोह कर्म की कमर तोड़ दी जाय तो सब कर्मों का नीचे ढेर हो जाय। मोह की सत्ता से जीव अपने आपको पीस कर चूर्ण बनाता है बिल्कुल निर्माल्य बन जाता है, जिससे उसको आत्म भान नहीं रहता है। मकड़ी अपनी बनाई हुई जाल में फँस कर मृत्यु पाती है, वैसे जीव अपने मोह जाल में फँसकर मरता है। मोह से मनुष्य स्वयं आपको मृत्यु से भी अधिक निर्माल्य बनाता है। मोह के बनाये हुए Bomb से वह स्वयं चूर हो जाता है। मोह अग्नि में जलकर वह स्वयं राख का ढेर होजाता है। मोह

के प्रताप से जीव वासना द्वारा बिका हुआ है। मोहमय जीवन श्राप समान है। मोह द्वारा अज्ञानी जीव घास की तरह विषय कषाय अग्नि मे होमे जाते हैं।

प्रकृति और प्रदेश बंध, कषाय योगरूप श्वेत वस्त्र पर का रंग है। बिना रंग का वस्त्र हो सकता है वैसे कषाय बिना भी योग प्रवृत्ति हो सकती है। अपने सब प्रकार के योगों से कषायों को मुक्त रख कर उसे उच्च, प्रशस्त आत्माभिमुख रखना धार्मिकता का मुख्य लक्षण है। अपनी मनोवृत्ति वाणी और शरीर चेष्टा मे जितना कषाय का अंश हो उसे ढूंढ कर बहिष्कार करने मे आन्तरिक जीवन की सार्थकता है। जहां सिर्फ शारीरिक जीवन बिताने का हो और आध्यात्मिक जीवन की गंध भी न हो वहां कषाय का तारतम्य सम्पूर्ण होता है।

मनुष्य में से बुद्धि, विचार, विवेक सारासार के निर्णय की शक्ति घटाने में आवे तो वह पशु तुल्य है। जहां तक आत्माभिमुख नहीं होता वहां तक उसकी बुद्धि, विचार आदि शक्तियों उसे पशु बनने में साथ देती है और पशु बुद्धि के अभाव मे वृत्तियाँ का मर्यादा में उपयोग करता है, उन वृत्तियों को मनुष्य अपनी बुद्धि, शक्ति से बहका कर विषय कषाय के तत्वों को अति भयानक बनाता है। मनुष्य को जो बुद्धि प्राप्त है वह विषय-कषाय को उत्तेजित करने के लिये नहीं किंतु आत्माभिमुख होकर विषय-कषाय को नाश करने के लिए मिली है। बिना आत्माभिमुख हुए मानव पद पद पर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है।

अज्ञानवशात् आत्मा को कषाय का नाद मधुर लगता है। उसे उस रंग की चमक पर अति प्रेम है जिससे वह उसे सहज नहीं

छोड़ सकता। जब मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक विषय-कषाय का त्याग नहीं करता तो बलात्कार से प्रकृति छीनकर उस पर उपकार करती है। दुःख के प्रहारों से भी कुदरत विषय-कषायों को छीनकर जीव की घोर पतन से रक्षा करती है।

कर्म की गति अथवा विधि का विधान ही ऐसा है कि वह मनुष्य को परमात्म-स्वरूप में बदलना चाहती है। प्रकृति अनेक रीत्या मानव को शुभ सन्देश देती है। सदुपदेश नहीं माने तो दुःख देकर भी उसकी आँखें खोलती है। फिर भी मनुष्य न माने तो जहाँ विशेष सुख को स्थान न हो ऐसी जगह उसे भेजती है।

मन, वचन और शरीर की सर्व क्रियाओं को पवित्र, कल्याण और आत्म-विकास के मार्ग के अनुकूल बनाने में अपना पुरुषार्थ है। मन का पवित्र, निर्मल, निष्पाप अवस्था में आत्मा का प्रतिबिम्ब स्वच्छ और यथार्थ पड़ता है। शरीर का उपयोग आत्मोन्नति के लिए ही करना चाहिए। जो मन, वचन और शरीर आत्मा को बन्धन रूप हो तो उनकी प्राप्ति निरर्थक और अकल्याणकारक है वर्तमान के राक्षसी जड़वाद युग में मानवों के मन, वाणी और शरीर के योग ऐसे भयंकर, राक्षसी और जड़ बने हैं कि वर्तमान जगत की सर्व सम्पत्ति वैभव विलास और सुख के साधन नारकी के जीवों को दिया जाय तो वह लेने के लिये तैयार नहीं होवे। क्यों कि वर्तमान के विषय-विलास और शृंगार के सुख नरक के दुखों से अनन्त दुखों के भण्डार रूप है। वर्तमान के राक्षसी जड़वाद के और विज्ञान के विनाशी साधनों को विनाश के साधन मानते हैं और नारकीय दुखों को अपना विकास धाम तीर्थयात्रा मानते हैं। नारक जीव प्रति समय दुःख मुक्त हो रहे हैं। अब वर्तमान का वैज्ञानिक युग का विलासी जीव अपने मन वचन और

शरीर के योग से हर समय नरक के अनन्त दुःख के निकट जारहा है। उत्तम योगों की प्राप्ति उत्तमता के लिए मिली है, उसके दुरुपयोग से दुश्मन को भी दया उपजे ऐसे दुःखद संयोग पैदा होते हैं। अतः योगों को अप्रमत्त भाव में प्रवर्ताना ही जीवन के योगों का साफल्य है।
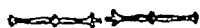
१२–मन बचन काया।

मन—

चन्द्र सूर्य में से प्रकाश, पुष्प में से सुगन्ध और अग्नि में से उष्णता भरती है। इसी प्रकार मनो द्रव्य में से नित्य प्रभा भरती है। उसको अपनी शास्त्रीय भाषा में लेश्या कहते हैं। मन के परमाणुओं का असर हजारों वर्षों तक कायम रहता है। पवित्र पुरुषों के धर्म मय मन के परमाणुओं से धर्म स्थान पवित्र मानने मे आता है। कारण कि वहाँ ऐसे परमाणु हैं। अतः मन के विचारों को सदा पवित्र रखो। वायरलेस द्वारा मन के परमाणु हजारों कोसों तक जा सकते हैं फिर मन के परमाणु तो उससे विशेष सूक्ष्म एव शीघ्र जाने वाले हैं। किसी के लिए अच्छे या बुरे विचार करने में आते हैं तो उनका असर चाहे जितनी दूर हो, हो जाती है।

मन आलमारी तुल्य है, उसमें विविध खाने (विभाग) हैं। हर एक में विविध विषय-वस्तुएँ भरी हैं। जैसे विषय भरे हैं वैसे ही निकलेंगे। मैली वस्तुओं को स्पर्श मात्र नहीं किया जाता तो मैले विचार मनमे कैसे रक्खे जायें? या भरे जायँ?

छोड़ सकता। जब मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक विषय-कषाय का त्याग नहीं करता तो बलात्कार से प्रकृति छीनकर उस पर उपकार करती है। दुःख के प्रहारों से भी कुदरत विषय-कषायों को छीनकर जीव की घोर पतन से रक्षा करती है।

कर्म की गति अथवा विधि का विधान ही ऐसा है कि वह मनुष्य को परमात्म-स्वरूप में बदलना चाहती है। प्रकृति अनेक रीत्या मानव को शुभ सन्देश देती है। सदुपदेश नहीं माने तो दुःख देकर भी उसकी आंखें खोलती है। फिर भी मनुष्य न माने तो जहां विशेष सुख को स्थान न हो ऐसी जगह उसे भेजती है।

मन, वचन और शरीर की सर्व क्रियाओं को पवित्र, उज्ज्वल और आत्म विकास के मार्ग के अनुकूल बनाने में अपना पुरुषार्थ है। मन का पवित्र, निर्मल, निष्पाप अवस्था में आत्मा का प्रतिबिम्ब स्वच्छ और यथार्थ पड़ता है। शरीर का उपयोग आत्मोन्नति के लिए ही करना चाहिए। जो मन वचन और शरीर आत्मा को बन्धन रूप हो तो उसकी प्राप्ति निरर्थक और अस्वास्थ्यकारक है वर्तमान के राक्षसी यन्त्रवाद युग में मानवों के मन, वाणी और शरीर के योग ऐसे भयंकर राक्षसी और जड़ बने हैं कि वर्तमान जगत की सर्व सम्पत्ति वैभव विलास और सुख के साधन नारकी के जीवों को दिया जाय तो वह लेने के लिये तैयार नहीं होवे। क्यों कि वर्तमान के विषय-विलास और शृंगार के सुख नरक के दुःखों से अनन्त दुःखों के भण्डार रूप हैं। वर्तमान के राक्षसी यन्त्रवाद के और विज्ञान के विलासी साधनों को विनाश के साधन मानते हैं और नारकीय दुःखों को अपना विकास धाम तीर्थयात्रा मानते हैं। नारक जीव प्रति समय दुःख मुक्त हो रहे हैं। अब वर्तमान का वैज्ञानिक युग का विलासी जीव अपने मन वचन और

श्वासोश्वास ज़हरिला है। वनस्पति का श्वासोश्वास मनुष्यों के लिए अमृत तुल्य है। शरीर में ऐसे २ पदार्थ भरे हैं कि, जिस को बाहर निकाल कर देखे जाय तो नफरत आवे। कै हो उस रास्ते से चलने का दिल नहीं होता। ऐसे देह में अज्ञानी मोहित होते हैं। देह इतना अशुचिमय है कि, किंचित् असावधानी रक्खी जाय तो कीडे पड जाय। धर्माराधना की विशेषता न हो तो उदारिक शरीर मिट्टी के ठीकरे से भी निकम्मा है।

हाड, मास, लोहू, वात, पित्त, कफ, मलमूत्र, कृमि और नशा जाल पर से चर्म का ढक्कन हटा लिया जाय तो महा भयकर और कौए कुत्ते को खाने योग्य देह दिखे। काया मलमूत्र, लोहू-पीप की बहती गटर है। अशुचि पदार्थ बहते रहें, वहां तक शरीर की कीमत है। गटरें बहती वंद हुई कि, काया मुर्दा समझी जाकर श्मशान योग्य होती है।

खेत में उकरडा-मैला खात डालने से सुन्दर फूल फलादि उत्पन्न किए जाते हैं और शरीर रूप खेत में मेवा, मिष्टान्नादि डालकर मलमूत्र उत्पन्न किया जाता है। जिस मकान में सिंह, सर्प आदि रहते हो, उस मकान में कौन रहना पसन्द करे ? कोई नहीं। शरीर रूप घर में सिंह सर्पादि से अत्यधिक भयकर सवा पांच कोड़ रोग बसते हैं। ऐसे शरीर पर कौन ममत्व रक्खे? रत्नत्रय का आराधन देह द्वारा किया जाय तो साफल्य है, वरना निरर्थक है।

पवित्र विचार वाले मानव जंगम तीर्थ स्थान हैं। वे जहाँ पैर रखते हैं, वहाँ शान्ति, प्रेम, त्याग क्षमा दया का वातावरण फैलता है और अपवित्र विचार वालों के पदार्पण हो, वहाँ अशान्ति फैलती है।

वचन—

दूसरा व्रत (सत्य) दूसरी समिति (भाषा) और दूसरी गुप्ति (वचन) की मर्यादानुसार भाषा पर संयम रखने का प्रभु का फरमान है। लिखने में कामा मात्रा, बिंदी, पद हृस्व दीर्घादि की सावधानी रक्खी जाती है वैसे वचन बोलने में भी निरर्थक शब्द या काना-मात्रादि का उच्चारण न होने का ध्यान रखना आवश्यक है। वचन प्रयोग चिंतामणी से भी अधिक मूल्यवान् है। धन की थैलियों से भी वचन की कीमत अधिक है। हृदय मापने के लिए वचन थर्मामीटर है। अतः बिना विचार के बोलना जोखम कारक है। अल्प भाषी को अल्प और बहुभाषी को बहुत पश्चाताप करना पड़ता है। प्रभु महावीर ने तो १२॥ वर्ष तक मौन रखा था।

बिना गोली के बन्दूक की आवाज निशाना का नहीं तोड़ता, वैसे ही बिना वर्तन के वचन तथा उपदेश का असर नहीं होता। अतः ऐसे वचन बोलो लिखो, विचारो-चितवो कि, दुश्मन भी अपना वैर भूल जाय। अत्यधिक बोलने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग भी उत्पन्न होते हैं अतः यथा शक्ति कम बोलना वचन का संयम रखना आवश्यक है।

काया—

चमड़ी हड्डियां मांस लोहू चर्बी के पिंड रूप काया है। धर्म साधना ही उसकी विशेषता अल्पज्ञापन है। शरीर में से निकलता

श्वासोश्वास ज़हरिला है। वनस्पति का श्वासोश्वास मनुष्यों के लिए अमृत तुल्य है। शरीर में ऐसे २ पदार्थ भरे हैं कि, जिस को बाहर निकाल कर देखे जाय तो नफरत आवे। कै हो उस रास्ते से चलने का दिल नहीं होता। ऐसे देह में अज्ञानी मोहित होते हैं। देह इतना अशुचिमय है कि, किंचित् असावधानी रक्खी जाय तो कीड़े पड़ जाय। धर्माराधना की विशेषता न हो तो उदारिक शरीर मिट्टी के ठीकरे से भी निकम्मा है।

हाड, मास, लोहू, वात, पित्त, कफ, मलमूत्र, कृमि और नशा जाल पर से चर्म का ढक्कन हटा लिया जाय तो महा भयकर और कौए कुत्ते को खाने योग्य देह दिखे। काया मलमूत्र, लोहू-पीप की बहती गटर है। अशुचि पदार्थ बहते रहें, वहां तक शरीर की कीमत है। गटरे बहती वद हुई कि, काया मुर्दा समझी जाकर श्मशान योग्य होती है।

खेत में उकरड़ा-मैला खात डाल ने से सुन्दर फूल फलादि उत्पन्न किए जाते हैं और शरीर रूप खेत में मेवा, मिष्टान्नादि डालकर मलमूत्र उत्पन्न किया जाता है। जिस मकान मे सिंह, सर्प आदि रहते हो, उस मकान में कौन रहना पसन्द करे ? कोई नहीं। शरीर रूप घर में सिंह सर्पादि से अत्यधिक भयकर सवा पांच क्रोड़ रोग वसते हैं। ऐसे शरीर पर कौन ममत्व रक्खें? रत्नत्रय का आराधन देह द्वारा किया जाय तो साफल्य है, वरना निरर्थक है।

११ विषय-कषाय।

आत्मा में विषय वासना की सड़क बनी है। उस पर विषय कषाय के घोड़े पूर्ण वेग से दौड़ते हैं। फोनोग्राफ की रेकार्ड की तरह आत्मा में विषय विकार के विचार भरे हैं जिससे संयोग मिलते ही वैसी आवाज होती है। ज्ञान के विचार भरे जाय तो वैसी आवाज निकले। रेकार्ड भरने वाला स्वयं ही है।

संसारी जीवों के मगजरूप तम्बुरे में विषय कषाय के तार लगे हैं जिसके बिना बजाये भी पवन की लहरों से वैसी ही आवाज निकलती है। मगज के तम्बूरे में से विषय कषाय के तार बदल कर ज्ञान क्रिया के तार चढ़ाये जाय तो वैसी आवाज निकलेगी?

गणित की संख्या करोड़ों अबजों की है, किन्तु एक भी संख्या या अंक लिखना नहीं आता, उसे अंक ज्ञान निष्फल है। वैसे ही विषय कषाय की एकाध वासना का विजय बाकी हो तो सर्वस्व का नाश होता है।

चार पाये और चार ईंटों में से एक भी कमी हो वहाँ तक मकान नहीं बनता वैसे आत्मा में विषय कषाय की लेश भी मात्रा हो, वहाँ तक आत्म आराधना नहीं हो सकती। मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ सकता वैसे विषय वासना का नाश हुवे बिना आत्म ज्ञान का रंग चढ़ नहीं सकता।

विषय-वासना देह है तो कषाय उसकी छाया है। "जहाँ काया वहाँ छाया" के न्याय से "जहाँ विषयों का वास वहाँ कषायों का वास है"।

पिंजरे में फँसे हुए पक्षी को पराधीन हो मांसाहारी की हद्दी मे उलझना पड़ता है, तो स्वेच्छा-पूर्वक विषय कषाय के पिंजरे मे फँसने वालों की क्या गति होगी ? कूए मे गिरने वाला कभी बच भी सकता है, परंतु विपय कषाय कूप पाताली कूश्रा है, उसमे गिरने वाला कभी बच नहीं सकता। विपय कषाय का प्रेम काले नाग को गोद मे बैठाकर दूध पिलाने तुल्य है। विपय कषाय के शरण से मरण का शरण अधिक श्रेयस्कर है।

परलोक का अविश्वासु-नास्तिक विपय-कषाय का शरण लेते हैं। विषय कषाय से विशेप जुल्मगार विश्व में कोई नहीं है। विपय कषाय मय जीवन बिताना कब्र के मुर्दे की तरह विश्व मे दुर्गंध फैलाने समान है। विषय कषाय के दुःखद कैदखाने के कैदी न बनें। विषय वासना का नाश किये बिना धर्म भावना रखना, वह दुर्गंधयुक्त सडे बर्तन में पानी भरने समान है।

विषय कषाय दिखने मे मक्खन का पिंड है, पर है चूने का पिंड। खाने वाले के आंत काट देता है। विषय कषाय के वशीभूत होने वाला स्वय अपनी कब्र खोदता है। जिसको अपना विनाश करना हो वही विषय कषाय का सेवन करें। विषय कषाय के एँजिन पीछे दुःख के डिब्बे लगे हुए हैं।

मनुष्य विषय कषाय के अलावा अन्य किसी का भी गुलाम या दास नहीं है। विषय वासना के अधीन जीव अपने लिये नरक निगोद की तैयारी करता है। विषय वासना का संयम करना महत् पुण्य है।

१३ विषय-कषाय ।

आत्मा में विषय वासना की सड़क बनी है । उस पर विषय कषाय के घोड़े पूर्ण वेग से दौड़ते हैं । फोनोग्राफ की रेकार्ड की तरह आत्मा में विषय विकार के विचार भरे हैं, जिससे उसमें निकले ही वैसी आवाज होती है । ज्ञान के विचार भरे जाय तो वैसी आवाज निकले । रेकार्ड भरने वाला स्वयं ही है ।

संसारी जीवों के मनरूप तम्बूरे में विषय कषाय के तार बंधे हैं जिसके बिना बजाये भी पवन की लहरों से वैसी ही आवाज निकलती है । मन के तम्बूरे में से विषय कषाय के तार बदलकर ज्ञान क्रिया के तार बैठाये जाय तो वैसी आवाज निकलेगी ?

गणित की संख्या करोड़ों अंकों की है, किन्तु एक भी संख्या या अंक मिलाना नहीं आता, उसे अंक ज्ञान निष्फल है । वैसे ही विषय कषाय की एकाध वासना का विजय बाकी हो तो सर्वस्व का नाश होता है ।

चार पाये और चार ईसों में से एक भी कमी हो, वहां तक पलंग नहीं बनता वैसे आत्मा में विषय कषाय की अंश भी मात्रा हो, वहां तक आत्म आराधना नहीं हो सकती । मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ सकता, वैसे विषय वासना का नाश हुये बिना आत्म ज्ञान का रंग चढ़ नहीं सकता ।

विषय वासना पेड़ है तो कषाय उसकी छाया है । "जहां काया वहां छाया" के न्याय से "जहां विषयों का वास वहां कषायों का वास है" ।

विषय कषाय की मंदता से आत्म प्रकाश बढ़ता है। शरीर के लिए अच्छे से अच्छा खुराक दिया जाता है, तो आत्मा को शत्रु भी न देवे ऐसा बुरे से बुरा विषय कषाय का खुराक क्यों दिया जाता है? शरीर की तरह आत्मा पर भी दयालु बन कर दया करें। विषय कषाय वृत्ति पिशाच वृत्ति हैं। पैर नीचे जलती विषय कषाय की लंका बुझा दो।

निर्बल पशु को अधिक मक्खियां सताती है, वैसे निर्बल आत्मा को विषय कषाय की वृत्तियां अधिक सताती है। विषय कषाय की कालिमा युक्त हृदय को श्वेत बनाये बिना श्वेत वस्त्र धारण करना मायाचार है। विषय कषाय का त्याग न हो सके तो सत्य के खातिर काले वस्त्र पहिन कर पाप से बचें। जंगली बाघ शेर से भी विषय-कषाय की क्रूरता अत्यधिक है।

अनन्त जन्म मरण का उपादान विषय कषाय है। उनके त्याग से निर्वाण की प्राप्ति होती हैं। लोहे का जंग लोहे को खाता है, वैसे विषय कषाय का जंग नित्य विषयी का नाश करता है।

विषय-कषाय-वृत्ति सज्जनों के जीवन का कलंक है।

विषम भावों में वीतरागता रख सके वही मित्र है, अन्य शत्रु है। नरक के बंध को न चाहते हो तो विषय कषाय के बंधनों को छोड़ें। अपने अन्तःकरण में नरक की ज्वाला प्रकटाने के लिए विषय कषाय रूप घृत मत होमो।

विषय कषायी वृत्तियों का वध करना ही सत्य यज्ञ है।

विषय कषाय के विचार करना, भौंरी के छाते में लकड़ी लगाना है, अपने हाथ स्वयं पीड़ा पैदा करना है। विषय कषाय

विषय कषाय युक्त मानव संसार पशु-संसार को भी लज्जित करता है। विषय-कषाय के नाश किए बिना की क्रियाएं रेतक रस्सी बटने समान है। जो पशुयोनि के निकृष्ट हैं वही विषय में रत रहता है। आश्चर्य है कि, मनुष्य के गुलाम होने में लज्जा मानने वाले विषय-कषाय के गुलाम होने से क्यों लज्जित न ही होते ? बिगाड़ करने वाले मीत्र या जानवर से भी प्रेम नहीं किया जाता, तो अनन्त काल से दुःख दावानल में रखने वाले विषय कषाय रूप विषैले तत्वों से क्यों प्रेम किया जाता है ?

इन्द्रियजन्य सुख पशु हुए बिना भोगे नहीं जाते। मनुष्य के कीचड़ से विषय कषाय का कीचड़ अनन्त मलीन है। मैले को घर में रखने से रोग फैलता है और खेत में फैंक देने से मधुर फल देने में सहायक बनता है वैसे विषय कषाय को आत्म मंदिर में रखने से आत्मा का पतन होता है और बाहर फैंकने से भव-भव का क्षय होता है। विषय-कषाय के संग से सर्प और अजगर का संग अल्प हानिप्रद है। विषय कषाय को फांसी पर लटकाओ, अन्यथा वे तुम्हें फांसी पर लटकायेगा। विषय कषाय के स्वामी मिट कर सेवक मत बनो। विषय-कषाय चेष्टाओं को कहो कि तुम्हारा हर्ष साथ हम नहीं करेंगे। स्वामी बलवान है तभी को विषय-कषाय नाच नचा सके हैं।

वीतरागता के आसन पर विषय-कषाय विराजमान होने से अपना अपमान समझकर वीतरागता लौट जाती है। शरीर से भी विषय कषाय का बंधन विशेष है। शरीर तो अनन्तवार छूट गया, परंतु विषय कषाय आज तक एक बार भी नहीं छूटा है। आत्मा की पवित्रता विषय कषाय के पर्दे पीछे छीप गई है। अपने शरीर पर अग्नि का तिनका नहीं रखा जाता तो विषय कषाय की भाव अग्नि में क्यों झूलाया जाता है ?

मे घसीट जाते हैं। जीवों को स्थावर योनि मे रख कर मोहराय का परिवार (विषय-कषाय) असख्य या अनत काल के लिए निश्चित होता है।

वर्तमान में विपय कषाय की भावना गीली मिट्टी की तरह नाखून से खोल सकते हैं। उसमे प्रमाद किया जायगा तो वह जमकर मेरू समान वज्र मय बनेगा, जिसको इन्द्र के वज्र से भी नहीं खोला जा सकेगा। वर्तमान मे विषय कषाय वड के वीज जैसा है वह वढ कर विशाल वड बन जायगा। विषय कषाय रूप चोर आत्मा के गुणों को चुराते हैं। विषय कषाय रूप दावानल आत्म लक्ष्मी का नाश करता है।

संसार कसाई खाने मे विषय कषाय रूप कसाई है। मानव रूप पशु है, स्त्री पुत्र धन रूप त्रिविध बधनों द्वारा ममत्व रूप खूंटे से बध कर कट रहे है, छेदन भेदन हो रहे हैं।

विषय कषाय रूप शिल्पकार मानवकी नारकीय प्रतिमा बना कर नरकावास में भेज रहे हैं। विषय कषाय मानो परमाधामी के दूत है। शास्त्र रूप खुर्दबिन द्वारा विषय कषाय से होने वाले नरक निगोद के दु.खों का दर्शन होता हैं। विषय कषायी जीव अपनी दया नहीं कर सकते तो दूसरों की दया क्या करेंगे? नकली रूपये को कोई नहीं रखता तो विषय कषायों को कैसे रक्खे जायँ?

मिथ्यात्व का विलास कषाय है। विषय ससार का विलास है। दिपायन ऋृषि ने दूसरों को पीडा देने का निदान किया था, परन्तु विषय-कषायी जीव स्वय पीडा पाने का निदान कर रहे है।

दिखने में और अज्ञानियों के अनुभव में चाहे कैसे ही मिष्टान्न दिखें परन्तु हैं तो हलाहल विष ही। अतः विषय कषाय की वृत्तियों को वितराग वृत्तियें बदल देना चाहिए।

भूत लगे हुए को भूत का अनुभव हो तो भूत मर जाता है वैसे ही विषय कषायी को विषय का भूत मालुम पड़े तो वह भी मर जाता है। अज्ञानियों को विषय-कषाय रूप चाम फन्द लगाता है। अज्ञान जीव रूप मच्छ विषय कषाय की जाल में फँसते हैं।

शरीर रूप सुवर्ण के टोकरे में विषय कषाय रूप विष्टा भरते शर्माना चाहिए। आरोग्य बिगाड़ने वाली वात पित्त कफ की तीन नाड़ियाँ शरीर में हैं वैसे आत्मिक आरोग्य बिगाड़ने वाले हिंसा, विषय और कषाय हैं।

एक वक्त का विषय का विजय शाश्वत विजय है। विषय कषाय का विष बिंदु ज्ञान सिंधु को विषमय बनाता है। विषय कषाय को जिताने वाला विश्व को जीत सकता है। विषय कषाय आत्म गुणों की कबड्डी बनाकर संसार वृक्ष को खाद रूप से पोषते हैं। विषय कषाय बिना अज्ञानी को चैन नहीं पड़ता। उसके वियोग में आत्मघात के लिए तैयार होता है। विषय कषायादि दुष्ट मित्र जीवों का पतन करके उसकी बधाई परमाधामी को भेजते हैं। विषय कषायी दुष्ट मित्र गुप्त रूप से शरीर में रह कर प्रेरणा करते हैं। और अपनी वासना पूर्ण न हो वहाँ तक आराम लेने नहीं देते।

गत अनन्त भवों में विषय कषाय का विजय करके मानव भव प्राप्त किया, उसका वैर लेने इस भव में जीव के पतन के लिए वे यत्न करते हैं। बार २ धक्का लगाकर सूक्ष्मस्थान स्थावर जीवयोनि

पागल कुत्ते को कोई नहीं बचा सकता तो पांच इद्रिया और समस्त अंगोपांग से जो पागल बना है, ऐसे विषयी की कौन रक्षा कर सके ? रत्नत्रय को छोड़कर हिंसा विषय कषाय का शरण न ले। खरगोश जैसा पशु सैकडों निशाने बाजों में से छटक जाता है तो अनन्त शक्तिशाली आत्मा विषय कषाय का शिकार क्यों बन सके ? विषय कषाय अशुचि का पिंड है। मल-मूत्र के त्याग मे प्रमाद नहीं किया जाता तो फिर विषय कषाय के अनन्त अशुचि-मय-पिंड के त्याग मे प्रमाद क्यों किया जाय ? कुशाग्र जितना विष देह का नाश करता है वैसे विषय कषाय अनन्त भवों के पुण्य का नाश करता है। परमाधामी देव नारकी जीवों को हर समय हलके, (निर्जरा कराकर) बनाते हैं, परतु विषय कषाय रूप परमाधामी देव समय समय पर जीवों को भारी बनाते हैं। अतः निरन्तर सावधानी की आवश्यकता है।

मनुष्य भव में विषय कषाय का सेवन करना सोने के थाल में विषमय विष्ठा खोमने जैसा है। विष भक्षण, अग्नि प्रवेश, पर्वत पतन सर्प संग आदि से भी विषय कषाय का संसर्ग अनन्त दुःख दायी है।

कैदी अपने पास चाकू, छुरी या सुई भी नहीं रख सकता न सरकार भी रखने देती है, तो विषय रूप विषैले शस्त्र रखने में कितना जोखम है और रखने वाले को कितना नुकसान होगा? देह रूप गुफा में विषय कषाय रहते हैं और स्वच्छंदता से बाहर निकल कर अपना स्वभाव प्रदर्शित करते हैं। विष न बेचा जाता न खाया जाता, न पास रखा जाता न किसी को दिया जाता, तो उस से अत्यधिक भयंकर विष, विषय-कषाय का व्यापार कैसे हो सके। आश्चर्य है कि आयुष्य घटता है पर विषय-कषाय की मात्रा बढ़ती है। विषय-कषाय पिशाच है, इसका संग करने वाला भी पिशाच बनता है। विष की अल्प मात्रा (औषध) रूप अमृत का काम करती है, वैसे ही विषय-कषाय की अल्प वासना के लिए मात्रा सम परम सुखदायी होती है। व्यवहार से दारू मांस अभक्ष्य है और भावसे विषय-कषाय अभक्ष्य है। आर्य को मांसाहार का स्वप्न भी नहीं आता वैसे विषय-कषाय का स्वप्न भी नहीं आना चाहिए।

विषय-कषायी का जीवन सातवीं नरक के असित नैरिये से भी अधिक दया पात्र है। अतः विषय-कषायों में आत्म-गुणों की होली न करें। कोई शस्त्र से अपने अंगोपांग नहीं काटता, फिर विषय कषाय रूप शस्त्रों से अनन्त काल के लिए अपने अंगोपांग क्यों काटे जायें? विषय-कषाय नरक-निगोद में खिचने वाली रस्सियां हैं। विविध प्रकार की फांसियां हैं।

मनुष्य को अपने पूर्व-पशु-जीवन की कषाय-प्रकृति याद आती है, जिससे कषाय-प्रवृत्ति से पशुता प्रकट करता है, और मानव प्रकृति से विरुद्ध-पशु प्रकृति -के अनुकूल कषाय का आविष्कार करता है। क्रोध के लिए मनुष्य के पास सींग, नाखून जहरीले दांत, दाढ डक या विष न होने से मनुष्य विष-मय पदार्थ, विष-मय शब्द तथा तलवार, भाला, बर्छी, तोप, बन्दूक, मशीन-गन और गैस आदि बनाकर क्रोध वृद्धि के साधन बनाते जाते हैं।

मान-कषाय पोषने के लिए यह धनवान, यह निर्धन, यह मूर्ख, यह चतुर आदि शब्द जाल रच कर तथा मान-पोषक साधन, गाडी घोडा मोटर हवाईजहाज, बाग-बगीचे बगले हवेलियां और विविध प्रकार के वस्त्र, पात्र और आभूषणो का आविष्कार किया है और नित्य नये साधन बढाते जा रहे हैं।

माया—अपने अपराध छिपाने के लिये वकील, बैरिस्टर, जज कचहरी आदि का शरण लिया जाता है और सत्य को असत्य और असत्य को सत्य बनाने वाले वकील बैरिस्टरों की सख्या बढ रही है।

लोभ को बढाने के लिए अनेक पाप-मय धन्धे, व्यौपार, नौकरी दलाली, शराफो, बैंक बीमा कम्पनी आदि साधन बढ़ रहे हैं। उक्त रीत्या कषायों को पुष्टकर मनुष्य अर्धपशु बनता है और मृत्यु के बाद पूर्ण पशु बनता है।

कषाय के पाप मे से वीतरागी मुनि का भेष धारण करने वाले भी नहीं बच पाये।

त्यागी—वर्ग ने भी अपनी कषाय-वृत्ति को पुष्ट करने के लिए अपने भेष में शोभे ऐसी विविध शोध की हैं। कषायों के त्याग से पशु में से मानव क्रमशः समदृष्टि, श्रावक और साधु होते हैं। जहां तक कषाय हैं, वहां तक मनुष्यत्व समदृष्टि श्रावक और साधु पद के लिए कलक है। इसी लिए शास्त्रकारों ने कषाय नही करने का बार बार आदेश दिया है।

१४—कषाय।

पशुओं में कषाय-वृत्ति स्वाभाविक है। साधन भी वैसे ही हैं। वृक्षों में कांटे, अग्नि में उष्णता, गाय भैंसों को सींग, पक्षियों को तीक्ष्ण चोंच, बिच्छू को डंक, सांप में विष, सिंह, बाघ, रीछ आदि निशाचरों को मांसल दांत और दाढ़ तथा उनकी भयंकर शारीरिक आकृति, सांप में क्रोध, सिंह, बाघ आदि में क्रूरता, लोमड़ी में लुच्चाई, कुत्ते में ईर्षा, मोर में मान, पशुओं में माया प्रतीत होते हैं, ऐसी वृत्ति उनमें होना आवश्यक है। जो कुत्ते में द्वेष और ईर्षा नहीं होती तो उसके पास का कुत्ता या अन्य पशु उसे रोटी के टुकड़े न खाने देते और उसे भूखे मरना पड़े। गाय, भैंसों को सींग न हों तो वे अन्य पशुओं से अपनी रक्षा कैसे कर सकें? सांप के काटने का भय न हो तो उसको हरकोई सतावे। पशु-संसार की आकृति में और स्वभाव में ही कषाय प्रतीत होता है परन्तु मनुष्य अनन्त पुण्यशील होने से जन्म के साथ ही सुख के साधन एवं पोषण पाता है तथा जन्मते ही उसके रक्षक माता पिता होते हैं। जब कि पशुओं के पास अपनी रक्षा के लिये कषाय या सींग आदि के अलावा अन्य साधन नहीं होता। मनुष्य चाहे जैसे क्रोधी को भी अपनी मीठी वाणी द्वारा शांत कर सकता है समझा सकता है। मनुष्य की आकृति में, शांति, क्षमा, धैर्य गंभीरता आदि गुण प्रकाशमान् हैं। पशु जैसी क्रूरता और भयंकरता मनुष्य के चेहरे पर न होना चाहिये। मानव-देह पर पशु जैसे सींग शोभा नहीं देते। वैसे ही पशु सी कषायवृत्ति भी नहीं शोभा देती। कषाय करने वाला, मनुष्य मिटकर पशु होता है। कषाय करने वाले मनुष्य पर पशु जैसे सींग चाहिये जिससे वह कषाय करने योग्य माना जा सके।

मनुष्य को अपने पूर्व-पशु-जीवन की कषाय-प्रकृति याद आती है, जिससे कषाय-प्रवृत्ति से पशुता प्रकट करता है, और मानव प्रकृति से विरुद्ध-पशु प्रकृति के अनुकूल कषाय का आविष्कार करता है। क्रोध के लिए मनुष्य के पास सींग, नाखून जहरीले दांत, दाढ डंक या विष न होने से मनुष्य विष-मय पदार्थ, विष-मय शब्द तथा तलवार, भाला, बर्छी, तोप, बन्दूक, मशीन-गन और गैस आदि बनाकर क्रोध वृद्धि के साधन बनाते जाते हैं।

मान-कषाय पोषने के लिए यह धनवान, यह निर्धन, यह मूर्ख, यह चतुर आदि शब्द जाल रच कर तथा मान-पोषक साधन, गाडी घोडा मोटर हवाईजहाज, बाग-बगीचे बंगले हवेलियां और विविध प्रकार के वस्त्र, पात्र और आभूषणों का आविष्कार किया है और नित्य नये साधन बढाते जा रहे हैं।

माया—अपने अपराध छिपाने के लिये वकील, बैरिस्टर, जज कचहरी आदि का शरण लिया जाता है और सत्य को असत्य और असत्य को सत्य बनाने वाले वकील बैरिस्टरों की संख्या बढ रही है।

लोभ को बढाने के लिए अनेक पाप-मय धन्धे, व्यौपार, नौकरी दलाली, शराफी, बैंक बीमा कम्पनी आदि साधन बढ़ रहे हैं। उक्त रीत्या कषायों को पुष्टकर मनुष्य अर्धपशु बनता है और मृत्यु के बाद पूर्ण पशु बनता है।

कषाय के पाप में से वीतरागी मुनि का भेष धारण करने वाले भी नहीं बच पाये।

त्यागी—वर्ग ने भी अपनी कषाय-वृत्ति को पुष्ट करने के लिए अपने भेष में शोभे ऐसी विविध शोध की हैं। कषायों के त्याग से पशु में से मानव क्रमशः समदृष्टि, श्रावक और साधु होते हैं। जहां तक कषाय हैं, वहां तक मनुष्यत्व समदृष्टि श्रावक और साधु पद के लिए कलंक है। इसी लिए शास्त्रकारों ने कषाय नहीं करने का बार बार आदेश दिया है।

१५—चार कषाय रूप सर्प ।

क्रोध रूप सर्प की आँखें मध्यान्ह के सूर्य जैसी लाल होती है। जीभ बिजली के चमत्कार जैसी चंचल होती है भयंकर विष से भरी दाढ़ें होती हैं, उल्कापात के अग्नि जैसी भयंकर प्रकृति होती है। जिसको क्रोध-सर्प काटता है वह कार्य अकार्य हिता हित का विचार नहीं कर सकता है।

मान रूपी सर्प मेरु शिखर से भी माना है। इसे आठ मद रूपी आठ फणा हैं। जिसको मान रूपी सर्प काटता है वह गुरु ज्ञानी की भी शर्म नहीं रखता महात्माओं के वचनों का भी अनादर करता है।

माया-नागिन दिखने में बड़ी सुन्दर है। वह आत्मा की तह में पहुँचकर अपना विष फैलाती है। इस सर्पिणी ने बड़े२ सर्पोंसे भी अधिक विष संचय कर रक्खा है। उसका विष सविशेष भयंकर है। यह नागिन गुप्तरूप से आक्रमण करके अपना विष फैलाती है।

लोभ-सर्प जिसको काटता है, उसका पेट विष के कारण फूल कर समुद्र जितना बड़ा बन जाता है। उसमें चाहे कितनी ही चीजें भरो, पेट नहीं भरता। सब दुःखों का राजमार्ग यही सर्प है। वह नित्य अपना शरीर बढ़ाता जाता है।

चार कषाय रूप चार सर्प समस्त विश्व को सदा तप्त गर्मा गर्म रखते हैं। ये चार सर्प जिसे काटते हैं उसे कोई बचाने में समर्थ नहीं है। शान्त दयालु पुरुष चार सर्पों के साथ रमत रमना पसन्द नहीं करते। परन्तु अज्ञानियों को इन सर्पों से खेलने का शौक होता है। फलतः ये सर्प अज्ञानियों का भक्षण करते हैं। चार सर्पों को पकड़कर ज्ञान के करंडिये में डाल दिये जाय तो वे बाहर निकलने न पावें और कड़ी दृष्टि रखने से रक्षा हो सकती है। तभी शाश्वत अनन्त सुख प्राप्त हो सकता है।

१९–क्रोध–क्षमा ।

क्रोध करके बालक को भयभीत करने से बालक की मृत्यु भी हो सकती है, ऐसा डॉक्टर एव विज्ञानियों का मत है । क्रोध करने वाले के थूक को चांटने वाला भी मृत्यु को प्राप्त कर सकता है, ऐसी अमेरिकन डॉक्टरों की मान्यता है । क्रोधी को वाई तथा हिस्ट्रिया का रोग भी लग जाता है ।

जीवन में एक बार विष खाने वाला या अग्नि मे गिरने वाला मृत्यु को प्राप्त करे तो नित्य ही अनेक बार क्रोध रूप विष का भक्षण करने वाला तथा क्रोध रूए अग्नि में पड़ने वाले की कितनी दुर्गति हो सकती है ?

चाहे जैसे सयोगों मे भी अग्नि मे गिरना कोई पसन्द नही करता, उसी प्रकार चाहे जैसे सयोगों में भी क्रोध रूपी अग्नि मे नहीं गिरना चाहिए ।

अग्नि मे पड़ने से शरीर की हानि होती है । किन्तु क्रोध से तो आत्मा को अनन्त गुणी हानि होती है । कारण कि, द्रव्य अग्नि से क्रोध की भाव अग्नि अनन्तगुणी भयंकर है ।

क्षमा मय मरण उत्तम है, किन्तु क्रोध मय सागरोपम का स्वर्ग जीवन भी नारकीय जीवन से अधम है । क्रोधी को उत्तर देना वह अग्नि में घी होमने के समान है । जब छाछ तथा दूध का एक भी बून्द व्यर्थ नहीं फेंका जाता तो मोती से भी महँगे वचन क्रोधाग्नि में किस लिए होमे जायें ?

क्रोध करना यह विषैली वृत्ति है । यहवृत्ति अपने गर्व को तृप्त करने का साधन है । क्रोध में नामर्दी है । क्षमा में पुरुषार्थ है । क्रोध वाचाल का शस्त्र है । क्षमा वीर का शस्त्र है । क्षमा की प्रेम ज्वाला के समक्ष कठोर मे कठोर पत्थर-दिल भी पिघल जाता है ।

क्रोधी के सामने क्रोध मय उत्तर देना दुर्बलता और हिंसक वृत्ति है। किसी में अधिक क्रोध देखकर घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि जिसमें जितना अधिक क्रोध है वह उतना ही अधिक क्षमा रखने का विशेष अवसर देता है।

क्रोधी का क्रोध या उसके अन्य दुर्गुण उसको क्रोधमय हित-शिक्षा देने से दूर नहीं होते किन्तु उससे क्षमा विनय एवं सज्जनता पूर्ण व्यवहार रखकर तुम उसे सुधार सकते हो। विशेष क्रोधी का तुम्हें विशेष उपकार मानना चाहिए। क्योंकि वह क्षमा के लिए अधिक अवसर देता है। वह तुम्हारा परीक्षक है तुम उसके विद्यार्थी हो। परीक्षा के समय कठिन प्रश्न उपस्थित होने पर जैसे विद्यार्थी घबराता नहीं है और क्रोध करता है, किन्तु शांति से उत्तर देता है। उसी प्रकार तुमको भी क्षमा की परीक्षा के समय शांति रखना चाहिये।

क्रोधी रोगी है। उसकी सम्हाल रखनी चाहिए। तथा उसे दवा देना चाहिए। उससे शांतिमय बर्ताव करना यह तो सम्भाल रखने के समान है और उस पर क्षमा भाव रखना वह दवा देने के समान है।

क्रोध करके तुम तुम्हारे आत्मा की हानि क्यों करते हो? क्रोध रूप राक्षस की रक्षा करने के लिए क्षमा रूप दैवी गुण का नाश किस लिये करते हो? कृत्रिम वस्तु के लिये क्रोध करके अपने शाश्वत आत्म गुण का नाश क्यों करना चाहिये? कारीसिद्ध का विजय करने की अपेक्षा क्रोध पर विजय करना विशेष मूल्यवान है।

संसार में "मित्ती मे सव्व भूएसु" सभी प्राणियों को मित्र मानने वाला किस पर क्रोध करे? जब अपने दांतों तले जीभ आ जाती है और पीड़ा हो जाती है तब दांत उखाड़े नहीं जाते

और ऐसा विचार भी करने मे नहीं आता। उसी प्रकार जब समस्त ससार को दात के समान (मित्र) माना गया तो किस पर क्रोध किया जा सकता है ?

जब जाडे से बुखार आता है तो रजाई मे जैसे मुँह ढँक कर सो जाते हैं उसी प्रकार जब क्रोध रूपी बुखार चढे तब भी रजाई मे मुँह ढँक कर सो जाना चाहिए। कारण कि यह बुखार तो महा दावानल उत्पन्न करने वाला विषैला आत्मघातक प्राणघातक बुखार है। क्रोध रूपी बुखार से स्वयं भस्म हो जाते है, किन्तु चेप लगाकर पास मे खडे हुए निर्दोष स्नेही को भी भस्म करता है। जैसे बुखार उतर जाता है तब ही शय्या का त्याग किया जाता है, उसी प्रकार क्रोध रूपी बुखार उतरे उसी समय ससार को मनुष्य के समान बनकर मुँह बताने योग्य होते है। नहीं तो रजाई मे मुँह डाल कर पडे रहना चाहिए, जिस से कि यह चेपी रोग अन्य को न लगे। प्लेग का चेपी रोग तो स्थूल है। उसकी अपेक्षा क्रोध का प्लेगी चेप अधिक सूक्ष्म है इसको असर क्षण मात्र में होती है। अतः मानव समाज की दया पालने के लिए रजाई मे मुँह ढँक कर या एकात वन में जाकर के बैठ जाना चाहिए, जिस से कि कुटुम्बी जनों की एव स्नेहियों की रक्षा हो सके।

जिस बात मे सार नहीं होता वह सुनने लायक नहीं होती, उसी प्रकार जिस मुखाकृति से क्षमा एव शाति न टपकती हो वह ससार को मुख बतलाने योग्य नहीं रहता। तुम्हारे वचन से सामने वाले को आनन्द न हो तो ऐसे लजाने वाले शब्दों से भरे हुए मुख को काला क्यों न किया जाय ? जिस से ससार भी ऐसे चेपी रोग से चेते और मायाचार से बचे। अग्नि अगर अपनी विकरालता बतलाने में कपट करे तो संसार का नाश हो जाय। अग्नि की

स्पष्ट नीति में शान्ति रहती है। इसीप्रकार तुम भी तुम्हारी क्रोधाग्नि से संसार में शान्ति रखो। जिसके जीवन में क्षमा एवं शांति के सद्गुण विराजे हुए हैं वह सर्व गुण मय मानो स्वरूप आराध्य है। कोई अपने शरीर की सवारी बनाकर उस पर चंडाल को बैठने नहीं देता तो फिर महा चंडाल क्रोध को अपने ऊपर सवारी क्यों करने दी जाय और जिस प्रकार हाथी अपने ऊपर रखे हुए हैं उस (अम्बारी) से अपनी शोभा मानता है इसी प्रकार अज्ञानी महा चंडाल क्रोध से अपनी शोभा में वृद्धि क्या मानता है और उसकी खुशामद करके उसको आमन्त्रण देकर अपने पर सवारी कराके अपने आपको कृतार्थ मानता है। क्रोध करना यह अपनी नास्तिकता का परिचय कराने के समान है। आस्तिक प्राणी तो प्राणों का लोभ छोड़ कर भी क्षमा की रक्षा करता है। क्षमा युक्त एवं शान्ति मय वचन बोलना यह हीरे और मोती की प्रभावना करने की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान है।

अग्नि की गोद में तीक्ष्ण कांटा भी राख हो जाता उसी प्रकार कषायी जीव भी क्षमाधाम के पास मुलायम रेशम बनता है। क्रोध राक्षसी प्रकृति है। क्षमा यह दैवी प्रकृति है। अग्नि कदाचित् किसी वस्तु को जलावे किन्तु क्रोध का एक बार बुलाओगे तो वह छुरी के समान मार २ जायेगा। तुम्हारे शरीर को क्रोध के दावानल में से निकाल कर क्षमा के शीतल सरोवर में रखो। कारण कि क्रोध के साथ ही साथ ईर्षा द्वेष अभिमान अनुदारता निर्दयता कठोरता हठीला स्वभाव आदि अनेक दुर्गुणों का हमला होता है।

क्षमा—

क्षमा मे ही सच्ची वीरता का समावेश होता है। यही सत्य दान है। अन्यदान तो पुद्गल के दान हैं किन्तु क्षमा सर्वोपरि आत्म शक्ति का दान है। पशु का धर्म हिंसा करने का है और मनुष्य का धर्म अहिंसा करने का इसी प्रकार पशु का स्वभाव क्रोध करने का और मनुष्य का स्वभाव क्षमा करने का है। क्षमा याचक आत्म-कल्याण का परम इच्छुक है और वह क्षमा के लिए अपना सर्वस्व बलि-दान कर देता है और क्षमा-धर्म की रक्षा करता है। सच्चा क्षमा वान अपने निमित्त किसी को भी क्रोध न करना पड़े इसकी पूरी सावधानी रखता है। क्षमा के कितने ही अवसर गँवाये, अत यह विचार कर अपनी योग्यता का विचार करो। क्रोधी के क्रोध मय वचन शांत भाव से सहन करना यह परम-सेवा है। क्षमा भाव रखना यह साधुता का लक्षण है। क्षमा रखना शत्रु से वैर लेने का उत्तमोत्तम उपाय है।

क्षमावान सच्चा भाग्य शाली है। क्षमा के प्रकाश से उस का हृदय प्रकाशित होता है। क्षमा हाथ मे की तलवार है और क्रोध हाथ में से छूटी तलवार है। क्षमा के अभाव मे विवेक और ज्ञान का भी अभाव होता है। पानी के पास अग्नि का जोर नहीं चलता, वैसे क्षमावान् के पास क्रोधी का जोर नहीं चलता है। वह तो उसे अपने जैसा बनाने के लिये भाग्यशाली बनता है।

१७—मान-विनय

मान—

मान मद आठ फणा वाला सर्प है। आठ प्रकार के मद ये इसके फणा हैं। अविवेक और द्वेष से मान का जन्म होता है। मान की माता अविवेकता और बाप द्वेष गजेन्द्र है।

जीव मान की मित्रता में इतना जकड़ जाता है कि उसकी दुर्जनता को भूल कर उसको परम-स्नेही सज्जन के समान मानने में आता है। मान की मित्रता से अयोग्य आत्मा अपने आप को योग्य एवं मूर्ख अपने आपको विद्वान् मानता है। मान मित्र के सहयोग से मनुष्य अपनी दृष्टि ऊँची रखता है। मान-मित्र का त्याग करने की सलाह देने वाले सज्जन को वैरी मानता है। मानी के लिए मानव-भव ठीक उसी प्रकार है जैसे कौवे की गरदन में चिन्तामणि रत्न बाँधना।

मान मीठा विष है अपमान कटु विष है कटुक विष की अपेक्षा मधुर विष विशेष भयंकर है। शास्त्र पाठ त्याग ने वाला भी मान के दलदल में फँस जाता है। मनुष्य का अपमान उसी समय होता है जब वह अपना परम पद-परमात्म पद त्याग कर अपमान पाने के लिए तैयारी करता है। ऐसे साधन अपने पास उत्पन्न करता है।

अहंकारी का आदर कोई नहीं करता है। अपने में दान, शील तप भाव आदि गुण हैं ऐसा भान होना भी अहंकार है। जैसे निरोगी को स्वशरीर का भार अनुभव में नहीं आता उसी प्रकार सद्गुणी, नम्र को भी अपने सद्गुणों का मान नहीं रहता।

दूसरे का अपमान करना यह अपना अपमान करने के समान है। सूर्य के सामने धूल फेंकने के समान है। मान अपमान के मात्र दो ही शब्दों में म्लान होना इससे विशेष अन्य गुलामी क्या होसकती है? अपमान धिक्कार ने योग्य है। इससे विशेष अपमान को अपमान मानने वाला धिक्कार के योग्य है।

मान से बडप्पन एवं ईर्षा रूप पिशाचिनी उत्पन्न होती है। अग्नि से काष्ट का नाश होता है, इसी प्रकार मान से आत्म गुण का नाश होता है। मानी अपनी एक आँख फोड़ कर दूसरे की दोनों आँखें फोडने जैसी प्रवृत्ति करता हुआ अनुभव मे आता है अवलोकन करने से आत्म ज्ञान रहित मनुष्य की प्रवृत्ति बाग बगीचा, हाट, हवेली, गाडी, घोडा, मोटर, आभूषण विशाल प्रासाद जीमण, प्रभावना, दान आदि तमाम शुभ एव अशुभ प्रवृत्तियों में मान के परमाणु अनुभव करने मे आते हैं

विनय—

विनय शील सदा शांति भोगता है। मानी के अन्तः करण मे सदा ईर्षा और क्रोधादि कषाय अग्निवत् सिलगते रहते हैं विनयी को सब सयोगों मे विजय प्राप्त होती है विनयी मान के सयोगों से दुःख मानता है, एव लघुता मे ही अपनी प्रगति करता है

सज्जन में विनय हो तब दुर्जन में मान की मात्रा होती है सज्जन तथा दुर्जन की परीक्षा नम्रता तथा अहंता से हो सकती है। नम्रता की छाया सहनशीलता है, अहता की छाया कषाय है।

जहाँ नम्रता है वहीं अहिंसा है। जहाँ मान है वहाँ हिंसा है। नम्र को अपनी नम्रता का मान नहीं होता। मैं तुच्छ हूँ ऐसा भाव होने से ही नम्रता का नाश होता है। नम्रता अर्थात् आत्यन्तिक अहंभाव का अभाव। नम्र अपने को रजकण से भी तुच्छ मानता है। अपने पने का नाश ही नम्रता सज्जन की विभूति है। उद्दंडता दुर्जन की विभूति है। सज्जन नम्र विनयी होता है तभी विश्व उसके चरणों पर पड़ता है। विनय और नम्रता सद्गुण रूप तथा उद्दंडता एवं अविनय दोष रूप समझा जावें तो भी अनेक पापों से बचा जा सकता है। अहंपद में अविनय एवं उच्छृंखलता है। विनय रूप समुद्र को सब गुण रूप नदियाँ बहती हैं और अविनय के समुद्र में सर्व क्रोध रूप नदियाँ एकत्र होती है।

१८—माया

माया विचारती है कि मोहराजा की सेना में सभी पुरुष हैं। किन्तु मैं ही मात्र अबला हूँ। तो भी तमाम मोहराजा की संतानों में मैं मेरे क्रोधादि भाइयों की अपेक्षा कपट रूप अधिक बलवान् हूँ। मेरे जैसी शक्ति मेरे किसी भी भाई में नहीं है। समभाव और सरल-स्वभाव ये दोनों मेरे अनादि वैरी हैं। इनका नाश किये बिना मुझे लेशमात्र भी चैन नहीं पड़ती। मात्र इनके नाश के लिए यह रात दिन प्रयत्न करती है।

सीधी लकड़ी मंदिर की चोटी पर ध्वजा दंड रूप में शोभा देती है। और टेढ़ी लकड़ी जलाने के काम में आती है। इसी प्रकार प्रकृति की सरलता दोनों लोकों में सुख देती है। वक्रता-माया कपट से दोनों लोकों में दुःख मिलता है तथा दूसरों को भी साथ में दुःख मिलता है।

क्रोधी के सामने क्रोध, मानी के प्रति मान मायावी के प्रति कपट करना यह विश्व में दुष्टता की अधिकता करने के समान है। किन्तु क्रोधी के प्रति क्षमा मानी के प्रति विनय कपटी के प्रति सरलता रखना ही विश्व मे सज्जनता का वढाना है। कपटी मनुष्य की गति, स्वर, बोली, रीति नीति, निद्रा, संस्थान और संघयण आदि पशु को शोभे ऐसे होते हैं और मरने के पीछे वे पूर्ण पशुता को प्राप्त करते हैं।

लोभ—

११ वां गुण स्थान वाले को क्रोध मान, माया आदि गिराने मे, अस्थिर करने में समर्थ नहीं है। किन्तु उसको ऋद्धि सिद्धि उत्पन्न होने से मुझे ये प्राप्त हैं ऐसी लोभ-प्रवृत्ति होने से पतन होता है। साधारण लोभ वृत्ति ११ वें गुणस्थान वाले को पतित कर देती है तो फिर दूसरे ससारियों की तो क्या दशा होगी? लोभ—वृत्ति क्षय कर दी होती तो मोक्ष होता, किन्तु उस वृत्ति को उपशांत रखने से पतन होता है।

लोभ और कंजूसाई से शरीर के स्नायु तथा खून वध जाता है। और वह स्वतंत्र रीति से वेग पूर्वक नहीं वह सकता। तुम्हारे शरीर के व मन के भी तुम स्वामी नहीं हो तो अन्य किसके स्वामी वनने की इच्छा करते हो ? लोभ धन कमाने के सिवाय और कोई सलाह नहीं देता और वह नीति न्याय तथा सन्तोप का त्याग करने को वारम्बार प्रेरणा करता है। लोभी को धन में ही विश्व का तत्व-धर्म परमात्म पद और मोक्ष का अनुभव होता है। लोभी धन प्राप्ति मे ही अपने जीवन की सफलता मानता है। शास्त्रकारों ने लोभ को सागर तथा आकाश की उपमा दी हुई है। सन्तोप ही इस जन्म मे तथा परलोक में परम सुखदायी हैं।

११—लोभ

ग्यारहवें गुण स्थानवर्ती आत्मा को क्रोध मान माया गिराने समर्थ नहीं है परन्तु उसे रिद्धि सिद्धि उत्पन्न होने से मुझे यह उत्पन्न हुआ है ' इस प्रकार की लोभ वृत्ति होने से उसका पतन होता है। साधारण लोभ वृत्ति ११ वें गुण स्थान वाले को गिराती है तो अन्य की क्या दशा।

लोभ की वृत्ति क्षय की होती तो जीव का मोक्ष हो जाता। उस वृत्ति को पर्यन्त रखती होने से जीवों का गहरा पतन होता है।

लोभ और कृपणता से शरीर के स्नायु और लोहू बंध हो जाता है और वेग पूर्वक बह नहीं सकता। जो अपने शरीर और मन के स्वामी नहीं हैं वे अन्य किसके स्वामी हो सकते हैं? लोभ धन कमाने के अलावा दूसरी सलाह नहीं दे सकता और वह न्याय नीति तथा सन्तोष का त्याग करने की प्रेरणा बारंबार करता है। लोभी को विश्व का सार धर्म परमात्मपद और मोक्ष धन में ही प्रतीत होता है। शास्त्रकारों ने लोभ को महासागर एवं आकाश की उपमा दी है। लोभ का त्याग अर्थात् सन्तोष ही इस भव में और परभव में परम सुख का निधान है।

२०—आत्म संयम

आत्म ज्ञान, आत्म दर्शन और आत्म चारित्र द्वारा सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होती है। आत्म विजय ही महान् विजय है। आत्म विजय ही सत्य विजय है। बिना आत्म विजय के क्षुद्रातिक्षुद्र गुलाम है। अपने हृदय के बागी प्रदेश पर विजय प्राप्त करें। इन्द्रियाँ और विषय वासना पर राज्य करे वही महाराजाधिराज है। अपने मन पर सत्ता चलाने वाला बडा सत्ताधीश है। अपने आंतर्सां-म्राज्य पर राज्य स्थापने वाला ही मानव बन सकता है। आत्म सयम ही समस्त गुणो की नींव है। आत्म विजय ही मानव का अन्तिम और महान् विजय है। शान्त सयमी बनो तो तुमारी सत्ता सब पर चलेगी। अन्य पर सत्ता चलाने की अपेक्षा अपनी आत्मा पर सत्ता चलाओ। आत्म सयम के अभाव मे सब सद्गुणो का अभाव होता है। अपने दोषों का नित्य निरीक्षण करने से वे दूर हो जाते है।

क्रोध पर काबू न कर सको तो जीभ बन्द करो। क्रोध आत्मा के सत्य स्वरूप का नाश करता है। क्रोधी मनुष्य का आयुष्य भी घटता है ऐसा वैज्ञानिकों का मत है। मौन धारण करने से सब सन्ताप मिट जाते हैं। आत्म तत्व के नाश होने पर विषय कषाय की उत्पत्ति होती है। बिना सयम का जीवन राक्षसीं जीवन है। विषय कषाय आत्म गुणों का गला घोंटते है। लोकाचार से सदाचार को अधिक मान देना चाहिये। विषय कषाय के संयोगों में शान्त रह सके वहीं स्वतन्त्र है। जो मनुष्य आत्म स्वाधीन नहीं है वह पशु तुल्य अज्ञान और दया पात्र है।
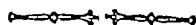
२१—व्रत-प्रत्याख्यान

मनुष्य के हृदय में जहाँ तक मिथ्यात्व का जोश कम न हुआ हो, वहाँ तक बाह्य पदार्थों की आसक्ति कम नहीं होती। इस लिए आवश्यकों में मिथ्यात्व की प्रधानता है।

जहाँ तक आत्मा का स्वीकार न हो वहाँ तक व्रत प्रत्याख्यान को बिलकुल अवकाश नहीं है। आत्मा अमर है और आत्मिक सुखों से भरा हुआ समुद्र मेरे पास ही है ऐसा दृढ़ निश्चय न हो वहाँ तक प्राप्त भोगों की सामग्री छोड़ने का दिल नहीं होता। जहाँ तक आत्मिक-सुख की प्रतीतिरूप दृढ़ नींव पर व्रत प्रत्याख्यान की इमारत न खड़ी की जाय वहाँ तक वह इमारत ठीक नहीं हो सकती। आत्म-सुधार की भावना जितने अंश में मजबूत होती है उतने ही अंश में व्रत भी दृढ़ और कार्यकर बन सकते हैं। जहाँ तक मिथ्यात्व के तत्त्व होंगे वहाँ तक व्रत प्रत्याख्यान के उपदेश का असर नहीं हो सकता। रेत की नींव पर की हुई चुनाई अधिक नहीं टिक सकती। जहाँ तक सम्यक्त्व भावना रूप शीशा आत्म विकास की इमारत की नींव में डाला न जाय वहाँ तक त्याग प्रत्याख्यान क्षणिक समझने चाहिये।

व्रत-प्रत्याख्यान बाह्य स्थिति के बोधक तत्त्व नहीं हैं किन्तु अन्तर अवस्था का प्रदर्शन कराने वाला है। व्रत प्रत्याख्यान शत प्रति शत आत्मा की अन्तर स्थिति है। बाह्य भेष को किया कार्य या व्रत-प्रत्याख्यान मानने वाले पूर्ण भूल करते हैं। विश्व के अन्य तत्त्व दूसरी वस्तुओं की तरह व्रत प्रत्याख्यानों में भी विकृति का सहज प्रवेश हुआ है।

मानव के शारीरिक या आध्यात्मिक मार्ग में त्याग-प्रत्याख्यान की परम प्रधानता रही हुई है। और त्याग प्रत्याख्यान ही व्यक्ति

समाज, प्रान्त, देश तथा विश्व का परम कल्याण कर सकते हैं। अन्यथा अधःपतन है।

त्याग—प्रत्याख्यान के नियम सिर्फ त्यागी वर्ग के लिए नहीं है, परन्तु जिसको अपने सत्य हित की कुछ भी दरकार है उन सब को सेवन करने योग्य है। मछली पानी बिना और भोगी भोग बिना तडफ कर मरते हैं, वैसे आत्मार्थी व्रत प्रत्याख्यान के अभाव में या उसके भग में मृत्यु का शरण लेते हैं। अनेक महासतियों ने और सुदर्शन जैसे श्रावक रत्नों ने व्रत-प्रत्याख्यान की रक्षा के लिये शूली को सुख शय्या समझ कर सहर्ष स्वीकार किया। अम्बड सन्यासी के सात सौ शिष्यों ने व्रतों की रक्षा के लिये गगा नदी की उष्ण रेत में अपने प्राण दिये। अरणक की माता ने अपने पुत्र को पत्थर की शिला पर पिघल जाने पर भी व्रत रक्षा करने की सलाह दी। इसके अतिरिक्त मेताराज, स्कन्धजी के पांच सौ शिष्य, गजसुकुमार, धर्म रुचि अणगार आदि अनेक महा पुरुषों ने व्रत-रक्षा के लिए अपने प्राण दिये हैं और सिर देकर अपने शील (व्रत) की रक्षा की है। लश्कर के सिपाही पाव भर आटे की लालच में तोप, बन्दूक, मशीनगन, बम्ब के सामने खुली छाती से खडे रहते हैं तो आत्मसुख के अभिलाषियों को अपने व्रत आदि के लिये कितना महान् आत्म भोग देना चाहिये यह सहज समझा जा सकता है।

मनुष्य व्रत—प्रत्याख्यान के अभाव में व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज देश या प्रजा का कल्याण नहीं कर सकता है। त्याग-प्रत्या-ख्यान की विशेषता के प्रमाण मे वह अच्छे से अच्छा गृहस्थाश्रम चला सकता है, अन्यथा गृहस्थाश्रम चलाने मे असमर्थ होता है। सयमी जीवन के अभाव में मनुष्य गृहस्थ जीवन से भी पतित होता है

सन्तान के प्रेम के लिए मातृ पिता का त्याग और आत्म भोग सुप्रसिद्ध है। त्याग के कारण ही मातृ पितृ पद निभ रहा है—अन्यथा स्थान भृष्ट हो।

त्याग—प्रत्याख्यान के शरण बिना उत्तम गृहस्थ भी नहीं हो सकते हैं या त्यागी कैसे हो सकते हैं? भोगोपभोग के प्रति संयम रखने से ही आदर्श गृहस्थ धर्म या त्यागी धर्म पलता है।

कुटुम्ब भावना से आगे समाज देश और विश्व भावना के लिए प्रेम के प्रमाण से विशेष त्याग-प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। वर्तमानमें त्याग प्रत्याख्यान का अर्थ अति संकीर्ण और कर्तव्य प्रदेश में प्रायः निरुपयोगी जैसा हो गया है। खान पान तथा खाने खान की मर्यादा में मत प्रत्याख्यान मान लिए जाते हैं, परन्तु जिसका असर जीवन के प्रत्येक प्रदेश और प्रवृत्ति में हो वही सच्चा त्याग है। जिस त्याग का फल प्रत्यक्ष नहीं है परोक्ष में मिलेगा यह आशा निरर्थक है। भविष्य में फल प्रद होने वाले प्रत्येक कार्य वर्तमान में भी उसकी आगाही दिए बिना नहीं रहते। जिस त्याग का परिणाम वर्तमान जीवन पर नहीं पड़ता और आचार विचार पर जरा भी असर नहीं करता उसके सेवन से मनुष्य कुछ भी उदार, उच्चाशयी या निष्कामी नहीं होगा। वह त्याग बिना समझ का या बुद्धि पूर्व समझना चाहिये। यह भूल न सुधरे वहाँ तक त्याग-प्रत्याख्यान कष्ट मात्र है। इससे कोई उत्तम फल की आशा नहीं रहती।

त्याग—प्रत्याख्यान के प्रताप से मनुष्य पशु से आगे बढता है और जितने अंश मे त्याग प्रत्याख्यान बढाता है, इतने अंश मे वह विशेष रूप से शुद्ध मनुष्य बनता जाता है और मानवता के गुणों को विकसित करता है।

व्रत-प्रत्याख्यान आत्मा की पांखें हैं। जिस के द्वारा वह योग्य दिशामे आकाश गमन कर सकता है। उसके अभाव मे मृत्यु लोक मे विषयी कीड़ा बनकर पेट घीस कर जमीन पर रेंगता है। और पद्‌पद् पर पश्चाताप व शोक करता है। त्याग-प्रत्याख्यान के अभाव मे अधम वासनाओ की प्रबल इच्छा होती है। और भोगोपभोग के लिए पशु को भी लज्जित करे ऐसी बूम मारता है। इससे क्रमशः मृत्यु पहिले ही वह अर्ध पशु बनता है और भोग वासनाओ को पूर्ण करने के लिए मृत्यु के बाद पूर्ण पशु बनता है। पशु या मानव मां बाप का अपनी सन्तान के लिए त्याग या आत्मभोग महर्षियों के त्याग से भी अधिक है। सन्तान के जीवन मे अपना जीवन और सन्तान के मरण में अपना मरण मानते हैं। अन्तिम श्वासो श्वासतक सन्तान के श्रेय की चिन्ता करते हैं। खान पान और भोगोपभोग मे सन्तान के श्रेयके लिए शुष्क और सादगी का जीवन बीताते हैं और विशेष में इस लोक के सुख की परवाह तो नहीं करते, परन्तु परलोक के सुखको धर्म नीति और न्याय को भी लात मार कर मात्र जीवन का ध्येय सन्तान की सेवा बनाते हैं।

२२—चारित्र

आत्मा के निजी स्वरूप में चलना ही चारित्र है। मनुष्य चाहे जैसा अपना चरित्र बना सकता है। साधु श्रावक वर्ग की स्थापना चरित्र शुद्धि के लिये ही है। व्रत प्रत्याख्यान चारित्र बनाने का हथियार है। जैन दर्शन चारित्र विकसित करने की शाला है। शरीर सुधारने के लिए जैसे व्यायामशाले और डाक्टर हैं वैसे ही जीवन सुधारने के लिए धर्म स्थानक और धर्मगुरु हैं। चारित्र अपने चालचलन की अवस्था मात्र है।

सबल और निर्बल मनुष्य में यही अन्तर है, कि सबल अपने चारित्र को इच्छानुसार बना सकता है और निर्बल आस पास के संयोगों के आधीन हो जाता है। उसे कोई गुस्से भी कर सकता है और खुश भी कर सकता है उसका मन मोमकी तरह नर्म और संयोगों के आधीन होता है। वह अपने मनका मालिक नहीं है, परन्तु संयोगों के आधीन पामर प्राणी है।

आत्मा मन का मालिक है। जैसे व्यायाम से शरीर को सुदृढ़ बनाया जाता है वैसे ही आत्मा मन को बलवान और उत्तम बना सकती है।

जिनके चारित्र को सैकड़ों प्रकारसे सुधारना बाकी है, ऐसे मनुष्य भी दूसरों को सुधार की सलाह देने लग जाते हैं। जैसी सलाह वे दूसरे को देते हैं, यदि वैसा बर्ताव वे खुद करें तो वे स्वयं शीघ्र सुधर सकते हैं। मगर सलाह देने वाले को अपनी सलाह में ही विश्वास नहीं तो दूसरों को उसकी सलाह में विश्वास का उत्थान कैसे उत्पन्न हो सकता है ? बिना गोली की बन्दूक जितने की

आवाज करें तो भी वह आवाज एक पत्ते को भी नहीं तोड सकती, वैसे ही विना चारित्र का उपदेश असर नहीं करता।

विना खात व पानी के पौधा सूख जाता है, वैसे ही वासनाओं को विषय पोषण मिलना बंध हो तो वे मर जाती हैं। सिर्फ एक वक्त वासना के गुलाम बनें तो अनन्त काल तक उसकी विजय रहेगी। और एक वक्त वासनाओं को हरा दी तो सदा के लिये आप की विजय रहेगी। कई मनुष्यों को अधम वासना के सिवाय चैन नहीं होता, इसी प्रकार ऐसा अभ्यास किया जा सकता है कि उत्तमता के विना चैन न पडे।

चिन्तन से रस (तन्मयता) प्राप्त होता है और कार्य करने से श्रद्धा प्राप्त होती है, बिना कार्य के मात्र दृष्टान्त दलील और वांचन से श्रद्धा नहीं आती मात्र कार्य करने पर ही वह प्राप्त होती है। जितनी श्रद्धा अधिक होती है उतनी ही चारित्र की पवित्रता अधिक होती है। श्रद्धा ही मन रूपी सडक को साफ करती है, प्रतिबंधों का नाश करके सरलता करती है और विघ्नों के प्रसंग में आत्मा को धीर और स्थिर रखती है। श्रद्धा चरित्र की नींव है। भूतकालीन संस्कार और आदतों से चारित्र बनता है, चारित्र का परिवर्तन आदतों का परिवर्तन है। आज का सीखा हुआ पाठ समय पाकर दृढ होता है यही स्थिती चरित्र की है।

अहिंसा, सत्य क्षमा ब्रह्मचर्य सरलता सन्तोष आदि आदत रूप बनजाय, जीवनमें एकाकार हो जाय, इसी लिये इतना विधान फरमाया है और वही सत्य चारित्र है।

२१—आत्म संयम

आत्म ज्ञान, आत्म दर्शन और आत्म चरित्र के द्वारा ही सर्वोपरि सत्ता प्राप्त होती है। आत्म (इन्द्रियों का) विजय ही सर्वोत्कृष्ट विजय है, सत्य विजय है। इसके सिवाय अन्य विजयों शुद्र गुलाम हैं। अपने हृदय के भारी प्रदेश पर विजय प्राप्त करें। इन्द्रियों और विषय वासना पर शासन करने वाला ही महाराजा है। अपने मन पर सत्ता चलाने वाला महासत्ताधीश है। अन्तः साम्राज्य पर राज्य स्थापने वाला मानव बन सकता है। आत्म संयम समस्त गुणों की जड़ है। आत्म विजय मनुष्य का अन्तिम और महान् विजय है। शांत बनने से सब पर सत्ता चल सकेगी। दूसरों पर सत्ता चलाने की अपेक्षा अपने पर सत्ता चलाना सीखो। आत्म संयम का अभाव है वहाँ सब सद्गुणों का अभाव समझना चाहिये। अपने दोषों का नित्य अवलोकन करने से दोष दूर होते हैं।

अपने क्रोध को वश में रख न सको तो जीभ को तो अवश्य वश रखना सीखो। क्रोध आत्मा के शुद्ध स्वरूप का नाश करता है। क्रोधी मनुष्य का आयुष्य भी अल्प होता है। मौन धारण करने से सब सन्ताप मिटते हैं। आत्म तत्व के भान से ही विषय कषाय की उत्पत्ति होती है। बिना संयम का जीवन राक्षसी जीवन है। विषय कषाय आत्मगुणों को फांसी देकर मारते हैं। लोकाचार की अपेक्षा तत्त्वाचारों को विशेष मान देना चाहिये। विषय कषाय के संयोगों में शांत रहे वही स्वतन्त्र है। जो मनुष्य स्वाधीन नहीं है वह पशुतुल्य गुलाम और दयापात्र है।

२४—जैन धर्म व अजैन संसार

जैन धर्म अनादि काल का है। यह बात निर्विवाद तथा मत भेद रहित है। (लोकमान्य-तिलक)

मनुष्यों की उन्नति के लिए जैन धर्म का चारित्र बहुत लाभ-दायी है। यह धर्म, बहुत असली स्वतत्र, सरल और विशेष मूल्यवान् है। (डॉ० ए० गिरनाट, पेरिस)

कैसे उत्तम नियम और उच्च विचार जैन धर्म और जैन आ-चार्यों मे है। (डॉ० जोहन्नेस हर्टर, जर्मनी)

जैन धर्म ऐसा प्राचीन धर्म है कि, जिसकी उत्पत्ति तथा इति-हास को ढूढना अति दुष्कर है। (लाला कन्नूमलजी)

निःसशय जैन धर्म ही पृथ्वी पर सत्य धर्म है और यही धर्म मनुष्य मात्र का आदि धर्म है। (मि० आवे जे ए. वाह. मिशनरी)

मैं जैन सिद्धान्तों के सूक्ष्म तत्वों का पूर्ण प्रेमी हूँ। (मुहम्मद हाफिज सैयद)

मुझे जैन तीर्थकरों की शिक्षा के लिए अतिशय भक्ति है। (नैपालचन्द)

मुझे जैन सिद्धान्त का अत्यन्त शौक है. कारण कि कर्म सिद्धान्तों का इस में सूक्ष्म रीत्या वर्णन किया है। (एम० डी० पाण्डे, थियोसोफिकल सोसायटी)

महावीर ने एक आवाज़ से हिंद में ऐसा सन्देश फैलाया कि धर्म सांप्रदायिक रूढी नहीं है, परन्तु वास्तविक सत्य है। (रवीन्द्रनाथ टागोर)

जैन धर्म की उपयोगिता को सर्व रूपेण पाश्चिमात्य विद्वानों को स्वीकारना चाहिए। (डॉ० जैकोबी प्रोफेसर जर्मनी)

भारत वर्ष में जैन धर्म की प्रभावना रही यहां तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य था।

जिनेश्वरों ने उपदेश दिया है उसे ध्यान पूर्वक सुना। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि, संसार के सर्व मनुष्य उनके उपदेश अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें। (श्रीमती एनी बीसेन्ट)

जैन धर्म के श्रावक तथा मुनि दोनों का चरित्र मनुष्य मात्र के लिए आदर्श रूप है। (गंगाप्रसादजी एम ए)

मैं आपको कहां तक कहूं ? बड़े २ प्रसिद्ध धर्माचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जैन धर्म का खंडन किया है, वह ऐसा है कि, उसे देखकर हास्य हुआता है। स्याद्वाद का यह (जैन धर्म) अभेद्य किल्ला है। उसमें वाद विवाद करने वालों का मायावी मय गोला प्रवेश नहीं कर सकते। एक दिन ऐसा था कि, जैन धर्माचार्यों के प्रवचन से सर्व दिशाएँ गूंज रही थीं। जैन दर्शन वेदान्त दर्शन से भी प्राचीन है ऐसा मानने में मुझे कोई हर्ज नहीं है।

(पं० स्वामी राममिश्रजी शास्त्री)

ब्राह्मण धर्म को जैन धर्म ने ही अहिंसा धर्म बनाया। हिन्दू धर्म में जैन धर्म के प्रताप से ही मांस भक्षण तथा मदिरा पान बन्द हुआ। (लोकमान्य तिलक)

गरीब प्राणियों का दुःख दूर करने के लिए जर्मनी में अनेक संस्थाएँ वर्तमान में चल रही हैं, परन्तु जैन धर्म यह कार्य बहु

कार्य हजारों वर्षों के पहिले से ही करता आ रहा है।

(मि० जोहन्स हर्टल, जर्मन)

जैनधर्म में अहिंसा तत्व अत्यन्त श्रेष्ट है।

(रा० गोविंद आप्टे बी० ए०)

जैन धर्म के महत्व पर मेरी हार्दिक श्रद्धा है।

(गंगाप्रसादजी मोहता एम० ए०)

मेरे चित्त मे जैन धर्म प्रति अत्यन्त आदर है। पूर्व कालीन स्थिति में हिंदू समाज में अनेक बुराइयाँ आ घुसी थी। जिसका सुधार जैन धर्म ने ही किया है। जैन धर्म में अहिंसा का यथार्थ स्वरूप प्रति पादन किया है। जैन राजाओं ने व गृहस्थों ने महान् पवित्र कार्य किये हैं और महान् विजय प्राप्त किये हैं। जैन धर्म की शिक्षा से सामाजिक जीवन भी पूर्ण हो सकता है। हिन्दू मात्र को जैन धर्म का कृतज्ञ होना चाहिए, चूंकि इस धर्म ने हिंदू समाज की अनेक बुराइयों का संशोधन किया है।

(प्रॉ० चतुरसेन शास्त्री)

जैन धर्म सुख और शांति प्राप्त करने का साधन है। भगवान् महावीर का उपदेश ज्ञान मय तथा चारित्र सुधारने वाला है प्राणी मात्र पर दया का सिद्धांत अमूल्य सिद्धांत है।

(फणीभूषण एम० ए०)

———

अन्तिम निवेदन

अध्यात्म रसिक आत्मार्थी मुनि श्री मोहन ऋषिजी म० सा० व विवेक सम्पन्न मुनि श्री विनय ऋषिजी म० सा० मारवाड़ का जैन मात्र भली प्रकार जानते हैं। सिर्फ ऋषि सम्प्रदाय के ही नहीं समस्त जिनशासन के आप हितचिंतक और शासन शृंगार हैं। श्री वृहत्साधु सम्मेलन अजमेर के समय की आपकी सेवाएं व खास उल्लेखनीय और प्रमुख थीं।

आपके विचार बड़े मनन, चिंतन और अध्यात्मानुभव के साथ प्रकट होते हैं। स्व० पूज्य श्री अमोलख ऋषिजी म० सा० का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'जैन तत्त्व प्रकाश' का गुजराती अनुवाद में स्थान २ पर फुट नोट देने के लिए आत्मार्थीजी ने कुछ विचारों को लिपि बद्ध किये थे जिसको 'जैन प्रकाश' में 'जैन तत्त्वोनुं सूक्ष्म निरूपण' के हेडिंग से नीचे गुजराती में प्रकट किया था।

यह सूक्ष्म निरूपण सूक्ष्म बुद्धि के विचारकों को बहुत उपयोगी मालूम पड़े और पुस्तकाकार मासिकरूप में प्रकट करने का आग्रह हुआ। अतः दानवीर सेठ सरदारमलजी सा० पुंगलिया ने हिंदी में छपवाने की अपनी हार्दिक भावना प्रकट की और इसका अनुवादन आदि कार्य के लिए मुझे कहा गया।

मैं चाहता था कि यह उत्तम स्थायी साहित्य हिन्दी के प्रख्यात लेखक के द्वारा प्रकट हो, परन्तु पुस्तक शीघ्र प्रकाशित करनी थी अतः अनुवादन कार्य मुझे करना पड़ा। शीघ्रता के कारण अनेक त्रुटियाँ होंगी। पाठकगण उसे क्षमा करें और आत्मार्थी जी के भावों की महत्ता समझकर अपना जीवन सुधारें।

धीरजलाल के. तुरखिया